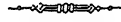


दक्षिण मथुरा ( मदुरा )

है, वह मायाकी सीताके हरणकी कथा मात्र है। रावणने तो श्रीसीता की छायाको 'सच्ची सीता' समझ लिया था।" श्रीमहाप्रभुने कुछ दिनोंके बाद अपने इस सिद्धान्तके प्रमाण-स्वरूप 'कूर्म-पुराण'का एक श्लोक लाकर उस रामभक्त ब्राह्मणको शान्त किया था।



## चौवनवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेव और भट्टथारि

श्रीमन्महाप्रभु पाण्ड्य-देशमें 'ताम्रपर्णी' नदीके तीरपर, 'श्रीनव-तिरुपति' 'नौत्रिपदी', 'चियडतला'-तीर्थमें श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'तिल-काची'में श्रीशिव, 'गजेन्द्रमोक्षण'में श्रीविष्णु, 'पानागडी' तीर्थमें श्री सीतापति, 'चाम्तापुर'में श्रीश्रीरामलक्ष्मण, 'श्रीवैकुण्ठ'में श्रीविष्णु, 'कुमारिका'में श्रीअगस्त्य, तथा 'अम्लीतला'में श्रीरामचन्द्रके दर्शन करके मालावार प्रदेशमें पहुँचे। वहाँ 'भट्टथारि' नामके एक वर्गके लोग रहते थे। ये लोग नेम्बुद्री ब्राह्मणोंके पुरोहित थे, तथा मारण, उचाटन, वशीकरण आदि तान्त्रिक क्रियाओंमें पारदर्शिताके लिये प्रसिद्ध थे। वे अनेको स्त्रियोंको वशीभूतकर अपने पास रखते थे, तथा स्त्रियोंके प्रलोभनके द्वारा दूसरे लोगोंको भुलाकर अपने दलकी वृद्धि करते थे।

श्रीमन्महाप्रभुके साथ 'कृष्णदास' नामके जो सरल ब्राह्मण प्रभुके दण्ड-कमण्डलु आदिको वहन करनेके लिये गये थे, वे इस प्रकार भट्ट-थारि स्त्रियोंके प्रलोभनमें फँसकर बुद्धिभ्रष्ट हो गये। जब महाप्रभुने भट्टथारिके घर जाकर कृष्णदास विप्रको माँगा तो वे महाप्रभुको अस्त्र-



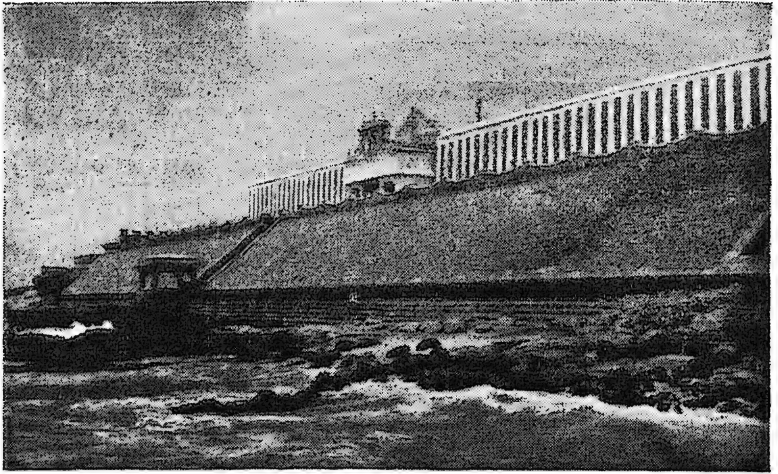
शस्त्र लेकर मारने को तैयार हो गये; परन्तु उनके चलाये हुए सारे अस्त्र लौटकर उन्हीं लोगोंके शरीरपर जा पड़े। इससे भट्टथारि लोग चारों ओर भाग गये। श्रीमहाप्रभु तब कृष्णदासको केस पकड़ कर बाहर निकाल लाये।

जीव अणु-चेतन है, अतएव उसे अणु-स्वाधीनता है। जब यह जीव उस स्वाधीनताका सद्व्यवहार करता है, तभी वह श्रीभगवान्‌की भक्तिके मार्गमें विचरण करता है; और जब स्वाधीनताका असद्व्यवहार करता है तभी नाना प्रकारकी अभक्तिके मार्गपर तथा असत्पथपर दौड़ लगाता है। साक्षात्‌रूपमें स्वयं भगवान्‌की सेवाका अभिनय करके



नौ त्रिपदीके अलवर तिरुनगरीमें प्रसिद्ध इमलीका वृक्ष;  
इस वृक्षके कोटर में नम्मा अलवर प्रकटित हुए :

भी, उनके साथ-साथ रहकर (?) भी स्वतन्त्रताके अपव्यवहारके फल-स्वरूप जीवका किस प्रकार पतन हो सकता है, इसका दृष्टान्त श्रीमन् महाप्रभुने अपने सेवक कृष्णदासकी इस घटनाके द्वारा प्रदर्शित किया है।



कन्याकुमारी के मंदिर के पूर्वद्वार, भारतमहासागर, अरब सागर तथा बंगनागर इन तीनोंका संगम और कन्या तीर्थघाट



## पचपनवाँ परिच्छेद

### ‘ब्रह्मसंहिताध्याय’-पुस्तक

श्रीमन्महाप्रभुने भट्टथारिके घरसे कृष्णदास ब्राह्मणका उद्धार करके उसी दिन त्रिवाकुर राज्यके अन्तर्गत पुण्यवती ‘पयस्विनी’ नदीके किनारे आकर वहाँ स्नान किया और ‘श्रीआदिकेशव’ मन्दिरमें\* उपस्थित होकर श्रीकेशवजीके दर्शन किये। श्रीकेशवदेवके सामने बहुत दण्डवत् प्रणाम, स्तुति, नृत्य, गीत करके महाप्रभु प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीगौरसुन्दरके अपूर्व प्रेमको देखकर स्थानीय सभी लोग परम चकित हो उठे। इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभुने कतिपय शुद्ध भक्तोंके साथ ‘ब्रह्मसंहिता’-ग्रन्थके पचमाध्यायका आविष्कार किया। इस ग्रन्थके प्राप्त होनेपर महाप्रभुके अगमें आठो सान्त्विक विकार प्रकट हो उठे, क्योंकि इस पुस्तकमें थोड़े ही अक्षरोंमें सारे वैष्णव-सिद्धान्त लिपिबद्ध हैं। अधिक क्या कहा जाय, यह ग्रन्थ समस्त वैष्णव-सिद्धान्तके शास्त्रोका सार-स्वरूप है।

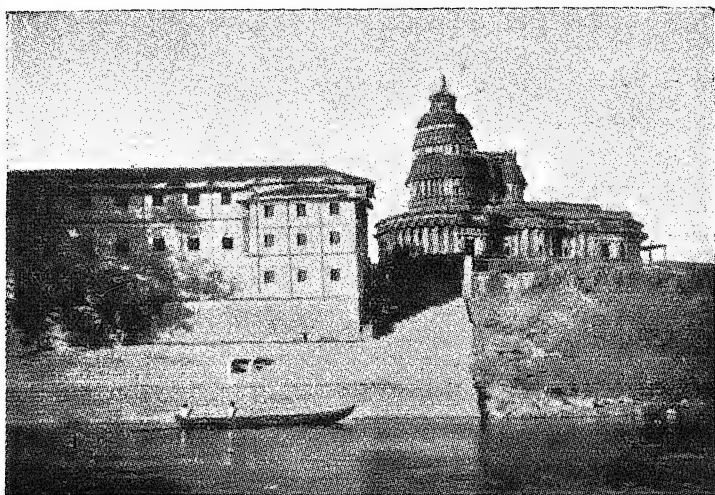
श्रीमन्महाप्रभुने बहुत यत्न करके लिपिकारके द्वारा उस ग्रन्थकी नकल करवा ली। यह ग्रन्थ श्रीमन्महाप्रभु और वैष्णवजगत्का परम प्रिय और प्रामाणिक ग्रन्थ है, ऐसा समझकर श्रीगौडीय-वैष्णव आचार्यवर श्रीजीवगोस्वामिपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने इस ग्रन्थकी टीका और वृत्ति रचना की है। कटक रेवेन्सा कालेजके भूतपूर्व परलोकगत अध्यापकवर श्रीनिशिकान्त सान्याल, एम०ए० भक्तिसुधाकर महाशयने सर्वप्रथम इस ग्रन्थका अंग्रेजीमें अनुवाद किया और श्रीगौडीय मठके द्वारा वह प्रकाशित हुआ।

---

\* त्रिवेन्द्रम् से कन्याकुमारी जानेके रास्तेपर करीब बीचमें तिरुवत्ति २४॥ मील तथा वहाँसे दूसरी शाखा लाइनपर तिरुवट्टर चार मील है, अर्थात् त्रिवेन्द्रम् नगरसे पूर्व-दक्षिण दिशामें लगभग २८॥ मीलकी दूरी पर अवस्थित तिरुवट्टरमें ही श्रीआदिकेशवदेवका मन्दिर है।

इस ग्रन्थमें श्रीकृष्णके सर्वकारण-कारणत्व, श्रीकृष्णके धाम, माया, सृष्टितत्व, श्रीकृष्णके विभिन्न अवतारोंके तत्व, निर्विशेष ब्रह्मतत्व, देवी, शिव और हरिधामके स्वरूप, सूर्य, शक्ति, गणेश, रुद्र और विष्णुतत्त्वका तारतम्य, प्रेमभक्ति आदि विषयोंके सिद्धान्त भली भाँति वर्णित हैं ।

उसके बाद श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीग्रनन्तपद्मनाभ'के मन्दिरमें पहुँचे और वहाँ दो दिन रहनेके बाद श्रीजनार्दनदेवके\* दर्शन करने गये । पयस्विनीके तीरपर जाकर 'शंकर-नारायण' और 'शृंगेरीमठ'के तत्कालीन शंकराचार्य (श्रीरामचन्द्र भारती?) के साथ साक्षात्कार हुआ । तत्पश्चात् 'मत्स्यतीर्थ' दर्शन करके 'तुंगभद्रा'में आकर स्नान किया।



तुंगभद्रा नदीके किनारे शृंगेरी मठ तथा विद्याशंकरका समाधि-मंदिर

\* त्रिवेन्द्रम् जानेके रास्तेमें 'वर्कला' स्टेशनसे लगभग डेढ़ मीलकी दूरी पर श्रीजनार्दनदेवका मंदिर है ।

## छप्पनवाँ परिच्छेद 'उडुपी'में श्रीकृष्णचैतन्य

दाक्षिणात्यमें 'सह्य' पर्वतके पश्चिममें कनाडा जिला है। दक्षिण-कनाडाका प्रधान नगर है—'मगलोर'। मगलोरसे ३७ मील उत्तर 'उडुपी'\* है। इस स्थानका प्राचीनसंस्कृत नाम 'रजतपीठपुरम्' है। उडुपी क्षेत्रसे सात मील पूर्व-दक्षिणकोणमें 'पाप-नाशिनी' नदीके तटपर 'विमानगिरि' है। उससे एक मील पूर्वकी ओर 'श्रीपरशुराम' के द्वारा स्थापित 'धनुस्तीर्थ' है। उसके समीपके प्रदेशमें 'पाजका-क्षेत्र' अवस्थित है। इसी पाजकाक्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्य आविर्भूत हुए थे। आजकल यह गाँव जनशून्य है। परवर्ती समयका एक पत्थरका बना घर ही यहाँ श्रीमन्मध्वाचार्यके आविर्भाव-स्थानका निर्देश करता है।

उडुपी क्षेत्रमें श्रीमन्मध्वाचार्यके द्वारा सेवित 'श्रीनर्तक-गोपाल' की श्रीमूर्ति और उनके द्वारा प्रतिष्ठित 'अष्ट मठ' शोभा पा रहे हैं। श्रीमन्मध्वाचार्यने किसी एक व्यापारीकी नौकामें रखे हुए एक बड़े गोपी-चन्दनके खडके भीतरसे इस श्रीनर्तक-गोपालकी मूर्तिका आविष्कार किया था। श्रीमन्महाप्रभुने जब उडुपीमें पदार्पण किया था तब इन श्रीनर्तक-गोपालके सामने नृत्य और कीर्तन करते हुए वे प्रेमावेशमें मग्न हो गये थे।

श्रीमन्मध्वाचार्यका अनुसरण करनेवाला सम्प्रदाय मायावादका विरोधी होनेके कारण 'तत्त्ववादी'के नामसे पुकारा जाता है। श्रीश्री-जीवगोस्वामिपादने श्रीमन्मध्वाचार्यका 'तत्त्ववाद-गुरु'के नामसे उल्लेख किया है। 'तत्त्व' कहनेसे सविशेष श्रीपुरुषोत्तमका बोध होता है।

\* दक्षिण-भारतीय प्रशस्त रेल-पथके अन्तिम स्टेशन मगलोरसे समुद्रतीरके मोटर बसके रास्ते उडुपी ३७ मील है तथा पार्वत्य मोटर-बसके रास्ते मगलोरसे कारकल नामके स्थानसे उडुपी ५७ मील है, इस रास्तेपर मोटरबस बदलना नहीं पड़ता।

मायावादिगण 'केवलाद्वैतवाद' को मानते हैं और तत्त्ववादिगण 'शुद्ध-द्वैतवाद' को ।

श्रीमन्महाप्रभुके समकालीन तत्त्ववादी लोगोंने महाप्रभुको बाह्य-रूपमें 'मायावादी संन्यासी' समझकर पहले-पहल उनको असंभाष्य समझा; परन्तु, पश्चात् महाप्रभुके अद्भुत सात्विक विकारोंको देखकर



श्रीकृष्णमंदिर, उडुपी



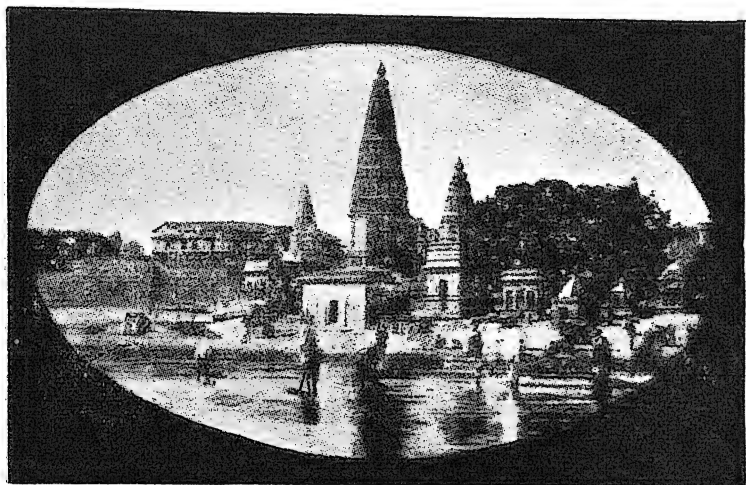
श्रीमन्मध्वाचार्य

उनको वैष्णव जानकर बहुत सत्कार किया। तत्त्ववादी लोगोके मनमें अपने 'वैष्णवपन'का अभिमान है, यह देखकर उनके अहंकारको कृपापूर्वक दूर करनेके लिये महाप्रभुने अत्यन्त दीनभावसे तत्त्ववादी आचार्यसे प्रश्न किया कि,—“साध्य और साधनमें कौन श्रेष्ठ है?” तत्त्ववादी आचार्य बोले,—“वर्णाश्रमधर्मका पालन करते हुए श्रीकृष्णके चरण-कमलोमें कर्मफल-समर्पण रूप कर्ममिश्रा भक्ति ही श्रेष्ठ साधन, तथा पंचविध मुक्ति प्राप्त करके वैकुण्ठमें जाना ही श्रेष्ठ साध्य है।” इसके उत्तरमें श्रीमद्भागवत और श्रीगीताके प्रमाणोका उल्लेख करते हुए श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—“वर्णाश्रमधर्मका परित्याग करके श्रीकृष्णके अनन्य शरणागत होकर नवधा भक्तिका अनुशीलन, विशेषतः ‘श्रवण-कीर्तन’ ही श्रेष्ठ साधन है और पंचम पुरुषार्थ ‘कृष्ण-प्रेम’ ही श्रेष्ठ साध्य है। सभी पारमार्थिक शास्त्र एक स्वरसे कर्मकी निन्दा करते हैं। कर्मके द्वारा कभी भी कृष्णमें प्रेमभक्ति प्राप्त नहीं होती। भगवद्भक्तगण पाँच प्रकारकी मुक्तिका परित्याग करते हैं और उनको नरक-तुल्य देखते हैं। कर्मी और ज्ञानी दोनों ही भक्तिविहीन हैं। परन्तु तत्त्ववादी सम्प्रदायका एक विशेष शुभ लक्षण यह है कि, वे लोग मायावादियोकी भ्रांति उपास्य वस्तुको निर्विशेष नहीं बतलाते। वे लोग, उपास्य वस्तुके सविशेषत्वको और चिद्बिलासको स्वीकार करते हैं। यही उनकी आस्तिकताका लक्षण है।” श्रीमन्महाप्रभुका सिद्धान्त सुनकर तत्कालीन तत्त्ववादी गुरु स्तम्भित हो गये और अपने मतकी अपूर्णताको स्वीकार करनेके लिये बाध्य हुए।

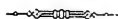
उडुपीसे श्रीमन्महाप्रभु ‘फलु-तीर्थ’ होकर त्रितकूपमें विशालाक्षी दर्शन, ‘पचाप्सरा’ तीर्थमें शुभागमन, ‘गोकर्ण’में शिवदर्शन, ‘द्वैपायनी’ और ‘सुपारिक तीर्थ’में आगमन, ‘कोलापुर’में लक्ष्मी, भगवती, गणेश और पार्वतीके दर्शन करते हुए ‘भीमा’ नदीके तीर ‘पाढरपुर’ पहुँचे और वहाँ ‘श्रीविट्ठलदेव’के दर्शन किये। इस स्थानमें आकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य श्रीरगपुरीके पास अपने अग्रज



श्रीविश्वरूपके पाण्डरपुरमें अन्तर्धान होनेकी बात सुनी । वहाँ चार दिन ठहरकर ‘कृष्णवेण्वा’\*नदीके तीर पहुँचे । वहाँसे श्रीमद्वित्त्वमंगलके द्वारा रचित ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ ग्रन्थका संग्रह कर उसकी प्रतिलिपि करा ली; तत्पश्चात् कृपापूर्वक और भी अनेकों तीर्थोंका उद्धार करते हुए पुनः ‘विद्यानगर’में आ गये । वहाँ श्रीरामानन्द राय से साक्षात्कार कर उनसे समस्त तीर्थोंका वर्णन कर उनको ‘श्रीब्रह्मसंहिता’ और ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ दो ग्रन्थ प्रदान किये, तदनन्तर श्रीमन्महाप्रभु ‘आलालनाथ’ होते हुए पुरी लौट आये ।



भीमानदी या भीमरथीके किनारे भक्त श्रीपुण्डरीका मंदिर,



\*इस नदीके तटपर ही श्रीवित्त्वमंगल ठाकुर रहते थे । ‘वेण्वा’के बदलेमें कोई इसको ‘वीणा’, कोई ‘वेणी’, ‘सिना’ और ‘भीमा’ कहते हैं ।

## सत्तावनवाँ परिच्छेद पुरीमें लौटना और भक्तोंके संग रहना

दक्षिण-देशमें लौटकर महाप्रभु पुरीमें श्रीकाशीमिश्रके घर ठहरे । श्रीशार्वभौम भट्टाचार्यने महाप्रभुके साथ श्रीक्षेत्रके निवासी वैष्णवोंका परिचय करा दिया । सेवक श्रीकृष्णदास विप्र श्रीनवद्वीप भेज दिये गये । श्रीकृष्णदासके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुके श्रीक्षेत्र लौट-आनेका समाचार सुनकर गौडीय भक्तगण पुरी जानकी तैयारी करने लगे । श्री परमानन्द पुरी नवद्वीप होकर श्रीअद्वैतप्रभुके शिष्य द्विज श्रीकमलाकान्त को साथ लेकर पुरीमें आये । नवद्वीपवासी 'श्रीमत् पुरुषोत्तम भट्टाचार्य'ने काशीमें 'श्रीचैतन्यानन्द भारती' नामक गुरुसे सन्यास-ग्रहणकी लीला अवश्य दिखलायी, परन्तु वे योगपट्ट\* ग्रहण न करके 'स्वरूप' नामसे परिचित हुए और पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोंमें आकर उपस्थित हुए । श्रीईश्वरपुरीके शिष्य श्रीगोविन्द भी श्रीपुरी गोस्वामीके अन्तर्धान होनेपर उनके आदेशानुसार श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उनकी सेवामें लग गये ।

अपने सन्यास गुरु श्रीकेशव भारतीके शिष्य होनेके कारण 'श्री-ब्रह्मानन्द भारती'को श्रीमन्महाप्रभु गुरुकी तरह सम्मान करते थे ।† एक दिन श्रीमुकुन्द श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि, उनका दर्शन करनेके लिये श्रीब्रह्मानन्द भारती आये हैं । इसके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले,—“वे मेरे गुरु हैं, मैं ही उनके पास आ रहा हूँ । गुरुदेवके पास ही शिष्यको जाना चाहिए ।” भारतीके पास आकर महाप्रभुने देखा कि श्रीब्रह्मानन्द मृगचर्म पहने हुए हैं । भगवद्भवत या वैष्णव सन्यासी

\* सन्यासीके लिये धारण करने योग्य वस्त्र विशेष । सन्यासके योगपट्टकी प्राप्ति हो जानेपर नैष्ठिक ब्रह्मचारीके 'स्वरूप' नामके बदले सन्यास नाम 'तीर्थ' होता है ।

† श्रीचैतन्य-चरितामृतमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकृत 'अमृत-प्रवाह-भाष्य' (आदि ६।१३-१४) द्रष्टव्य ।

के लिये कभी भी मृगचर्म पहनना उचित नहीं, यह जानते हुए भी गुरुस्थानीय पुरुषका शासन करना मर्यादाकी हानि करनेवाला समझकर, महाप्रभुने भारतीको सामने देखते हुए भी कहा,—“भारती गोसाईं कहाँ है ?” जब मुकुन्दने श्रीमहाप्रभुको बतलाया कि भारती गोसाईं श्रीमन्महाप्रभुके सामने ही तो उपस्थित है, तब श्रीमहाप्रभु बोले,—“तुम भूल करते हो, ये भारती गोसाईं नहीं हैं, भारती गोसाईं मृगचर्म क्यों पहनेंगे ?” तब ब्रह्मानन्द भारती श्रीमन्महाप्रभुका कौशल-पूर्ण उपदेश समझ गये एवं मन-ही-मन विचारने लगे, सचमुच ही चर्माम्बर पहनना केवल दाम्भिकताका परिचय मात्र है, इससे ससारसे उद्धार नहीं हुआ जा सकता ।

श्रीभारती गोस्वामीने उसी दिनसे मृगचर्म न पहननेकी प्रतिज्ञा की । श्रीमहाप्रभुने भी नवीन बाह्य वस्त्र मँगवाकर श्रीब्रह्मानन्दको पहननेके लिये दिया ।

श्रीभारती गोस्वामी बोले,—‘मैंने आजन्म निराकारका ध्यान किया है, परन्तु तुम्हारे दर्शनसे आज मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हो गयी । कृष्ण-प्रेम ही परम पुरुषार्थ है ।’

—

## अट्टावनवाँ परिच्छेद

### श्रीमन्महाप्रभु और श्रीप्रतापरुद्र

महाराज श्रीप्रतापरुद्रका श्रीमन्महाप्रभुके साथ साक्षात्कार करा देनेके लिये श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य विशेष आग्रहयुक्त हो गये और इसके लिये उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें निवेदन किया । लोकशिक्षक श्रीगौरसुन्दरने, ‘सन्यासीके लिये विषयीका दर्शन करना निषिद्ध है’—

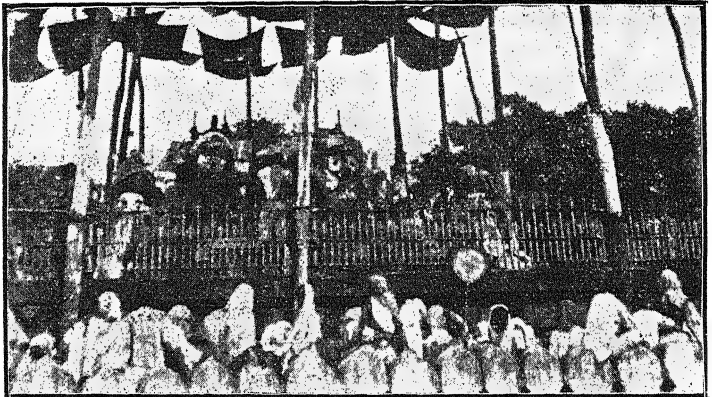
यह कहकर भट्टाचार्यके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया । श्रीमहाप्रभु बोले,—

निष्किंचनस्य भगवद्भूजनोन्मुखस्य  
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ।  
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितांच  
हा हन्त ! हन्त ! विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥

—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक, ८।२४

[ हाय ! भवसागरके उसपार जानेकी इच्छा रखनेवाले एवं भगवद्-भजनमें लगे हुए अकिंचनके लिये भोगबुद्धिसे विषयी पुरुषका और स्त्रीका दर्शन विष-भक्षणसे भी बढ़कर अमंगलकारी है । ]

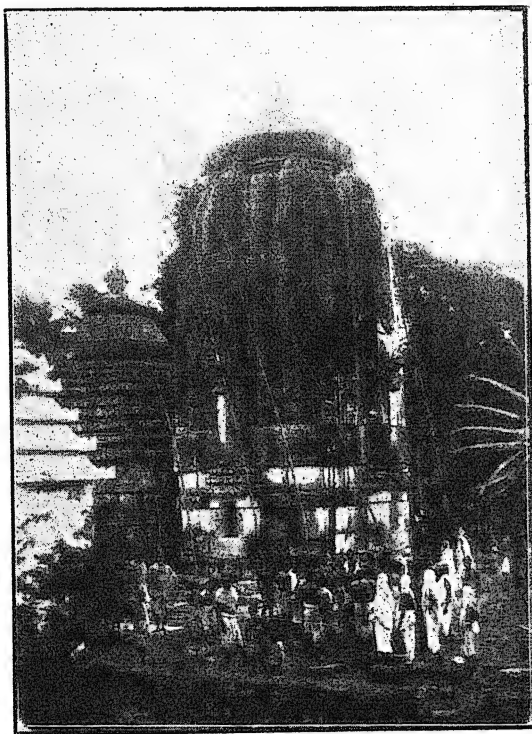
इधर श्रीरामानन्द राय राजकार्यसे अवसर लेकर पुरीमें श्रीमन्महा प्रभुके पास आ गये । श्रीरामानन्द श्रीचैतन्यदेवके चरणोंमें अनन्य-भावसे रहेंगे, यह जानकर श्रीप्रतापसुद्ध उनको कार्यसे छुट्टी देकर भी पूर्ववत् वेतन प्रदान करते रहे । जब श्रीरामानन्द रायने श्रीमहाप्रभुसे



श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्राका दृश्य

श्रीप्रतापरुद्रके वैष्णवोचित विविध गुणोंका कीर्तन किया तब राजाके प्रति महाप्रभुके चित्त-भावमें कुछ परिवर्तन हुआ ।

श्रीजगन्नाथदेवकी 'स्नान-यात्रा'के बाद उनके 'नवयौवनोत्सव'के पूर्व दिन तक एक पखवाड़े उनके दर्शन नहीं होते, इस समयको 'अनवसर-काल' कहा जाता है । इस समय श्रीजगन्नाथके दर्शन न पाकर श्रीमहा-प्रभु गोपीभावसे कृष्णविरहमें 'आलालनाथ'चले गये और वहाँसे लौट-कर गौड़देशसे आये हुए श्रीमत् अद्वैत आदि भक्तोंसे मिले ।



श्रीआलालनाथका श्रीमंदिर

श्रीप्रतापरुद्रने गौडीय-भक्तोंके वास-स्थानकी तथा उनके महा-प्रसादकी व्यवस्था की। श्रीजगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरमें चार सम्प्रदायोंके विभागक्रमसे सन्ध्याकालमें महा-सकीर्तन आरम्भ हो गया। श्रीनित्यानन्द प्रभृति भक्तोंने श्रीगौरसुन्दरको उनके दर्शन-लाभके लिये श्रीप्रतापरुद्रके प्रबल आर्त्तभावकी बात बतलायी। अन्तमें राजाकी सात्वन्ताके लिये श्रीनित्यानन्द प्रभुने राजाको श्रीमन्महाप्रभुका व्यवहार किया हुआ एक बाह्य वस्त्र प्रदान किया। पश्चात् श्रीरामानन्दके आग्रहसे श्रीमन्महाप्रभुने श्रीप्रतापरुद्रके श्यामवर्ण किशोर-वयस्क पुत्रको वैष्णव समझकर आलिंगन किया। श्रीमन्महाप्रभुके स्पर्शसे राजकुमारको प्रेमावेश हो गया। उस पुत्रको स्पर्श करके प्रतापरुद्रको भी श्रीमन्महाप्रभुका कृपा-संग प्राप्त हुआ तथा मनमें अलौकिक प्रेमका उदय हुआ।

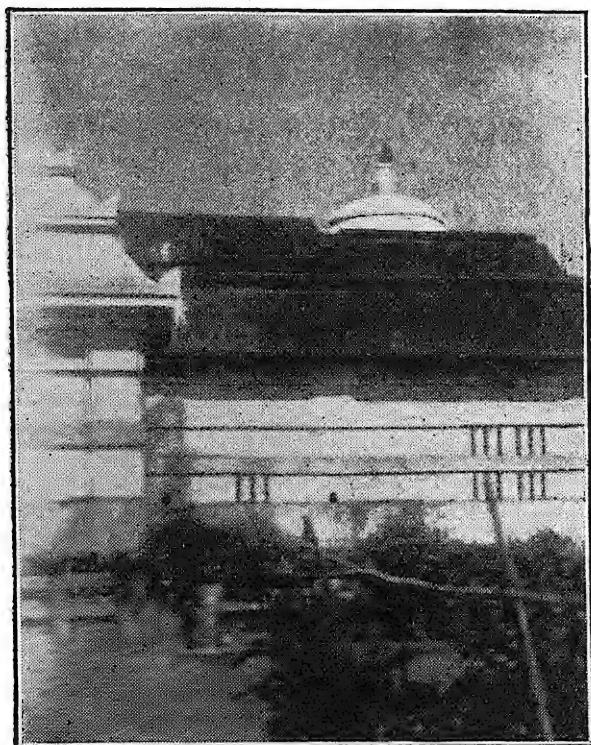


## उनसठवाँ परिच्छेद श्रीगुण्डिचा-मन्दिरकी सफाई

श्रीजगन्नाथजीकी श्रीरथयात्राका समय आ गया। श्रीरथयात्राके पहले श्रीमन्महाप्रभुने भक्तोंके साथ 'श्रीगुण्डिचा-मन्दिर'के परिष्कार की लीला प्रकट की। एव इस लीलाके द्वारा साधनराज्यके अनेकों

† श्रीजगन्नाथदेव रथपर चढ़कर श्रीमन्दिरसे 'सुन्दराचल'-नामक स्थानमें 'गुण्डिचा' मन्दिरमें जाते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीक्षेत्रको— 'श्रीकुक्षेत्र' और श्रीसुन्दराचलको 'श्रीवृन्दावन' के रूपमें अनुभव किया था। रथयात्राको उत्कलवासी लोग 'गुण्डिचा-यात्रा' भी कहते हैं। इसी गुण्डिचा-मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजी आकर नवरात्र लीला या नौ दिनतक उत्सव करते हैं।

रहस्योंकी शिक्षा दी। श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“यदि कोई सौभाग्यवान् जीव श्रीकृष्णको अपने हृदय-सिंहासनपर बैठानेकी इच्छा करे तो सबसे पहले उसको अपने हृदयके मलको साफ करनाअवश्यक है। बहुत दिनोंके संचित नाना प्रकारके भोग और त्यागकी अभिलाषा-रूप कूड़े-कर्कटको झाड़-बुहारकर तथा फेंककर श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानरूपी शीतल



श्रीगुण्डिचा मंदिर

जलसे हृदयको धोकर निर्मल, शान्त, मसृण और भक्तिसे उज्ज्वल बनाने पर श्रीजगन्नाथदेव वहाँ आकर आसन ग्रहण करते हैं।”

श्रीमन्दिरकी सफाई करते समय किसी गौडीय भक्तने श्रीमन्महा-प्रभुके श्रीचरणोपर जल डालकर उसे पान कर लिया, इस पर लोक-शिक्षक श्रीमहाप्रभुने गौडीयोके मूल महाजन श्रीस्वरूप-दामोदरके द्वारा उस गौडीयाको गुण्डिचाके आँगनसे बाहर निकलवा दिया। इसके द्वारा भी श्रीगौरसुन्दरने यह शिक्षा दी कि, श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जीवके लिये पैर पखारना या सेवा ग्रहण करना एक सेवापराध है।



## साठवाँ परिच्छेद

### श्रीरथयात्रा तथा श्रीप्रतापरुद्रके प्रति कृपा

श्रीगौरसुन्दर भक्तगणके साथ श्रीजगन्नाथजीके श्रीरथारोहणके दर्शन कर रहे थे, उस समय महाराज श्रीप्रतापरुद्र एक सोनेके झाड़ू से रथके जानेके मार्गको साफ करके उसपर चन्दनका जल छिड़क रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी इस प्रकारकी अभिमानशून्य सेवा प्रवृत्तिको देखकर भीतर-ही-भीतर उनके प्रति विशेष प्रसन्न हुए।

श्रीमहाप्रभुने अलग-अलग सात कीर्तन-सम्प्रदाय बनाकर भक्तोंके साथ श्रीजगन्नाथके रथके सामने नृत्य किया तथा कीर्तनमें अलौकिक और अचिन्त्य ऐश्वर्य प्रकट किया। जब कीर्तन समाप्त करके श्रीमन्महाप्रभु ‘बलगण्डि’\* उपवनमें विश्राम कर रहे थे, उस समय उनको अद्भुत प्रेमावेश हो गया। उसी समय श्रीप्रतापरुद्रने वैष्णव-वेषमें

\*पुरीमें श्रद्धावालि और अर्द्धासिनीदेवीके स्थानके बीचमें जो भूमि है, उसे ‘बलगण्डि’ कहते हैं।



वहाँ अकेले उपस्थित होकर श्रीमन्महाप्रभुके पैर दबाते हुए श्रीमद्भागवतके 'गोपी-गीता'के एक श्लोकका पाठ करने लगे। राजाके मुखसे श्रीमन्महाप्रभुने तत्कालोचित भागवतीय श्लोकका पाठ सुनकर प्रेमाविष्ट हो राजाका आर्लिगन किया। राजाकी वैष्णव-सेवामें निष्ठा देखकर महाप्रभुने राजाको विषयी न जानकर, वैष्णव-सेवक समझा और उनके ऊपर कृपा की।

श्रीजगन्नाथजीके 'सुन्दराचल' विराजनेपर श्रीमन्महाप्रभुको श्री-वृन्दावन-लीलाकी स्फूर्ति हुई। नवरात्र-यात्रामें श्रीमन्महाप्रभुने श्री-जगन्नाथ-बल्लभोद्यानमें निवास किया। रथ-द्वितीयाके बादकी पंचमी तिथिको जो 'हेरा-पंचमी'-उत्सव होता है, उस उत्सवको देखकर श्रीमहाप्रभु, श्रीश्रीवास पण्डित और श्रीस्वरूपगोस्वामीके बीच श्रीलक्ष्मी और श्रीगोपियोंके स्वभावके सम्बन्धमें बहुत-सी रहस्यमयी बातें हुईं।



श्रीमंदिरके सम्मुख श्रीविग्रहाधिष्ठित रथत्रय

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीश्रीवासके साथ रहस्यके बहाने श्रीलक्ष्मीनारायणकी उपासना, यहाँतक कि श्रीद्वारकानाथकी उपासनासे भी श्रीगोपीकान्त श्रीराधाकान्तकी उपासनाका श्रेष्ठत्व प्रदर्शन किया। 'पुनर्यात्रा'\*के समय कीर्तनादि हुए, परन्तु सुन्दराचलसे लौटनेके समय श्रीमन्महाप्रभु और उनके भक्तगण श्रीजगन्नाथके रथको खींचकर नीलाचल नहीं लाये। क्योंकि गोपियाँ अपने प्राणवन श्रीकृष्णको अन्य स्थानसे श्रीवृन्दावनमें ले आती हैं, परन्तु अपने घरसे अन्यत्र नहीं ले जाती।

## इकसठवाँ परिच्छेद

### गौड़ीय भक्तगण

श्रीरथयात्रा समाप्त होनेके बाद श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीगौरसुन्दरकी पुष्प-तुलसीके द्वारा पूजा की। श्रीगौरसुन्दरने भी पुष्प-पात्रमें बचे हुए पुष्प और तुलसीके द्वारा श्रीअद्वैताचार्यकी 'योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते'† मन्त्रके द्वारा पूजा की। उसके बाद श्रीअद्वैताचार्यने श्रीगौरसुन्दरको निमन्त्रण देकर भोजन कराया। श्रीनन्दोत्सवके दिन श्रीमहाप्रभुने प्रिय भक्तोंके साथ गोप-वेष धारण कर आनन्दोत्सव मनाया। 'विजया-दशमी'के दिन लका-विजयोत्सवमें श्रीमहाप्रभुने अपने भक्तोंकी वानर-सेना सजाकर स्वयं श्रीहनुमानके आवेशमें अत्यन्त आनन्द प्रकट किया। इसी प्रकार अन्यान्य यात्रा-महोत्सवोंके समाप्त होनेपर श्रीमहाप्रभुने श्रीरामदास, श्रीदास-गदाधर प्रभृति कुछ पार्षद वैष्णवोंको

\* 'पुनर्यात्रा'—उल्टा रथ। इस समय 'सुन्दराचल'से श्रीजगन्नाथ-देव रथपर चढ़कर पुन 'नीलाचल' लौट आते हैं।

† तुम जो हो, सो हो, मैं तुमको ही नमस्कार करता हूँ।

साय देकर श्रीनित्यानन्द और श्रीअद्वैताचार्यको आचण्डाल सब लोगोमें निर्बाध प्रेम भक्तिका वितरण करनेके लिये गोडदेशको भेजा। पश्चात् अनेको दीनता-भरी उक्तियोंके साथ श्रीश्रीवास पंडितके हाथ श्रीशची माताके लिये प्रसाद और वस्त्रादि भेजे। गौडीय भक्तोंके विविध गुणोंका बखान करते हुए श्रीमहाप्रभुने सबको विदा किया और श्रीसत्यराज खॉ और श्रीरामानन्द वसुको प्रति वर्ष रथके समय ‘पट्टडोरी’ लानेका आदेश किया।

-----

## बासठवाँ परिच्छेद

### ‘कुलीनग्राम’-वासियोंके परिग्रह

बगालमें आधुनिक बर्दवान जिलेके पूर्व-दक्षिण भागमें ‘कुलीन-ग्राम’\* एक प्रसिद्ध प्राचीन जनपद है। श्रीहरिदास ठाकुरने कुलीन-ग्राममें रहकर भजन किया था और उस ग्रामके प्रधान और प्रतिष्ठित वसुवशी लोगोके प्रति कृपा वितरण की थी। श्रीगौरसुन्दरके आविर्भावके पहलेसेही कुलीन-ग्राम निवासी श्रीसत्यराज खॉ प्रभृतिने श्रीहरिदास ठाकुरकी कृपासे उद्भासित होकर कुलीनग्राममें श्रीनाम-सकीर्तनकी बाढ बहा दी थी।

‘श्रीकृष्णविजय’ ग्रन्थके रचयिता कुलीनग्रामवासी श्रीमालाधर वसु (श्रीगुणराज खॉ) है, उनके द्वितीय पुत्र ‘हृदय-नन्दन’ श्रीलक्ष्मी-

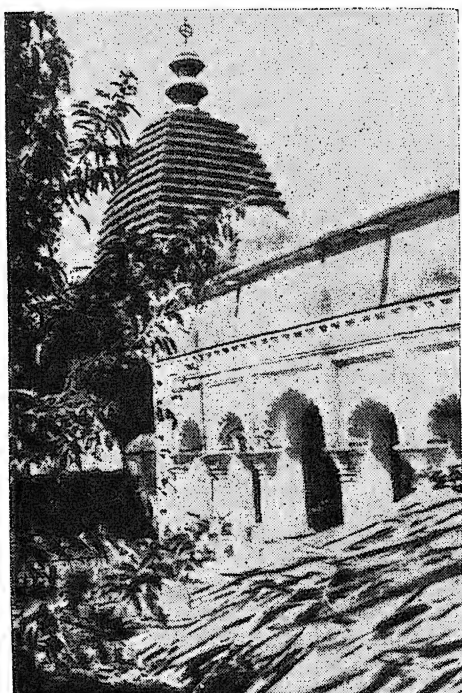
---

\*हवडा-बर्दवान कर्ड लाइनमें, हवडासे ४१ मील दूरपर जौग्राम नामका स्टेशन आता है। वहांसे पूर्वोत्तर कोणकी ओर लगभग तीन मीलपर कुलीन ग्राम है। ग्रंथकार रचित ‘कुलीनग्राम’ प्रबन्ध तथा ‘गौडमण्डल’ में सविस्तार आलोचना देखें।

नाथ वसु (श्रीसत्यराज खाँ) हुए; उनके पुत्रका नाम था श्रीरामानन्द वसु। श्रीश्रीगौरसुन्दर श्रीगुणराज खाँ और उनके वंशको, यहाँतक कि उनके गाँवके कुत्ते आदि पशुको भी अपना प्रिय समझकर उन्होंने अपने मुँहसे कहा है,—

“गुणराज खान् कैल ‘श्रीकृष्णविजय’ ।

ताहाँ एक वाक्य ताँर आछे प्रेममय ॥



श्रीसत्यराज खाँका प्रतिष्ठित श्रीमदनगोपाल देवका  
श्रीमंदिर ( कुलीनग्राम )

‘नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ ।’  
 एइ वाक्ये बकाइनु तोंर वशेर हात ॥  
 तोमार कि कथा, तोमार ग्रामेर कुक्कुर ।  
 सेह मोर प्रिय, अन्यजन रहू दूर ॥”

—चै० च० म० १५।१६-१०१

[ गुणराज खॉने ‘श्रीकृष्णविजय’की रचना की । उस ग्रथमें—  
 ‘नन्द-नन्दन कृष्ण मेरे प्राणनाथ,’—उनका एक प्रेममय वाक्य है । इस  
 वाक्यके कारण मैं उनके वशके हाथ बिक गया हूँ । तुम्हारी तो बात  
 ही क्या है, तुम्हारे गाँवका कुत्ता भी मुझे प्यारा है, दूसरे लोगोकी तो  
 बात ही छोड़ दो ]

श्रीरथयात्राके बाद पुरीसे देशमें लौटते समय श्रीसत्यराज और श्री-  
 रामानन्दने श्रीमहाप्रभुसे लगातार तीन वर्ष तक (प्रतिवर्ष) वैष्णव-  
 गृहस्थके कर्तव्यके सबधमें कुछ प्रश्नोके द्वारा जानकारी प्राप्त की थी ।

प्रथम वर्ष श्रीमहाप्रभुने कहा,—

##“कृष्ण-सेवा, वैष्णव-सेवन ।

निरन्तर कर’ कृष्णनाम-संकीर्तन ॥”

—चै० च० म० १५।१०४

[कृष्णसेवा, वैष्णवसेवन और निरन्तर कृष्णनाम-संकीर्तन करो ]

तब श्रीसत्यराज खॉने पूछा,—“हम वैष्णवको कैसे पहचानें ?  
 वैष्णवके साधारण लक्षण क्या हैं ?” श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“जिनमें  
 नामापराध नहीं है, नामाभास होता है उनको ही तुम ‘वैष्णव’ जानो ।  
 नामाभासके फलस्वरूप समस्त पाप और अनर्थ नष्ट हो जाते हैं ;  
 नामसे नवधा भक्ति पूर्णताको प्राप्त होकर प्रेम प्रकट हो जाता है ।”

पूर्व वर्षकी भाँति दूसरे वर्ष भी श्रीसत्यराज खॉ और श्रीरामा-  
 नन्द वसुने फिर उसी प्रश्नको महाप्रभुसे पूछा । इस बार महाप्रभुने  
 उन लोगोसे कहा,—

\* \* “वैष्णव-सेवा, नाम-सकीर्तन ।

दुइ कर', शीघ्र पाबे श्रीकृष्ण-चरण ॥”

—चै० च० म० १६।७०

[ वैष्णवसेवन तथा नाम-सकीर्तन दोनों करो । श्रीकृष्णके चरणोंको शीघ्र प्राप्त करोगे । ]

उन्होंने पुन जब वैष्णवके लक्षण पूछे तब महाप्रभुने इस बार पूर्वपिक्षा श्रेष्ठ वैष्णवका (वैष्णवतरका) लक्षण बतलाया,—

“कृष्णनाम निरन्तर योंहार बढने ।

सेइ वैष्णव-श्रेष्ठ, भज तोंहार चरणे ॥”

—चै० च० म० १६।७२

[ जिसके मुखमें निरन्तर कृष्णका नाम रहता है, वह श्रेष्ठ वैष्णव है, उसके चरणोंका भजन करो । ]

तीसरे वर्ष पुरीमें जाकर श्रीसत्यराज खाँ प्रभृतिने श्रीमहाप्रभुसे वही एक प्रश्न पूछा । इस वर्ष श्रीमहाप्रभुने उत्तम वैष्णव (वैष्णवतम) अथवा महाभागवतका लक्षण बतलाया,—

“योंहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम ।

तोंहारे जानिओ तुमि 'वैष्णव-प्रधान' ॥”

—चै० च० म० १६।७४

[ जिनके दर्शनसे मुखमें कृष्णनाम आ जाता है, उनको तुम 'वैष्णव प्रधान' समझो । ]

अर्थात् जिनके नामाभास होता है वे 'वैष्णव' हैं । जिनके मुखमें निरन्तर श्रीकृष्णनाम नृत्य करता है, वे 'वैष्णवतर' हैं और जिनके द्वारा कीर्तन किये हुए श्रीकृष्णनामको सुनकर दूसरे मनुष्यके मुखसे भी श्रीकृष्णनाम प्रकट हो जाता है, अर्थात् दूसरा भी श्रीभगवान्‌के सुखानुसन्धानमें रत हो जाता है, वे ही 'वैष्णवतम' या सर्वोत्तम वैष्णव हैं । इन तीनों प्रकारके वैष्णवोंकी सेवा करना ही गृहस्थ-वैष्णवका कर्तव्य है ।

‘श्रीखंड’-वासी भक्तोंमें श्रीमुकुन्द, उनके पुत्र श्रीरघुनन्दन और मुकुन्दके कनिष्ठ भ्राता श्रीनरहरि सरकार—ये तीन प्रधान हैं। श्री-मन्महाप्रभुने श्रीमुकुन्दसे पूछा,—“रघुनन्दन तुम्हारा पुत्र है या पिता?” श्रीमुकुन्दने उत्तर दिया,—“जब श्रीरघुनन्दनके द्वारा ही मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हुई है तो श्रीरघुनन्दन ही मेरे पिता हैं और मैं उनका पुत्र हूँ।” इससे श्रीमुकुन्दने कृष्णभक्त श्रीरघुनन्दनमें पुत्र-वृद्धिका त्यागकर गुरुवृद्धि करनेका आदर्श दिखलाया है। जो लोग परमार्थका आश्रय करते हैं उनका चरित्र इसी प्रकारका होता है ; देहके सम्बन्धसे वे लोक किसी व्यक्ति या विषयको नहीं देखते।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीखंडवासी वैष्णवोंकी सेवाका निर्देश करके, सार्वभौम और विद्यावाचस्पति—इन दोनों भाइयोंको दाह-ब्रह्म श्रीजगन्नाथ और जल-ब्रह्म श्रीगंगाकी सेवा करनेका आदेश देकर श्रीमुरारि गुप्तकी श्रीराम-निष्ठाका वर्णन किया।

श्रीमुकुन्द दत्त और श्रीवासुदेव दत्त—ये दो भाई चटगाँवमें आविर्भूत हुए थे। श्रीरघुनाथदास-गोस्वामीके दीक्षागुरु श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके कृपापात्र थे। वैष्णव-सेवामें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरका बहुत खर्च होना आदि देखकर श्रीमहाप्रभुने श्रीशिवानन्द सेनको उनका ‘सरखेल’\* होकर खर्च सम्हालनेका आदेश दिया। श्रीमहाप्रभुसे श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने अत्यन्त कातर होकर निवेदन किया,—“प्रभो, जगत्के जीवोंके त्रिताप-दुःखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। जीवोंके सारे पाप मेरे सिरपर डालकर मुझे नरकभोग करने दीजिये; और आप सब जीवोंके भव-रोगको दूर कर दीजिये।”

श्रीवासुदेवकी इस प्रार्थनाको सुनकर श्रीमन्महाप्रभुका चित्त द्रवीभूत हो गया। श्रीमहाप्रभु बोले,— “श्रीकृष्ण भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

\* सरखेल—तत्वावधायक अर्थात् देखरेख करनेवाला व्यवस्थापक  
—चै० च० म० १५, १६, अ० प्र० मा०

है। जब तुम्हारी यह शुभ इच्छा हुई है, तब श्रीकृष्ण अवश्य ही उसे पूर्ण करेगा। भक्तकी इच्छामात्रसे ही सारा ब्रह्माण्ड अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर सकता है।”

श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरकी इस प्रार्थनामें कई सोचनेकी बातें हैं। पाश्चात्य देशमें ईसाई-भक्तोंका विश्वास है कि, महामति ‘यीशुख्रिष्ट’ ही जगत्के एकमात्र गुरु हैं, वे जीवोंके समस्त पापोंका बोझ अपने सिरपर लेनेके लिये तैयार होकर जगत्में आये थे। परन्तु, श्रीगौर-पार्षदोंमें श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर, श्रीहरिदास ठाकुर प्रभृति परदुःखी महापुरुष लोगोंने जगत्के जीवोंको उनकी (ईसाकी) अपेक्षा अनन्त कोटि गुना अधिकतर उन्नत, उदार और सार्वजनीन प्रेमभावकी शिक्षा दी है। श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके आदर्शमें एक ही साथ जड़ीय-स्वार्थत्यागरूप नि स्वार्थ, श्रीकृष्ण सेवा-दानरूप चिन्मय परार्थ और स्वार्थका अपूर्व सम्मेलन दीख पड़ता है। सब जीवोंके केवल पाप ही नहीं, सब प्रकारके पापोंकी अपेक्षा भी भीषणतर भवरोगके मूल कारण जो भगवद्विमुखता है, उसको भी अपने कन्धोपर लेकर श्रीवासुदेव दत्त ठाकुर उनके भवरोगको मिटानेके लिये निष्कण्ठ प्रार्थना करके जो अनिर्वचनीय सर्वोत्कृष्ट दयाका आदर्श प्रदर्शित किया है, वह समग्र विश्वके सर्वश्रेष्ठ कर्मवीर और ज्ञानवीरोंकी भी कल्पनासे अतीत है। प्रायश्चित्तादिके द्वारा पाप दूर होते हैं, परन्तु भगवद्विमुखताका बीज दूर नहीं होता। पाप—प्राकृत प्रतिबन्धक है, परन्तु अप्राकृत—अप्राकृत वस्तुकी सेवामें प्रतिबन्धक होता है। स्व-स्वरूपकी उपलब्धिमें जो विघ्नस्वरूप है, वही अनर्थ है। भगवद्विमुखता ही मूल भवरोग है। अनादिकालसे ही जीव परतत्त्व (श्रीकृष्ण)के विषयमें ज्ञानहीन होकर मायाके कारागारमें ताप भोग रहा है। किसी दिन भी उसको श्रीकृष्ण-सम्बन्धी ज्ञान नहीं था। महापुरुषकी कृपासे वह ज्ञानका अभाव दूर हो जाने पर फिर वह विमुखता-रोग आक्रमण नहीं करेगा। महान् उदार श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरने जीवके उस भवरोग या अविद्याको सदाके



लिये दूर करके सब जीवोंको श्रीकृष्णप्रेममें विभोर करनेके लिये स्वयं नरककी कामना की थी। इसलिये उनका आदर्श ही अतुलनीय और उच्चतम है ।



## तिरसठवाँ परिच्छेद ‘अमोघ’-उद्धार

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी विशेष प्रार्थनासे उनके घर क्रमशः पाँच दिन भिक्षा स्वीकार की। भट्टाचार्यकी एक कन्याका नाम था—‘षष्ठी’। पुकारनेका नाम था—‘षाठी’। एक दिन ‘षाठी’ की माता अर्थात् श्रीभट्टाचार्यकी सहधर्मिणीने नाना प्रकारके उत्कृष्ट भोजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीमहाप्रभुके भोजनके समय षाठीका स्वामी ‘अमोघ’ श्रीमहाप्रभुके सामने विचित्र नैवेद्यको देखकर श्रीमहाप्रभुको भोगी सन्यासी बताकर उनकी निन्दा करने लगा। श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर श्रीभट्टाचार्य हाथमें लाठी लेकर दामादको मारनेके लिए तैयार हो गये, अमोघ भागा और भट्टाचार्य उसके पीछे दौड़े। षाठीकी माता श्रीमहाप्रभुकी निन्दा सुनकर अपना सिर और छाती पीटने लगी, तथा ‘षाठी विधवा हो जाय’ कहकर बार-बार शाप देने लगी। अपनी कन्याके सासारिक सुख-भोगकी ओर देखते हुए भी उन्होंने श्रीमहाप्रभुकी निन्दा करनेवाले दामादको क्षमा नहीं किया। अन्तमें दोनोंने ही श्रीमहाप्रभुसे क्षमा-प्रार्थना करके उनको अपने वासस्थानपर भेज दिया। इधर भट्टाचार्य घरके भीतर आकर अपनी सहधर्मिणीके सामने अत्यन्त खेद प्रकट

करते हुए बोले,—“श्रीमहाप्रभुके निन्दकके प्राण लेने अथवा अपने प्राण देनेपर ब्राह्मण-वधका पाप लगेगा। अतएव अबसे उस निन्दकका मुख न देखना या नाम न लेना ही श्रेय है। षाठीका पति ‘पतित’ हो गया है, अतएव षाठीको अपने पतिका परित्याग करनेके लिए कह दो। पतित स्वामीका त्याग करना ही उचित है।”

श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और उनकी पत्नीकी यह आदर्श शिक्षा हम सभीके लिए अनुसरण करने योग्य है। जगत्में आत्मीयरूपसे परिचित अतिप्रिय स्नेहभाजनगण भी यदि भक्त और भगवान्से द्वेष करते हैं, तो वैसे तथाकथित आत्मीयोका भी दुःसग निर्मम होकर छोड़ दे और साधुसगमे दृढरूपसे लगा रहकर भगवान्की सेवा करे, यही कर्तव्य है।

दूसरे दिन प्रातःकाल अमोघको हैजेने आ दबाया। कृपामय श्रीगौरहरि यह सुनते ही भट्टाचार्यके घर आये तथा उनके प्रति कृपा-परवश होकर उन्होंने अमोघको तुरन्त ही रोगमुक्त करके श्रीकृष्ण-नाममें रुचि प्रदान की।



## चौसठवाँ परिच्छेद

### गौड़ीय-भक्तोंका पुनः नीलाचलमें आना

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा की, परन्तु श्रीरामानन्द राय और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीमन्महाप्रभुको नाना प्रकारसे भुलावेमें डालकर श्रीवृन्दावन जानेसे रोक लिया। श्रीभगवान् स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तोंके अधीन हैं।

तीसरे वर्ष यथा-समय श्रीअद्वैतादि गौड़ीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिए नीलाचल आये। श्रीशिवानन्द सेनने सबके मार्ग-

व्ययका प्रबन्ध किया। श्रीअद्वैत और श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रतिवर्ष ही नीलाचल आकर श्रीमन्महाप्रभुकी एकमात्र अभिलाषा तथा उनके द्वारा दिए गए निर्देश श्रीनामप्रेम-प्रचारके समाचार सुनाते। अतः इस बार श्रीमहाप्रभुने श्रीनित्यानन्दसे कहा,—“तुम प्रतिवर्ष नीलाचल मत आना। गौडदेशमें रहकर मेरी इच्छा पूरी करना, क्योंकि मेरे अभीष्टरूप इस गुह्यतर सेवा-कार्यको करनेवाला तुम्हारे सिवा दूसरा कोई योग्यपात्र नहीं है।”

इसका उत्तर देते हुए श्रीनित्यानन्द प्रभुने कहा,—“मैं देहमात्र हूँ, और उस देहमें तुम्हीं प्राण हो। देह और प्राण परस्पर अभिन्न हैं। देहकी अर्थात् मेरी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। तुम अपनी ही अचिन्त्य शक्तिसे समस्त कार्य सम्पन्न करते रहते हो।\*

आज जो सब लोग कल्पनाके वशीभूत हो यह सोचते हैं कि श्रीनित्यानन्दके श्रीगौरसुन्दरसे अलग होकर गौड-देशमें धर्म प्रचार करनेके कारण तथा श्रीचैतन्यदेवके भी नीलाचलमें रहने और गौडदेशके प्रचारका कोई सवाद न रखनेके कारण श्रीनित्यानन्दका प्रचारित मत श्रीचैतन्यके मतसे पथक् हो गया था, उनलोगोंकी ऐसी धारणा बिल्कुल निराधार और भ्रान्तिमूलक है, यह श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी उपर्युक्त बातोंसे ही प्रमाणित होती है।



## पैसठवाँ परिच्छेद

### श्रीमन्महाप्रभुका वृन्दावन जानेका संकल्प

इतने दिनो तक श्रीराय रामानन्द और श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीवैतन्यदेवको श्रीवृन्दावन धाम नहीं जाने दिया। चौथे और पाँचवें वर्ष भी गौडीय भक्तगण श्रीमहाप्रभुके दर्शन कर प्रभुके आदेशसे पुनः गौडदेश लौट गये। इस बार श्रीगौरसुन्दरने गौडदेश होते हुए श्रीवृन्दावन जानेके लिये श्रीसार्वभौम और श्रीरामानन्दसे अनुमति चाही, परन्तु भट्टाचार्य और रायके अनुरोधसे वे वर्षाकालमें श्रीवृन्दावन न जाकर पुरीमें ही कुछ समय तक रह गए। तदनन्तर उन्होंने भक्तोंके लिये श्रीजगन्नाथका प्रसादादि साथ लेकर विजया-दशमीके दिन श्रीवृन्दावनके लिए यात्रा की। श्रीमहाप्रभुके साथ श्रीरामानन्द राय 'भद्रक' तक पहुँचाने आये। श्रीमहाप्रभुके विच्छेदके डरसे तथा सगके लोभसे श्रीगदाधर पंडितने 'क्षेत्र-सन्यास'\* त्यागनेका दृढ संकल्प कर लिया, श्रीमहाप्रभुने पंडित गोस्वामीको शपथ देकर 'कटक' से सार्वभौमके साथ श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र भेज दिया और भद्रकसे श्रीरामानन्दको भी बिदा कर दिया। श्रीमन्महाप्रभु क्रमशः उड़ीसाकी सीमामें आ पहुँचे। इस सीमाभूमिके बादसे पिछन्दा-तकके समस्त स्थान उस समय मुसलमानोंके अधिकारमें थे, डरके मारे कोई उस रास्तेसे नहीं जाता था। श्रीमहाप्रभुकी कृपासे स्थानीय मुसलमान-शासककी चित्तवृत्ति बदल गई। तत्कालीन राजनीतिक अवस्थाका विचार करके वह

---

\* जो लोग अपना पहला घर त्यागकर किसी विशेष विष्णुतीर्थमें अर्थात् पुरुषोत्तम क्षेत्रमें, नवद्वीपधाम या मथुरामंडलमें एकमात्र श्रीमगवानकी सेवाके उद्देश्यसे निवास करते हैं उनके आश्रमको 'क्षेत्र-सन्यास' कहते हैं। श्रीगदाधर पंडित इस प्रकारका 'क्षेत्र-सन्यास' लेकर पुरीमें श्रीटोटा-गोपीनाथकी सेवा करते थे।

मुसलमान शासक हिन्दू-पोशाक पहनकर महाप्रभुके दर्शन करने आया तथा दूरसे ही साष्टांग दण्डवत् करके अश्रु-पुलकित हो तथा हाथ जोड़कर श्रीमहाप्रभुके सामने श्रीकृष्ण नाम लेने लगा ।\*

पश्चात् यही मुसलमान शासक श्रीमहाप्रभुके स्वच्छन्द गमनके लिये नौका प्रदानकर तथा अन्यान्य सुव्यवस्था करके धन्य हो गया । कहीं जलके डाकू लोग श्रीमहाप्रभुको कोई हानि न पहुँचावें, इस दृष्टिसे दस नौका-सेना साथ लेकर वह परम भाग्यवान् भक्त मुसलमान-शासक स्वयं ‘मन्त्रेश्वर’नद पार होकर ‘पिछन्दा’ तक साथ आया । श्रीमहा-प्रभुने उस भक्त महाशयको पिछन्दासे बिदा किया और नौकापर सवार होकर वे ‘पानिहाटी’ पहुँचे । पानिहाटीके श्रीराघव पंडितके घरसे क्रमशः ‘कुमारहट्ट’में श्रीश्रीवास पंडितके घर, उसके समीप श्रीशिवानन्दके घर, तत्पश्चात् ‘विद्यानगर’ में श्रीविद्यावाचस्पतिके स्थानसे चुपके-चुपके ‘कुलिया’ ग्राममें जाकर श्रीश्रीवास पंडितके चरणोंमें अपराधी भागवत-पाठक देवानन्द पंडित और गोपाल-चापालके अपराधको दूर किया ।

वर्तमान नवद्वीप-शहर ही ‘कुलिया’ या ‘कोलद्वीप’ है । इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने वैष्णवापराधियोंके अपराध क्षमा कराये थे । अतएव यह ‘अपराध-भजनका पाट’ के नामसे भी प्रसिद्ध है ।



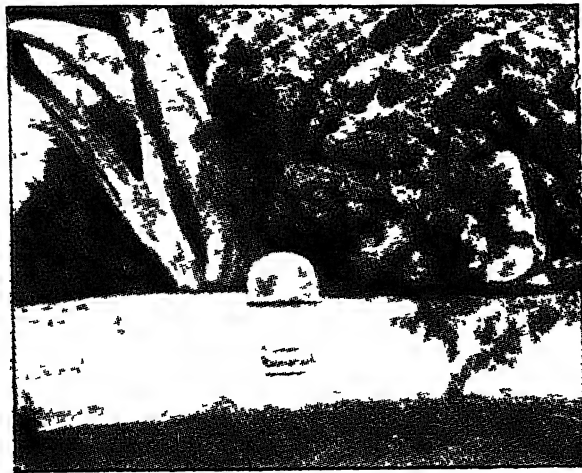
## छासठवाँ परिच्छेद

### ‘कानाइ-नाट्यशाला’

श्रीमन्महाप्रभुने महत् (महापुरुष) के पादपद्मोमे आश्रयकी लीला प्रकट करके श्रीगयाधामसे नवद्वीपकी ओर लौटते समय पहले ‘कानाइ-नाट्यशाला’ में ही अपने आत्मप्रकाशकी लीलाका आविष्कार किया था। इसी स्थानमें विप्रलम्भप्रेम-विग्रह श्रीगौरसुन्दरकी कृष्णानुसन्धान-लीला और आत्म-प्रकाशकी प्रथम सूचना मिलती है। इसी स्थानमें श्रीमन्महाप्रभुने महत्के पद-रजसे अभिषिक्त व्यक्तिके लिए ही दिव्य-किशोर-मूर्ति-श्रीकृष्णके दर्शन होना सहज और सम्भव है, अपनी लीलासे इस तत्त्वको प्रकट किया था। गयासे नवद्वीपकी ओर लौटते समय श्रीमहाप्रभुकी ‘कानाइ-नाट्यशाला’ में यह प्रथम आगमन-लीला है। यह १४२६ शक्राब्दीकी बात है।

सन्यास-ग्रहण-लीला प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल चले गये थे। श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छासे श्रीमहाप्रभु नीलाचलसे गौडमडलमें आये तथा विद्यानगरमें महेश्वर विशारदके पुत्र अर्थात् श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके भ्राता श्रीविद्यावाचस्पतिके घरमें पाँच दिनो तक ठहरे। वहाँ जन-समारोह देखकर श्रीमहाप्रभु रातको वर्तमान नवद्वीप-शहर ‘कुलिया’ में आ गये और कुलियासे श्रीवृन्दावनके लिए चल पडे। असंख्य जनता श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये व्याकुल होकर प्रभुका अनुसरण करने लगी। चलते-चलते श्रीमहाप्रभु ‘गौड’ के समीप गगाके किनारे ‘रामकेलि’ गाँवमें आये। उस समय वहाँ श्रीरूप और श्री-सनातन—ये दो भाई क्रमसे ‘दबीर-खास’ और ‘साकर-मल्लिक’ के नामसे परिचित होकर गौडाधिपति हुसैन शाह बादशाहके राज्य-सचालनमें प्रधान सहायकके रूपमें अधिष्ठित थे।

हुसेन शाहने दबीर-खाससे श्रीमहाप्रभुका माहात्म्य सुनकर उनको ‘साक्षात् ईश्वर’ समझा। रामकेलिमें श्रीमन्महाप्रभुके साथ श्रीनित्यानन्द, श्रीहरिदास, श्रीश्रीवास, श्रीगदाधर, श्रीमुकुन्द, श्रीजगदानन्द, श्रीमुरारि, श्रीवक्रेश्वर-प्रभृति भक्तगण थे। श्रीचैतन्यदेवने अपने भक्तोंके साथ श्रीसनातन और श्रीरूपको अपने नित्य अन्तरंग-सेवकके रूपमें स्वीकार किया। हुसेन शाह बादशाहने श्रीमहाप्रभुके प्रभावको सुनकर उनके स्वच्छन्द गमनमें किसी प्रकार बाधा न दी जाय, इसके लिये अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुको शीघ्र रामकेलिसे अन्यत्र जानेके लिये प्रार्थना की। क्योंकि, यद्यपि बादशाह श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखता है तथापि वह यवन है, उसका विश्वास नहीं किया जा सकता। श्रीसनातनने श्रीमन्महाप्रभुसे और



गौडके रामकेलिग्राममें श्रीचैतन्यदेव तथा  
श्रीश्रीरूप-सनातनका मिलन-मीठ

भी कहा कि,—“प्रभो, आप इस समय वृन्दावनके मार्गमें और अग्रसर न हो, तीर्थयात्रामें इतना जन-समुदाय अच्छा नहीं,—

‘याहाँ सगे चले एइ लोक लक्ष-कोटि ।

वृन्दावन याइवार ए नहे परिपाटी ॥”

—चै० च० म० १।२२४

[ जिनके साथ लाखों-करोड़ों आदमी चलते हैं, वृन्दावन जानेकी यह रीति नहीं है, अर्थात् लाखों-करोड़ों आदमियोंको साथ लेकर वृन्दावन जानेकी पद्धति नहीं है । ]

यवन राजाके राज्यशासनमें राष्ट्रीय जगत्की तत्कालीन अवस्था जैसी हो गयी थी, उसीको देखकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवामें तत्पर, बुद्धिमें वृहस्पति श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारका परामर्श दिया ।

इधर, जिस समय श्रीमहाप्रभुके कुलियासे श्रीवृन्दावन जानेकी बात हुई, उसी समय प्रभुके भक्त श्रीनृसिंहानन्द श्रीवृन्दावनके मार्गकी दुर्गमताको समझकर श्रीमहाप्रभुके लिये ध्यानमग्न होकर मानस-सेवा द्वारा ‘कुलिया’ (आजकल म्यूनिसिपल शहर—नवद्वीप) से श्रीवृन्दावन तक रास्ता बनाने लगे । अति कष्टकाकीर्ण और ककड़ोंसे पूर्ण मार्ग पर पैदल चलनेसे प्रभुके सुकोमल श्रीचरणकमलोंमें चोट लगेगी, यह सोचकर श्रीनृसिंहानन्दने मानस-सेवा द्वारा उस रास्तेमें वृन्त-रहित कोमल-पुष्पोंकी शय्या बना दी । धूपसे प्रभुको कहीं कष्ट न पहुँचे, इसलिये श्रीनृसिंहानन्दने रास्तेके दोनों किनारे पुष्प-युक्त मौलसिरीकी श्रेणियाँ स्थापित कर दी । सुशीतल छाया और मौलसिरीकी सुगन्ध—दोनों ही प्रभुके लिये स्निग्धता प्रदान करेगी । यदि मार्गकी थकावटसे महाप्रभुको प्यास लगे तो इसके लिये नृसिंहानन्दने बीच-बीचमें रास्तेके दोनों ओर ‘रत्नबँधे घाट’ तथा फूले हुए कमलदलोंसे सुशोभित और सुधामय जलसे पूर्ण दिव्य पुष्करिणी बना दी । पुष्करिणीके चारों ओर मधुर कण्ठवाले पक्षियोंकी सुललित काकली, तथा मृदु-मन्द,



सुगन्ध समीर प्रभृतिकी मनोहारिणी सुषम। प्राण-प्रभुकी सेवाके लिये सुसज्जित कर दी। इस प्रकार कुलिया नगरसे रास्ता बनाना आरम्भ करके जब 'गौड' के निकट 'कानाइ-नाट्यशाला' तक रास्ता बन गया, तब श्रीनृसिंहानन्दका ध्यान टूट गया। इससे श्रीनृसिंहानन्द भक्तोंके सामने भविष्यद्वाणी करते हुए बोले,—“इस बार श्रीमहाप्रभु केवल 'कानाइ-नाट्यशाला' तक ही जायेंगे, श्रीवृन्दावन नहीं जायेंगे। तुम लोगोंको यह बात पीछे मालूम हो जायगी।” ठीक यही हुआ भी, श्रीरूप-सनातनकी सेवा-वत्सलता और श्रीनृसिंहानन्दकी भविष्यद्वाणीको सार्थक करनेके लिये श्रीमन् महाप्रभु श्रीवृन्दावनके मार्गमें 'कानाइ-नाट्यशाला' में जाकर वहाँ कानाइके नाना प्रकारके नाट्य और लीला-विलासके देखनेके पश्चात् श्रीवृन्दावन जानेकी इच्छा छोड़कर नीलाचलके (पुरीके) रास्तेमें 'शान्तिपुर' पहुँचे और वहाँ श्रीअद्वैताचार्यके घर सात दिन रहकर पुनः श्रीनीलाचलमें लौट आये। श्रीमन् महाप्रभुने १४३४ शकाब्दमें दूसरी बार 'कानाइ-नाट्यशाला' में शुभागमन किया।

'कलकत्ता-हवडा-काटवा-अजीमगज-बरहरवा' लाइनमें 'तालझरी' स्टेशनमें उतरकर मैदानके कच्चे रास्तेसे प्रायः दो मील पूर्व-उत्तरकी ओर अथवा पक्के रास्तेसे स्टेशनके पूर्वकी ओर-स्थित 'मगलहाट' गाँवसे प्रायः दो मील उत्तर 'कानाइ नाट्यशाला'\* नामक गाँव है। यह गाँव एक छोटी पहाड़ीपर बसा है। पूर्वकी ओर विष्णुपादोद्भवा पतितपावनी जाल्म्वी प्रवाहित हो रही है। चारो ओर हरे-भरे वन सुशोभित हो रहे हैं, वनके पुष्पोपर मधुलोभी भ्रमर मधुर गुजार कर रहे हैं, नाना प्रकारके खग-मृग वनभूमिको सुखरित करते हुए निर्जनताके बीच एक स्वाभाविक एकतानके भावकी सृष्टि कर रहे हैं।

वह स्थान अकिंचन भजनानन्दी जनोके लिये जिस प्रकार भजनके अनुकूल और उद्दीपक है, उसी प्रकार प्राकृत विराट्-रूपमें मोहग्रस्त

---

\* स्थानीय लोग इसको 'कन्हैयाका थान' कहते हैं।

लोगोंकी भाव-प्रवणताके लिये भी सहायक है। पहाड़ीके ऊपर एक मन्दिर और सेवकोंके लिये वास-गृह है। उस श्रीमन्दिरमें श्रीश्री-राधाकृष्णकी युगल मूर्ति विराजमान है। इस श्रीश्रीराधा-कृन्हाईकी नाट्यशालासे ही इस स्थानका नाम 'कानाइ-नाट्यशाला' पडा है। गगाके दूसरे किनारे जिस प्रकार श्रीश्रीराधारमण श्रीरामका केलिस्थान 'रामकेलि' है, उसी प्रकार गगाके इस पार भी श्रीकृष्णका केलि-स्थान 'कानाइ-नाट्यशाला' है।

अग्रेजी सन् १९२६ ई० की १२वीं अक्टूबरको श्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामि-प्रभुपाशने 'कानाइ-नाट्यशाला'में श्रीचैतन्यदेवके 'पादपीठ' की स्थापना की है।



## सड़सठवाँ परिच्छेद

### श्रीरघुनाथ दास

हुगली जिलेके अन्तर्गत 'त्रिश-विघा' रेलवे स्टेशनके पास सर-स्वती नदीके किनारे 'सप्तग्राम' नामक नगरके अन्तर्गत 'श्रीकृष्णपुर' ग्राममें 'हिरण्य' और 'गोवर्द्धनदास' निवास करते थे। इनकी राज-प्रदत्त उपाधि थी—'मजुमदार'। ये लोग कायस्थ-कुलोत्पन्न विशेष सम्भ्रान्त धनाढ्य व्यक्ति थे। इनकी वार्षिक खजानेकी आय उस समयकी बारह लाख मुद्रा थी। अनुमानत १४१६ शकाब्दमें श्री-रघुनाथ दास गोवर्द्धन मजुमदारके पुत्रके रूपमें आविर्भूत हुए थे।

हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुर के कृपापात्र थे। जब श्रीरघुनाथ श्रीबलराम आचार्यके घर अध्ययन करते थे, तभी श्रीरघुनाथको श्रीठाकुर हरिदासका सग प्राप्त हुआ। जिस क्षण श्रीरघुनाथने श्रीगौरसुन्दरका नाम सुना, उसी क्षणसे उनके दर्शनके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनके लिये श्रीरघुनाथने कई बार पुरी भागनेकी चेष्टा की। परन्तु गोवर्द्धन दासने नाना प्रकारसे उसमें बाधाएँ उपस्थित की। एकमात्र पुत्र और विपुल ऐश्वर्यके भावी उत्तराधिकारी श्रीरघुनाथको ससार-सौकलमें बाँधनेके लिये गोवर्द्धन दासने एक परम-रूप-लावण्यवती कन्याके साथ उनका विवाह कर दिया, परन्तु रघुनाथ किसी प्रकारसे भी शान्त नहीं हुए।

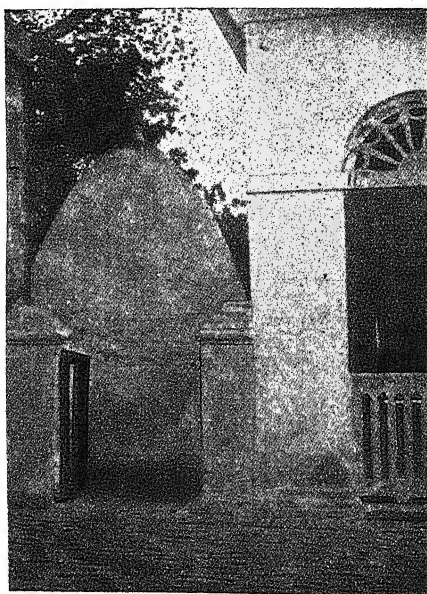
श्रीगौरसुन्दर दूसरी बार श्रीवृन्दावन जानेका उद्योग करके नीलाचलसे कानाइ नाट्यशाला तक आये तथा श्रीवृन्दावन जानेकी चेष्टा छोड़कर पुन शान्तिपुर श्रीअद्वैतके घर लौट गये। सन्यासके बाद श्रीचैतन्यदेव यह दूसरी बार 'शान्तिपुर' आये। यह समाचार सुनकर रघुनाथ शान्तिपुरमें जा पहुँचे। पुत्र कहीं सन्यासी न हो जाय,— इस डरसे गोवर्द्धन दास श्रीरघुनाथके साथ बहुतसे आदमियोंको भेजा।

श्रीमन्महाप्रभु शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घर इस बार सात दिन रहे। श्रीरघुनाथकी अवस्था देखकर श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—“रघुनाथ, तुम पागलपन मत करो, स्थिर होकर घर लौट जाओ। मनुष्य धीरे-धीरे ही इस ससारको पार कर सकता है। लोगोको दिखलानेके लिये 'मर्कट-वैराग्य'\* मत करो, हरि-सेवाके लिये अनासक्तभावसे यथायोग्य विषयोको ग्रहण करो। बाहर लौकिक व्यवहार दिखलाकर भीतर परमार्थके प्रति दृढ़ निष्ठा करो। इससे शीघ्र ही कृपा प्राप्त होगी।”

---

\* मर्कट-वैराग्य—बाह्य वैराग्य। (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर)

श्रीगौरसुन्दरने अपने नित्यसिद्ध अन्तरंग पार्षद श्रीरघुनाथको लक्ष्य करके हमलोगोंके लिये यह अमूल्य उपदेश दिया है। जो लोग बाह्य-वैराग्यके उच्छ्वासमें तथा नवीन उन्मादमें लोगोंसे सम्मान पानेकी आशासे सामयिक 'फलगु-वैरागी' सजते हैं, वे उस वैराग्यकी रक्षा अधिक दिनोंतक नहीं कर सकते, शीघ्र ही 'पुनर्मूषिको भव' न्यायसे वैराग्य-च्युत हो जाते हैं। दूसरी ओर एक श्रेणीके लोग 'मर्कट वैराग्य'के निषेधका सुयोग पाकर सदा ही घरमें जमकर 'घर-पागल' बने रहनेको ही 'युक्त वैराग्य' समझते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इन दोनों प्रकारके विचारोंकी सर्वतोभावेन निन्दा की है। श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा यह है कि, कृत्रिम वैराग्य या तपस्यादिसे कभी भी भक्ति प्राप्त



श्रीराधाकुंडमें श्रीरघुनाथ दास  
गोस्वामिपादकी समाधि

नहीं होती। हृदयमें भगवान्‌के प्रति भक्ति उदित होनेपर अन्य विषयो में वैराग्य अपने-आप आनुषंगिक रूपसे ही प्रकट हो जाता है, उस वैराग्यमें कृत्रिमता नहीं होती। भक्ति-राज्यमें कृत्रिमताके लिये स्थान ही नहीं होता।

श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथसे कह दिया कि, जब वे श्रीवृन्दावनसे नीलाचल लौट आवे, तब श्रीरघुनाथ किसी बहाने आकर उनसे मिलें।



## अड़सठवाँ परिच्छेद श्रीवृन्दावनकी ओर—‘झारखंड’ के मार्गसे

श्रीकृष्णचैतन्यदेव शान्तिपुरसे श्रीबलभद्र भट्टाचार्य और श्रीदामोदर पंडितको लेकर पुरी लौट आये और कुछ दिन पुरीमें रहकर एकमात्र बलभद्र भट्टाचार्यको साथ लेकर ‘झारखंड’के\* वन-मार्गसे श्रीवृन्दावनकी ओर चल पड़े।

श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए निर्जन अरण्यके बीच चले जा रहे हैं। झुण्डके झुण्ड बाघ, हाथी, गेंडा, शूकर आदि बन्य और हिंस्र पशुओंके बीचमेंसे भी श्रीमहाप्रभुको भावावेशमें चलते देखकर भट्टाचार्यको बड़ा भय हुआ। परन्तु वे सब हिंस्र पशु श्रीमहाप्रभुका रास्ता छोड़कर अपने-अपने गन्तव्य स्थानकी ओर चले जाने लगे। एक दिन मार्गमें एक बाघ सोया था। चलते-

---

\* वर्तमान आटगढ, ढेंकानल, अगुल, सबलपुर्, लहारा, कियोझड, बामडा, बोनाई, गागपुर, छोटानागपुर, सथाल परगना, यशपूर, सर-गुजा—आदि के पहाडी और बडे जगली स्थानको ‘झारखण्ड’ कहा जाता था।

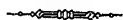
चलते श्रीमहाप्रभुका श्रीचरण अकस्मात् उस बाघके शरीरपर लग गया। श्रीमन्महाप्रभु भावावेशमें 'कृष्ण-कृष्ण' बोल रहे थे, वह बाघ भी उस समय श्रीमहाप्रभुका पादस्पर्श प्राप्त कर 'कृष्ण-कृष्ण' बोलकर नाचने लगा। दूसरे एक दिन महाप्रभु एक नदीमें स्नान कर रहे थे, उस समय मतवाले हाथियोंका एक झुण्ड उसी नदीमें पानी पीनेके लिये आया। श्रीमहाप्रभुने 'कृष्ण बोलो' कहकर उन हाथियोंके ऊपर जल फेंका, जिसके शरीरपर वह जल-कण लगा, वही उस समय 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर प्रेमसे नाचने लगा। यह सब देख-सुनकर बलभद्र भट्टाचार्य चकित हो उठे। रास्तेमें चलते समय महाप्रभु कृष्ण-सकीर्तन करते और उनकी मधुर कण्ठध्वनि सुनकर कान उठाये मृगागनाएँ उनके पास दौड़ आती। श्रीमहाप्रभु उनके शरीरको सहलाते हुए श्रीमद्-भागवतका श्लोक पढ़ने लगते। बाघ और मृग परस्पर हिंसा भूलकर एक सग महाप्रभुके साथ चलते। इन सब दृश्योंसे वृन्दावन-स्मृति उद्दीप्त हो जानेके कारण श्रीमहाप्रभु श्रीमद्भागवतके श्लोकोका उच्चारण करने लगते। वे जब, 'कृष्ण कृष्ण बोलो' कहते, तब बाघ और मृग एक साथ नाचने लगते, कभी परस्पर आलिगन करते तो कभी एक दूसरेका मुख-चुम्बन करते थे। मोर आदि पक्षिगण श्रीमहाप्रभुको देखकर कृष्णनाम बोलते-बोलते नृत्य करते। जब श्रीमहाप्रभु उच्च स्वरसे 'हरिबोल' कहते थे तो वृक्ष-लताएँ भी उस ध्वनिको सुनकर अत्यन्त प्रफुल्लित होती। झारखण्डके समस्त स्थावर और जगम श्रीगौरसुन्दरकी प्रेम-बाढमें आप्लावित हो गये। श्रीमहाप्रभु जिस ग्राममें-से होकर जाते थे, जहाँ ठहरते थे, उन सभी जगहोंके लोगोमें प्रेमभक्ति प्रकट हो जाती थी। एक दूसरे के मुँहसे, दूसरा तीसरेके मुँहसे—इस प्रकार कृष्णनाम सुनते-सुनते वहाँके सभी लोग वैष्णव हो गये। श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके प्रभावसे ही सब लोग वैष्णव होने लगे। श्रीमहाप्रभु जब झारखंड के मार्गसे चले जा रहे थे, उस समयकी उनकी अवस्थाका वर्णन सुनिये,—

बन देखि' भ्रम ह्य—एइ 'वृन्दावन' ।  
 शैल देखि' मने ह्य,—एइ 'गोवर्धन' ॥  
 याहाँ नदी देखे, ताहाँ मानये 'कालिन्दी' ।  
 महाप्रेमावेशे नाचे, प्रभु पडे कान्दि' ॥

—चै० च० म० १७।५५-५६

[बन देखकर भ्रम होता—यह वृन्दावन है। पर्वत देखकर मनमें आता—यह गोवर्धन है। जहाँ नदी देखते, वहाँ समझते—यह यमुना जी है। प्रभु महान् प्रेमावेशमें नाचते और रो पड़ते।]

श्रीमहाप्रभु महाभागवतकी लीला प्रकट करके सर्वत्र श्रीकृष्ण-भोग्य उपकरणोंको देखकर व्रजभावसे उद्दीप्त होने लगे। बलभद्र भट्टाचार्य झारखण्डके वनपथमें कभी-कभी जगली शाक, फल, मूल चयन करके वन्य-व्यजन तैयार करके श्रीमहाप्रभुको भोजन कराते थे, कभी-कभी दो-चार दिनोंके लिये अन्न तैयार करके साथ रख लेते थे। पहाड़ी-खोतोके उष्णजलमें श्रीमहाप्रभु तीनों समय स्नान करते थे, प्रातः एव सायंकाल जगली लकड़ियोंकी आग तापकर शीत दूर करते थे।



## उनहत्तरवां परिच्छेद

### प्रथम बार 'काशी' और 'प्रयाग'में

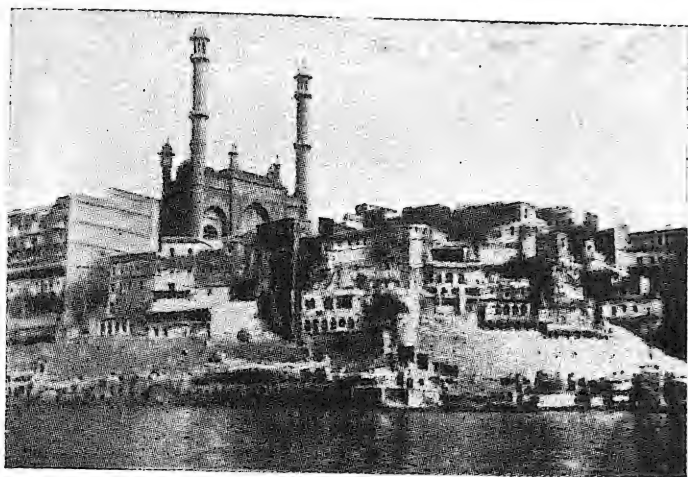
झारखण्डके वनमार्गसे चलते-चलते श्रीचैतन्यदेव बलभद्र भट्टाचार्यके साथ 'काशी'में जा पहुँचे। वहाँ 'मणिकर्णिका' घाटपर स्नान कर, श्रीविश्वेश्वर और श्रीविन्दुमाधवके दर्शन करके उन्होंने काशीवासी वैष्णव श्रीतपन मिश्रके घर पदार्पण किया। श्रीतपन मिश्रके पुत्र श्रीरघुनाथ (जो पीछे श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके नामसे परिचित हुए)

को उस समय श्रीमहाप्रभुकी चरण-सेवा तथा उच्छिष्टादि ग्रहण करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। श्रीमहाप्रभुने इस बार केवल चार दिन 'काशी' में अवस्थान किया। तपन मिश्र और एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मणने श्रीमहाप्रभुके पास मायावादके हलाहलसे प्लावित काशीकी दुर्दशा तथा काशीके मायावादी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीके द्वारा श्रीमहाप्रभुके प्रति दोषारोपणके विषयमें निवेदन करके विशेष दुःख प्रकट किया। श्रीमहाप्रभुने मायावादियोंकी दुर्दशाका वर्णन कर

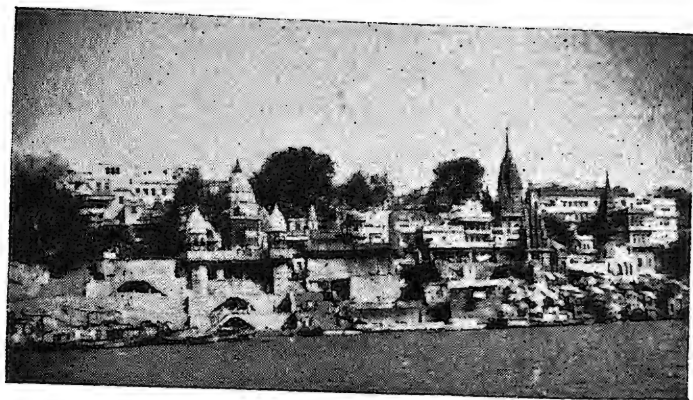


काशीमें श्रीचन्द्रशेखर-भवन ; वर्तमान  
नाम चैतन्य-वट या यतन-वट





पंचगंगा और श्रीविन्दु माधवकी ध्वजा



काशीमें मणिकर्णिका-घाट

उस समय मायावादियोंकी उपेक्षा की। श्रीमहाप्रभु बोले,—“श्रीकृष्ण-चरणमें अपराधी मायावादियोंके मुँहसे श्रीकृष्ण-नाम नहीं निकलता। इसी कारण वे, ‘ब्रह्म’, ‘आत्मा’, ‘चैतन्य’, प्रभृति शब्दोंका उच्चारण किया करते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्णका नाम और श्रीकृष्णका स्वरूप अर्थात् देह—दोनों एक ही वस्तु है।”

श्रीमहाप्रभु उस महाराष्ट्रीय ब्राह्मणपर कृपा करके ‘प्रयाग’ चले गये। प्रयागमें भी केवल तीन दिन रहकर श्रीकृष्णनाम-प्रेम वितरण किया और लोकोद्धार करते हुए श्रीमथुराजीमें आ उपस्थित हुए। दाक्षिणात्यकी भाँति पश्चिम-देशमें भी श्रीमहाप्रभुने सब लोगोंको वैष्णव बनाया।

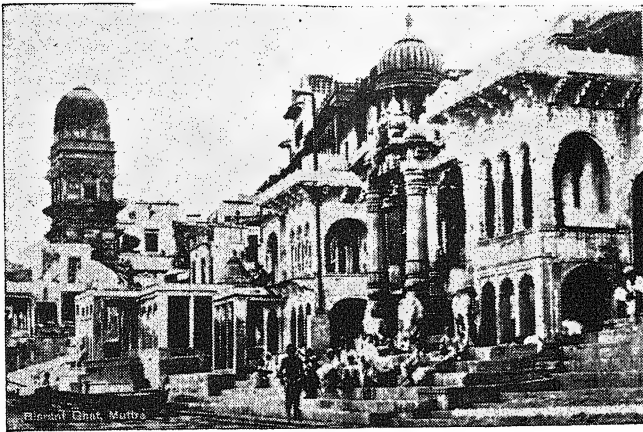


## सत्तरवां परिच्छेद

### श्रीमथुरा और श्रीवृन्दावनमें

श्रीमन्महाप्रभुने मथुराके निकट पहुँचकर श्रीधाम-मथुराको देखते ही साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट हो गये। श्रीमथुरा में आकर ‘श्रीविश्राम-घाट’ पर स्नान करके श्रीकृष्णके जन्म-स्थानमें ‘आदिकेशव’के दर्शन किये। उस समय एक ब्राह्मण वहाँ आकर श्रीमहाप्रभुके अनुगत हो प्रेमावेशमें नृत्य, गान करने लगे। श्रीमहा-प्रभुने निर्जनमें उन ब्राह्मणका परिचय पूछकर जान लिया कि वे श्री-माधवेन्द्र पुरीके शिष्य हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरीने श्रीमथुरामें आकर उक्त ब्राह्मणके घर उन्हींके हाथके पकाये अन्नको ग्रहण किया था। वह ब्राह्मण सनोडिया\* ब्राह्मणकुलमें आविर्भूत हुए थे। याजन-दोषसे पतित

\* सनोड-शब्दसे सुवर्ण-वर्णिकका बोध होता है। उनके याजक ब्राह्मण ही सनोडिया (वर्ण) ब्राह्मणके नामसे पुकारे जाते हैं।



### श्रीमथुरामें विश्राम-घाट

होनेके कारण ही इनके घर संन्यासी लोग कभी भी भोजन नहीं करते ; परन्तु श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादने जिनको शिष्य बनाकर जिनके हाथके बनाये अन्नको स्वीकार किया, वह व्यक्ति साधारण सामाजिक जातिकुलके अन्तर्गत नहीं रहे। श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीपादके आचरणका अनुसरण करते हुए उन सनोढ़िया ब्राह्मणके घर भोजन ग्रहण किया। महापुरुष और गृहजनोंके आदर्शका अनुसरण करना ही कर्तव्य है—इसी वैष्णव आचारकी शिक्षा श्रीमहाप्रभुने इस लीलाके द्वारा दी है। साधु पुरुषोंका व्यवहार ही सदाचार है।

जो लोग समझते हैं, —श्रीमहाप्रभु आधुनिक जातिभेद-वर्जनके प्रवर्तक थे ; अथवा जो यह समझते हैं कि वे यथार्थमें परमार्थी लोगोंके सम्बन्धमें भी जाति-विचार करते थे ; यह दोनों ही प्रकारका भ्रम श्रीमहाप्रभुके इस आदर्शके द्वारा दूर हो जाता है। श्रीमहाप्रभु जहाँ एक ओर अपारमार्थिक लोगोंकी व्यावहारिक जाति-भेद-प्रथाके उठाने या न उठानेके प्रश्नपर पूर्णतया निरपेक्ष थे, उसीप्रकार दूसरी ओर

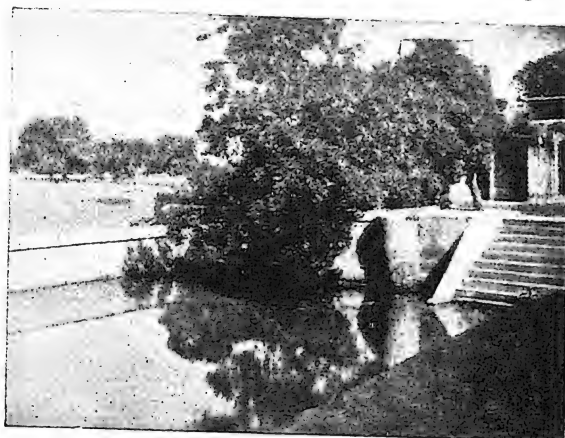
अपारमार्थिक तथाकथित ब्राह्मण सन्तानके हाथकी बनायी हुई कोई भी चीज उन्होंने कभी भी ग्रहण नहीं की। उन्होंने पारमार्थिक ब्राह्मण के हाथकी बनायी हुई वस्तु ग्रहण की है। श्रीचैतन्यदेवके चरित्रकी अन्यान्य घटनाओंकी आलोचना के प्रसंगमें भी इसके बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमथुराके “चौबीस घाटों”पर स्नान किया। श्रीमाधवेन्द्र पुरीके शिष्य उपर्युक्त सनोढ़िया ब्राह्मणके साथ श्रीमन्महा-प्रभुने श्रीव्रजमंडलके द्वादश बतोंमें भ्रमण कर समस्त लीला-स्थानोंके दर्शन किये। ‘आरिट्’-ग्राममें जहाँ अरिष्टासुरका वध हुआ था,

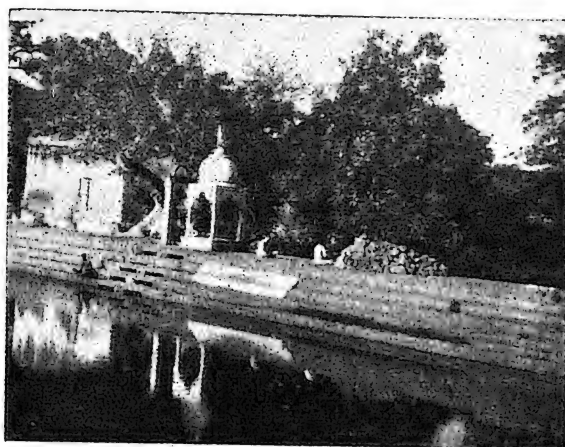


श्रीकृष्णके जन्मस्थानमें प्राचीन  
ध्वंसावशेष (श्रीमथुरा)

वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभुने वहाँके लोगोंसे पूछा कि, ‘श्रीराधाकुण्ड कहाँ है।’ परन्तु कोई भी नहीं बता सका। साथवाले सनोढ़िया ब्राह्मण भी इसे नहीं जानते थे। इससे, वह तीर्थ गुप्त हो गया है, यह जानकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीगौरसुन्दरने निकटके दो धानके खेतोंमें जहाँ थोड़ा-



श्रीराधाकुंडके इस स्थानपर महाप्रभुने उपवेशन किया था ऐसा प्रसिद्ध है । इस स्थानपर श्रीचैतन्यदेवका एक पादपीठ है

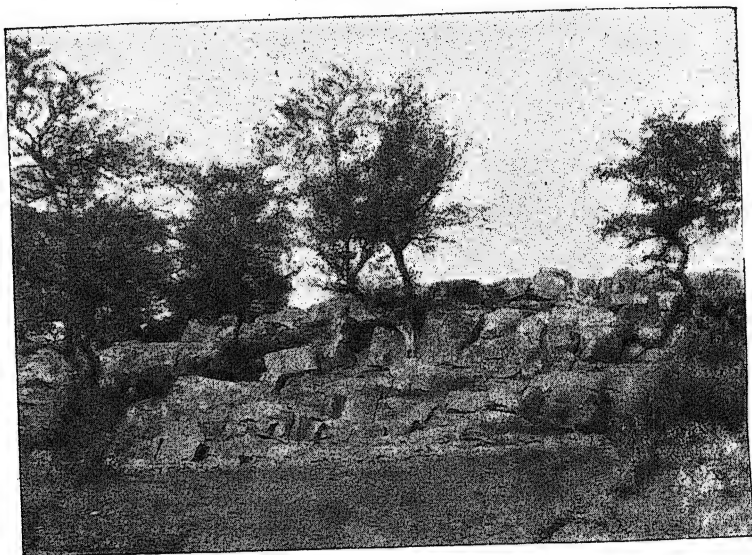


‘श्रीश्यामकुंड’ और ‘श्रीराधाकुंड’का -  
मिलन-स्थान

थोड़ा पानी था, वहीं स्नान किया और यह बतला दिया कि वे धानके खेत ही 'श्रीराधाकुण्ड' और 'श्रीश्यामकुण्ड' हैं।

बहुधा हमलोग साधारण पुरातत्व-विद्याके बलपर भगवान्‌के गुप्त धाम और तीर्थोंके निरूपणकी चेष्टा करते हैं तथा उस विषयमें नाना प्रकारके तर्क उठाया करते हैं, परन्तु भगवान् श्रीगौरसुन्दरने दिखला दिया कि, गुप्त अप्राकृत तीर्थोंका आविष्कार वस्तुतः केवल श्रीभगवान् और उनके अनन्य अन्तरंग भक्त ही कर सकते हैं। यह बात हमारी साधारण विद्या-बुद्धिके लिये बोधगम्य न होनेपर भी यही परम वास्तविक सत्य है।

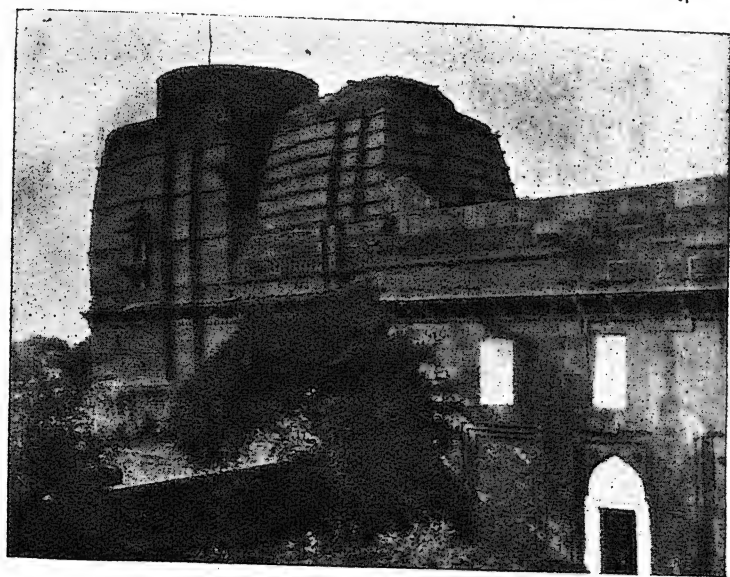
श्रीगौरसुन्दरने श्रीराधाकुण्ड और श्रीश्यामकुण्डका आविष्कार करके 'श्रीगोवर्द्धन'में 'श्रीहरिदेव'के दर्शन किये। श्रीगोवर्द्धन भगवान्



श्रीगिरिराज श्रीगोवर्द्धन

श्रीकृष्णके अंग हैं—इस प्रकार विचार कर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीगोवर्द्धन पर जाकर श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके द्वारा प्रतिष्ठित 'श्रीगोपाल'विग्रहके दर्शन न करनेकी बात मन-ही-मन स्थिर कर ली। श्रीगोपालदेव म्लेच्छोंके भयके वहाने श्रीगोवर्द्धन-पर्वतसे उतरकर 'गाठोलि' ग्राममें आ गये। श्रीमन्महाप्रभुने वहाँ जाकर श्रीगोपालदेवके दर्शन किये थे।

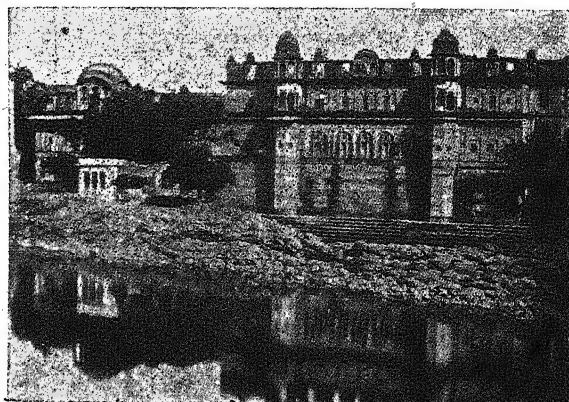
श्रीमन्महाप्रभु 'श्रीनन्दीश्वर', 'पावन-सरोवर', 'श्रीशेषशायी', 'मैलातीर्थ', 'भाण्डीरवन', 'भद्रवन', 'लौहवन', 'महावन' और 'श्रीगोकुल' आदिके दर्शन करके श्रीमथुरा लौट आये। श्रीकृष्णके लीला-समयके प्रसिद्ध 'चीरघाट'पर इमलीके पेड़के तले बैठकर श्रीमहा-प्रभु दोपहरतक नाम-संख्या पूरी करते थे और सबको श्रीनाम-कीर्तनका उपदेश देते थे। अक्रूर-तीर्थमें श्रीकृष्णदास नामक किसी एक राजपुत्र



श्रीगोवर्द्धनपर श्रीहरिदेवका मंदिर

पर श्रीमहाप्रभुने कृपा की। श्रीकृष्णदास उसी समयसे संसारके प्रति उदासीन होकर श्रीमहाप्रभुका कमण्डलु ले चलनेवालेके रूपमें उनके नित्य संगी हो गये।

रातको एक मछुआ 'कालियहृद'में नावपर चढ़कर मछली पकड़ा करता था। उसकी नावमें दीपक जला करता था। साधारण ग्रामीण लोगोंने दूरसे उसे देखकर समझा कि कालियहृदमें कालियनागके सिरपर श्रीकृष्ण नृत्य करते हैं। मूढ़ लोगोंको उस समय नावसे 'कालियनाग' का, दीपकसे उस नागके सिरकी 'मणि'का और काले रंगके मछुएसे 'श्रीकृष्ण'का भ्रम हो गया था। उन्होंने एक अफवाह फैला दी कि, श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्णका पुनः आविर्भाव हो गया है। सरस्वतीदेवीने

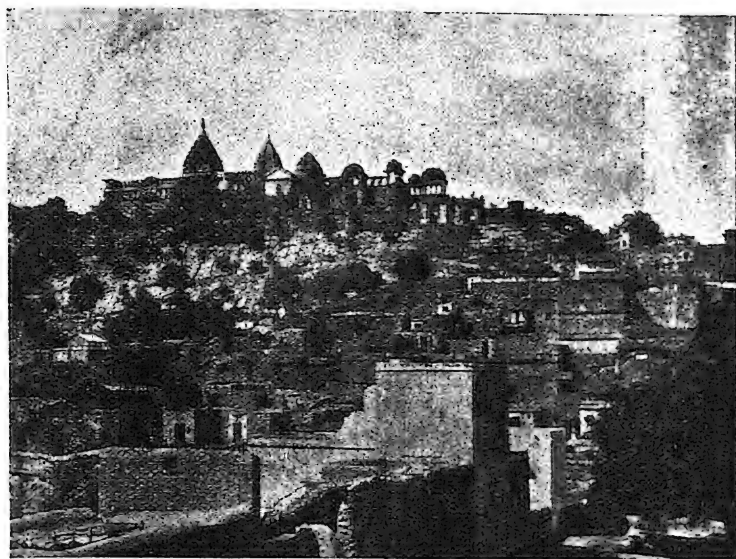


श्रीमानसी-गंगा

उनके मुखसे सच्ची बात ही कहलायी थी, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण श्रीगौरहरि उस समय श्रीवृन्दावनमें ही विराजमान थे। परन्तु लोग यथार्थ कृष्णको नहीं पहचान सके; उनको एक मछुएमें श्रीकृष्णका भ्रम हो रहा था। अज्ञ और मूढ़ जनता भेड़ियाधिसानकी भाँति अपनी विचारबुद्धिको बहाकर जनमतको ही सत्य मान लेती है। स्वयं

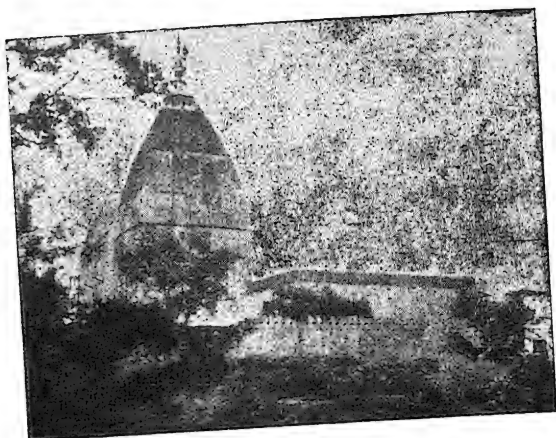


श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण-चैतन्यके साथ रहनेपर भी सरलबुद्धि बलभद्र भट्टा-चार्यको यह अफवाह सुनकर उस अफवाहके 'कृष्ण' (?) को देखनेकी इच्छा हुई ; परन्तु श्रीमहाप्रभुने सरलबुद्धि भट्टाचार्यके भ्रमको दूर करके कहा,—“तुम पंडित हो । क्या तुम भी मूर्खोंकी बातमें पड़कर मूर्ख हो गये हो ?”



श्रीनन्दग्राम

दूसरे दिन प्रातःकाल कुछ लोगोंने—श्रीमन्महाप्रभुके पास आकर उसका सच्चा रहस्य बताया । उनमेंसे किसी-किसीने श्रीमहाप्रभुको कृष्ण समझकर जब वन्दना की तब श्रीमहाप्रभुने लोक-शिक्षाके लिये उनसे कहा,—“ईश्वर-तत्त्व और जीव-तत्त्व कभी भी एक नहीं हैं । ईश्वर-तत्त्व मानो विशाल ज्वलन्त अग्निस्वरूप है और जीव-तत्त्व उस अग्निकी चिनगारीके छोटे कणके समान है । मूढ़तावश ईश्वर और



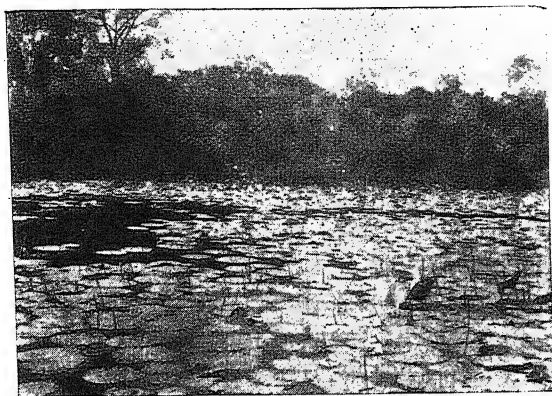
श्रीवर्षाणामें श्रीरावारानीका श्रीमंदिर



श्रीसंकेत ( ब्रजमें )

जीव 'एक' कहनेसे अपराध होता है और उस अपराधके फलसे यमदण्ड भोगना पड़ता है ।\*

एक प्रकारके लोग कहा करते हैं कि—“श्रीचैतन्यके अभक्तलोग, जो श्रीचैतन्यदेवको 'परमेश्वर' नहीं कहते, यह उनकी निजी कल्पना नहीं है, श्रीचैतन्यदेवकी अपनी उक्तके बलपर ही वे इस प्रकार कहने



### श्रीकाम्यवन ( ब्रजमंडल )

का साहस करते हैं ; परन्तु इस प्रकारके लोग थोड़े-से गंभीर और निरपेक्षरूपसे विचार करके देखेंगे तो वे समझ सकेंगे कि मायावादी-सम्प्रदाय और उनके अनुयायी साधारणलोग जो 'जीव'को 'ब्रह्म' कहा करते हैं, उसका खण्डन करना ही लोक-शिक्षक श्रीमहाप्रभुकी इस उक्तका वास्तविक उद्देश्य है ।



## इकहत्तरवां परिच्छेद 'पठान-वैष्णव'

श्रीवृन्दावनमें श्रीमन्महाप्रभुका अत्यधिक प्रेमोन्माद देखकर श्रीबलभद्र भट्टाचार्यने श्रीमहाप्रभुको ब्रजमण्डलसे 'प्रयाग' ले जानेका सकल्प किया। 'सोरोक्षेत्र'में गंगास्नान करके प्रयाग जायेंगे, ऐसा निश्चय करके राजपूत श्रीकृष्णदास, श्रीमथुराके सनोदिया ब्राह्मण, बलभद्र भट्टाचार्य और उनके साथी दूसरे एक ब्राह्मणने श्रीमन्महाप्रभुको साथ लेकर यात्रा की। रास्तेमें गौआका विचरण देखकर और गोपमुखोसे अकस्मात् वशीध्वनि सुनकर श्रीमहाप्रभुकी ब्रजलीलाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी और वे प्रेमसे मूर्छित हो गये। इसी समय वहाँ दस घुड़-सवार पठान आ पहुँचे। उन लोगोने श्रीमहाप्रभुको इस प्रकार मूर्छित देखकर सन्देह किया कि इस मूर्छित सन्यासीके साथियोने सन्यासीका अर्थादि छीन लेनेके लिये सन्यासीको धतूरा खिलाकर बेहोश कर दिया है। उनके सरदार 'बिजली खाँ'ने इस सन्देहको जताकर श्रीमहाप्रभुके साथियोको बाँध लिया। श्रीमहाप्रभुको बाह्य-चेतना होनेपर बिजली खाँके दलके एक मौलानाके साथ प्रभुकी कुछ बातचीत और शास्त्रालोचना हुई। श्रीमन्महाप्रभुने कुरानशरीफसे ही कृष्णभक्तिकी स्थापना की—

तोमार शास्त्रे कहे शेषे 'एकइ ईश्वर'।

'सर्वैश्वर्य-पूर्ण तेंहो श्याम-कलेवर' ॥

—चै० च० म० १८।१६०

[तुम्हारा शास्त्र कहता है कि अन्तमें 'एक ही ईश्वर है', वह सर्वैश्वर्यपूर्ण तथा श्याम कलेवर है।]

उक्त मौलाना साहब श्रीमहाप्रभुके शरणागत हो गये तब श्रीमहाप्रभुने उनका सस्कार सम्पादन करके 'रामदास' नाम रक्खा। बिजली खाँ

और उनके अनुगत घुडसवार सभी श्रीमहाप्रभुके चरणोका आश्रय लेकर श्रीकृष्णभक्त और 'पठान वैष्णव'के नामसे विख्यात हुए और बिजली खाँकी 'महाभागवत'के नामसे ख्याति हुई ।\*

— २४ —

## बहत्तरवां परिच्छेद

### पुनः प्रयागमें—'श्रीरूप-शिक्षा'

सोरोक्षेत्रमें गगास्नान करके श्रीमहाप्रभु प्रयागमें त्रिवेणीपर आये और वहाँ दबीरखास (श्रीरूप) और अनुपम मल्लिक (श्रीवल्लभ) से उनकी भेंट हो गयी ।

रामकेलि-ग्राममें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके बादसे ही दबीरखास (श्रीरूप) और साकर मल्लिक (श्रीसनातन) दोनों ही विषय-त्यागके लिये नाना प्रकारके उपाय सोचने लगे । अन्तमें दबीरखास चतुराईसे हुसेनशाहका काम छोड़कर बहुतसे धन-रत्नोके साथ अपने घर 'फतेहा-बाद'में आ गये और उस धनका आधा हिस्सा ब्राह्मण-वैष्णवों को और एक चौथाई आत्मीय-स्वजनोको बाँट दिया, शेष एक-चौथाई अपनी भावी विपत्तिके टालनेके लिये रख लिया । गौडदेशमें श्रीसनातनके पास दसहजार रुपये रख दिये । श्रीरूपको पता लगा कि श्री-महाप्रभु पुरी गये हुए हैं और वहाँसे श्रीवृन्दावन जायँगे । श्रीरूपने श्रीमहाप्रभुके श्रीवृन्दावन जानेकी निश्चित तिथि जाननेके लिये शीघ्र ही एक दूत भेजा ।

इधर सनातन राजकार्यसे अवसर ग्रहण करनेके लिये शारीरिक अस्वस्थताका बहाना करके अपने घर श्रीमद्भागवतकी आलोचना

करते थे। अचानक एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और श्रीसनातनको इस अवस्थामें पाकर उनको कारागारमें बन्दी कर दिया। श्रीरूपके भेजे हुए दूतने आकर श्रीसनातनको श्रीमन्महा-प्रभुकी श्रीवृन्दावन-यात्राका समाचार दिया। श्रीरूपने तब एक पत्र श्रीसनातनको लिखकर जताया कि, वे और अनुपम श्रीमन्महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये जा रहे हैं, अतएव आप शीघ्र-से-शीघ्र किसी-न-किसी उपायसे श्रीमहाप्रभुके पास चले आवे।

श्रीरूप और श्रीअनुपम श्रीचैतन्यदेवसे मिलनेके लिये चलते-चलते प्रयाग पहुँचे, वहाँ श्रीमन्महाप्रभु आये हैं, यह सुनकर उनको बड़ा आनन्द हुआ और एक दिन श्रीमहाप्रभु जब भिक्षार्थ एक दक्षिण-देशीय वैष्णव-ब्राह्मणके घर गये, तब दोनों भाइयोंने अकेलेमें श्रीमहा-प्रभुसे भेंट करके अत्यन्त दीनतापूर्वक श्रीमहाप्रभुसे कृपाकी याचना की। तदनन्तर श्रीरूपने इस श्लोकके द्वारा महाप्रभुको प्रणाम किया,—

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।

कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विवे नमः ॥

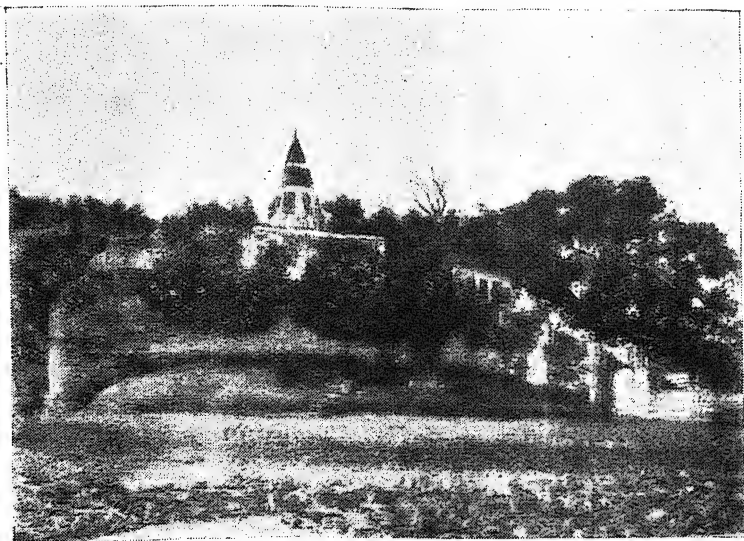
[ हे दाताशिरोमणि कृष्णप्रेम-प्रदाता श्रीकृष्णचैतन्य-नामधारी गौर-कान्ति श्रीकृष्ण ! तुमको नमस्कार है । ]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपसे श्रीसनातनके विषयमें पूछा। तब श्रीरूपने कहा कि, श्रीसनातन-प्रभु कारागारमें बन्दी हैं। श्रीमहाप्रभु बोले,— “सनातन बन्धनमुक्त हो गया है। शीघ्र ही मेरे पास आयागा।”

उस दिन मध्याह्नके समय श्रीरूप और श्रीअनुपम दोनों ही श्रीमहा-प्रभुके पास रहे। त्रिवेणीके ऊपर श्रीमहाप्रभुके वासस्थानके समीप ही श्रीरूप और श्रीअनुपमने डेरा डाला। इसी समय श्रीवल्लभ भट्ट (जो आगे चलकर ‘श्रीवल्लभाचार्य’ के नामसे विख्यात हुए) ‘आडाइल’ ग्राममें\* रहते थे। श्रीमहाप्रभुके प्रयाग-आगमनका समाचार सुनकर

\* आडाइल-ग्राममें श्रीवल्लभाचार्यकी ‘बैठक’ या ‘गद्दी’ अब भी

वल्लभ भट्ट उनके दर्शन करने आये और दण्डवत्-प्रणाम करके बहुत-सारी हरिकथाएँ श्रवण कीं। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरमुन्दरको निमंत्रित कर यमुनाके दूसरे पार आड़ाइल ग्राममें अपने घर ले जाकर भोजन कराया तथा सपरिवार उनका चरणोदक लिया तथा उनकी पूजा की; तब श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय करा दिया। वहाँ मिथिला-निवासी श्रीमद् रघुपति उपाध्यायके साथ श्रीमहाप्रभुका बहुत-सा रसालाप हुआ।



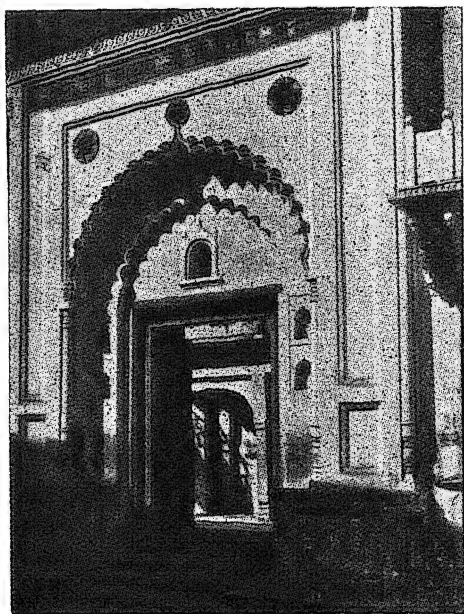
आड़ाइल ग्राममें श्रीनृसिंहदेवका श्रीमंदिर

वर्तमान है। जहाँ यह गद्दी है, उस मुहल्लेका नाम है 'देवरख'। 'देवरख'—'नैनी' स्टेशनसे ढाई मील है। जो लोग प्रयागसे इस स्थानके दर्शन करने आते हैं उनको यमुना पार होना पड़ता है।

श्रीवल्लभ भट्टने अपने पुत्रको श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्मोंमें समर्पण किया तथा श्रीमहाप्रभुका प्रेमोन्माद देखकर वे उनको प्रयाग ले गये।

श्रीमहाप्रभुने प्रयागमें दस दिन रहकर 'दशाश्वमेध घाट' पर निर्जनस्थानमें श्रीरूपको शक्ति-संचारपूर्वक सूत्ररूपमें भक्तिरसके समस्त तत्वोंकी शिक्षा दी तथा इसी सूत्रका अवलम्बन करके 'श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु' नामक ग्रन्थकी रचना करनेका आदेश दिया।

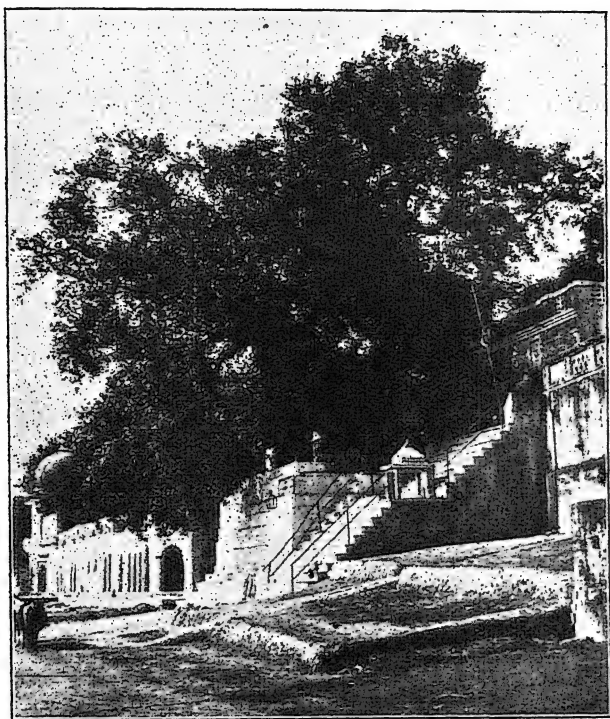
'श्रीरूप-शिक्षा'का संक्षेपमें तात्पर्य यही है कि,—चौदहों ब्रह्माण्डोंमें अनन्त बद्धजीव चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कर रहे हैं। जीवोंमें स्थावर और जंगम—दो प्रधान श्रेणियाँ हैं। जंगम जीव तीन प्रकारके



श्रीप्रयागमें श्रीवेणीमाधवके श्रीमंदिरका वहिर्द्वार



हैं,—जलचर, स्थलचर और नभचर। इनमें स्थलचर ही श्रेष्ठ हैं। स्थलचरोंमें मानव-जाति सर्वश्रेष्ठ है। मानव-जातिकी संख्या अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा बहुत ही थोड़ी है। मनुष्योंमें असभ्य, सदाचारहीन और नास्तिक बहुत हैं। जिनको सदाचारी और वेदानुगामी कहा जाता है उनमें भी आधे तो केवल मुँहसे वेद मानते हैं। धार्मिक लोगोंमें अधिक संख्या कर्मियोंकी है, करोड़ों कर्मियोंमें कोई एक ज्ञानी



श्रीप्रयागमें दशाश्वमेध घाटपर 'श्रीरूप-शिक्षास्थली'

होता है। करोडो ज्ञानियोमे कोई एक मुक्त-पुरुष मिलता है। इस प्रकार कोटि मुक्त-पुरुषोमे एक श्रीकृष्णभक्त मिलना बहुत ही दुर्लभ है। श्रोकृष्णभक्त निष्काम होते हैं, अतएव शान्त होते हैं। कर्मी हो, ज्ञानी हो या योगी हो—ये सबके सब किसी-न-किसी प्रकारसे आत्म-सुख (धर्म, अर्थ, काम और कुछ नहीं तो मुक्ति)के लिये कुछ-न-कुछ वासना करते हैं। अतएव वे अशान्त होते हैं। इनमें कोई भी श्री-भगवान्‌के सुखका अनुसन्धान (चिन्ता, ध्यान) नहीं करते।

जीवका स्वरूप अति सूक्ष्म है, सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त जीव चित्कण है अर्थात् जीवशक्तिविशिष्ट ब्रह्मका अणु या कण है। वर्तमान स्थूल-देह (पाचभौतिक शरीर) तथा सूक्ष्मदेह (मन, बुद्धि और अहंकार), इन दो आवरणोसे बहिर्मुख जीवका नित्य स्वरूप आवृत है। इस प्रकार चौदहो ब्रह्माण्डोमें चौरासी लाख योनियोमें बार-बार भ्रमण करते-करते जीवका जब भगवान्‌की इच्छासे बन्धनसे छूटनेका समय आता है, तब कोई भी जीव अकस्मात् कोई साधुसग या साधु-सेवा करके परम सौभाग्य प्राप्त कर सकता है, तभी वह भाग्यवान् जीव सद्गुरुका अनुसन्धान तथा श्रीकृष्णकृपाके वाहन सद्गुरुके द्वारा भक्तिलताका बीज प्राप्त करता है। उस बीजको वह साधक जीव मालीकी भाँति अपने हृदय-क्षेत्रमें रोपता है तथा साधु-गुरुके मुँहसे भगवान् श्रीकृष्णकी कथाका निरन्तर श्रवण तथा उसी कथाका अनुकीर्तन-रूप जलसिचन करते हुए भक्तिलताके बीजको अकुरित कर पाता है। वह भक्तिलता क्रमशः बढ़ती हुई इसी चौदहो भुवनोकी वस्तुओमें ही आबद्ध नहीं रह सकती। ब्रह्माण्डके परे 'विरजा' नामकी एक चिन्मयी नदी है, वहाँ सत्व, रज और तमोगुणका पारस्परिक द्वन्द्व नहीं है, सभीका शान्त भाव है। विरजाके उस पार 'ब्रह्मलोक' है। निराकारका ध्यान करनेवाले तथा भगवान्‌के हाथसे मारे गये भगवद्-विद्वेषी लोग इसी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इसके भी ऊपर 'पर-व्योम' या 'वैकुण्ठ' है। वहाँ श्रीलक्ष्मी-नारायण, श्रीसीताराम अथवा

श्रीविष्णुके अन्यान्य अवतारोके उपासक लोग श्रीभगवान्की साक्षात् सेवा करते हैं। इसके भी ऊपर है 'श्रीगोलोक वृन्दावन'। वहाँ श्रीकृष्णचरण-कल्पतरु नित्य वर्तमान हैं। श्रीभक्तिलता उसी कल्पतरु का आश्रय लेती है तब उसमें प्रेमफल लगते हैं। कल्पतरुसे प्रेमफल फल जाने पर भी भजन करनेवाला माली श्रवण-कीर्तनादिरूप जल-सिचनका कार्य बन्द नहीं करता, वह अनन्त कालतक श्रवण-कीर्तनादि रूप जल-सिचन करके श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करता रहता है।

इस प्रकार साधन करते-करते यदि अत्यन्त दुर्भाग्यवश किसीके पास श्रीमहत् (महा-भागवत)के श्रीचरणोंमें अपराध रूपी मत्त हाथी आकर खड़ा हो जाता है, तो वह मत्त हाथी उस भक्तिलताको जड़से उखाड़ फेंकता है, जिससे वह लता सूख जाती है। अतएव साधक मालीका कर्तव्य है कि वह सर्वदा विशेष सावधान रहकर यत्नपूर्वक भक्तिलताके चारो ओर आड़ लगा दे, जिससे वैष्णवापराधरूप हाथी किसी भी प्रकार भक्तिलताके पास न जा सके।

लताके साथ-साथ यदि उपशाखाएँ (जो देखनेमें लताके समान अर्थात् भक्तिके समान लगती हैं परन्तु वस्तुतः होती हैं—अवान्तर पदार्थ) उठती रहती हैं, वे उपशाखाएँ जल-सिचन अर्थात् भजन-साधनके बाह्य अभिनयके द्वारा बढ़ जाती हैं। उन उपशाखाओंके अनेको प्रकार हैं—जिनमें भोग-वाछा, मोक्ष-वाछा, शास्त्र-निषिद्ध आचरण, छल-कपट, जीवहिंसा, स्त्री, अर्थ-प्रभृति प्राप्त करनेकी तृष्णा, लोभोसे पूजा तथा सम्मान प्राप्तिकी आकांक्षा-प्रभृति प्रधान हैं। साधकको चाहिये कि पहले इन सारी उपशाखाओंको काट डाले। तभी मूल शाखा वृद्धिको प्राप्त होकर श्रीगोलोक-वृन्दावनमें श्रीकृष्णके श्रीचरणरूप कल्प-वृक्षपर आरोहण कर सकेगी।

श्रीकृष्णप्रेमके सामने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तृण-तुल्य हैं। भोग अथवा मोक्ष प्राप्तिके उद्देश्यसे विभिन्न कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले देवताओंकी पूजा छोड़कर एकमात्र लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी सुखानु-

सन्धानमयी भक्ति ही जीवके लिये परम प्रयोजन है । श्रीकृष्णके सुखकी इच्छाके अतिरिक्त किसी प्रकारकी भी अभिलाषामें लगे हुए स्वभावका त्याग करके, ब्रह्मके साथ एकीभूत होनेकी चिन्ता या ज्ञान, स्मृति-वर्णित नित्य-नैमित्तिकादि कर्म, फल्गु वैराग्य, योग और साख्य-ज्ञान प्रभृति जो श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानको आवृत करते हैं, उन्हें भी त्याग करके श्रीकृष्णमें अनुरागपूर्ण प्रवृत्तिके साथ जो कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टा और भावमय अनुशीलन है, वही 'उत्तमा या शुद्धा भक्ति' है । इस शुद्धा भक्तिसे 'प्रेमा' उत्पन्न होती है । यदि हृदयमें तनिक भी भोग या मोक्षकी वाछा है तो कोटि-कोटि जन्मोंके साधनसे भी कृष्णप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती ।

भक्तिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था, भावावस्था और प्रेमावस्था । प्रेम-भक्ति जब गाढसे गाढतर होने लगती है तब वह स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव पर्यन्त उन्नति करती है ।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने विभिन्न रसोंके तारतम्य तथा सेवाके गाढतर तारतम्यका वर्णन किया, श्रीरूपप्रभुको प्रयागसे श्रीवृन्दावन भेजकर श्रीमन्महाप्रभुने काशीके लिये गमन किया तथा वहाँ श्रीचन्द्र-शेखरके घरमें रहना स्थिर किया ।



## तिहत्तरवां परिच्छेद श्रीकाशीमें 'श्रीसनातन-शिक्षा'

श्रीसनातन जब बादशाह हुसेनशाहके कोप-भाजन होकर कारागार में बन्द थे, उस समय उनको श्रीरूपका एक पत्र मिला। पत्र पानेके बाद श्रीसनातन कारागारके रक्षकको नाना प्रकारकी चिकनी-चुपडी बातोंसे फुसलाकर और उसे सात हजार रुपये घूस देकर कैदसे छूट गये तथा नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंको पार करते हुए काशीमें श्रीचन्द्रशेखरके घरके द्वार पर जा पहुँचे। अन्तर्यामी श्रीमहाप्रभुने जान लिया कि श्रीसनातन घरके दरवाजेपर आ गये हैं, अतएव उन्हें भीतर बुलाया और उनकी दरवेशी दाढी तथा केशोंकी हजामत करवा कर तथा मलिन वेषका जिस बनावटी पोषाकमें वे भागकर आये थे उस पोषाकका त्याग कराकर उन्हें वैष्णवोचित कपड़े पहनाये। श्रीसनातनने श्रीचन्द्रशेखरका दिया हुआ नया वस्त्र ग्रहण नहीं किया और श्रुतपन मिश्रकी दी हुई एक पुरानी धोती लेकर उससे दो बाहरी वस्त्र और कौपीन बना ली। श्रीमन्महाप्रभुके भक्त महाराष्ट्रीय ब्राह्मण ने श्रीसनातनको निमन्त्रित किया कि वे जब तक काशीमें रहें, उनके ही घर प्रतिदिन भोजन किया करे। परन्तु श्रीसनातनने एक स्थानपर भोजन करनेका विचार छोड़कर विभिन्न स्थानोंसे मधुकरी\* भिक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातनके वैराग्यको देखकर आनन्दित हुए। गौडदेशसे भागकर आनेके समय रास्तेमें हाजीपुरमें श्रीसनातनके साथ उनके बहनोई श्रीकान्तकी भेंट हो गयी। शीतका

---

\* मधुकर (भ्रमर) जिस प्रकार विभिन्न फूलोंसे मधु संचय करके पान करता है, उसी प्रकार निष्किंचन भक्तगण एक स्थानपर किसी विषयी या दाताका राजसिक निमन्त्रण स्वीकार न कर विभिन्न घरोंसे कुछ-कुछ माँगकर भिक्षा किया करते हैं। यही 'मधुकरी' भिक्षा है।

अत्यन्त प्रकोप देखकर श्रीकान्तने विशेष अनुरोध करके श्रीसनातनको एक भोट कम्बल (भूटान देशका बनाया हुआ कम्बल) दिया। श्रीसनातनके शरीरपर वह भोट कम्बल था। श्रीमहाप्रभु उस कम्बलकी ओर बार-बार देखने लगे। श्रीसनातनने श्रीमहाप्रभुके अभिप्रायको समझकर मध्याह्नमें स्नानके समय गंगाके किनारे एक बगदेशीय व्यक्ति को अपना बहुमूल्य भोट कम्बल दे दिया और उसके बदलेमें उसकी एक गुदडी ले ली।

श्रीमहाप्रभुके काशीमें रहते समय श्रीसनातनने उनसे प्रश्न करके जीवके स्वरूप, कर्तव्य और प्रयोजनके सम्बन्धमें जो सारगर्भित उपदेश प्राप्त किया था, वही 'श्रीसनातन-शिक्षा'के नामसे विख्यात है।

'श्रीसनातन-शिक्षा'में श्रीचैतन्यदेवके प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त पाये जाते हैं। श्रीचैतन्यदेवने अद्वय-तत्त्व श्रीभगवान्‌के साथ उनकी शक्ति और शक्ति-परिणत वस्तुओंका अचिन्त्य-भेदाभेद-सम्बन्ध बतलाया है। जीवात्मा—जीवशक्ति-विशिष्ट श्रीकृष्णका नित्य दास है। जीव—सूर्यस्वरूप श्रीकृष्णके किरणका कण-स्थानीय है, और सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। किरण-कणको जिस प्रकार स्वयं सूर्य नहीं कहा जा सकता, साथ ही वह जिस प्रकार सूर्यसे सम्पूर्ण भिन्न भी नहीं है, उसी प्रकार जीव भी साक्षात् श्रीकृष्ण या परब्रह्म नहीं है, साथ ही वह श्रीकृष्ण या परब्रह्मसे सपूर्ण भिन्न भी नहीं है। जो सब जीव अनादिकालसे श्रीकृष्णको भूले हुए हैं, उनके उस भगवद्विस्मृतिरूप छिद्रको पाकर माया उनको आवृत और विक्षिप्त करके इस ससारमें सुख-दुःख देती है।

श्रीकृष्णकी अन्तरगा स्वरूपशक्ति और बहिरगा मायाशक्तिके तट (सीमास्थलमें) पर अवस्थित जीवशक्ति ही 'तटस्था शक्ति'के नामसे प्रसिद्ध है। जीव अणु-चेतन पदार्थ है, चेतनका स्वाभाविक धर्म ही है—स्वाधीनता या स्वतन्त्रता। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति चेतनमात्रमें ही रहती है, परन्तु वह चेतन पूर्ण चेतनका

‘अणु-अंश’ है, अतः उसकी ‘अणु-स्वतन्त्रता’ है अर्थात् जीवकी स्वतन्त्रता अत्यन्त सीमित है, परन्तु परमेश्वर पूर्ण-चेतन है, अतः उनकी स्वतन्त्रता असीम है और मानवीय चिन्तनसे अतीत है, वे स्वेच्छामय स्वराट् हैं। मायाबद्ध जीवको कृष्ण-स्मृति-ज्ञान नहीं। उसके प्रति दया करके श्रीकृष्ण साधु-शास्त्र-गुरुरूपमें अपनेको प्रकट करते हैं। साधु-शास्त्रकी कृपासे ही श्रीकृष्णको जाननेकी इच्छा होती है। जिस प्रकार लोग ज्योतिषीसे अपने पैतृक धनका पता पाकर ठीक स्थानसे गुप्त धनको निकाल लाते हैं, उसी प्रकार साधु-शास्त्र और गुरुके द्वारा अपने स्वरूप, कर्तव्य और प्राप्य-वस्तुका पता पाकर उनके उपदेशोंके अनुसार साधन करनेपर श्रीगुरु-कृष्णकी कृपासे जीवको प्रेमधनकी प्राप्ति होती है।

श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व हैं, ब्रह्म श्रीकृष्णकी अग्र-ज्योति है। सूर्यको जिस प्रकार हम पृथ्वीसे केवल ज्योतिर्मय देखते हैं, परन्तु जो लोग सूर्यलोकमें वास करते हैं या सूर्यके समीप जा पाते हैं, वे सूर्यको अवयवयुक्त देखते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णके असम्यक् दर्शनसे अर्थात् बाहरी अग्रकी ज्योतिमात्रके देखनेपर ऐसी धारणा होती है कि, वे केवल ज्योतिर्मय हैं। योगीगण जो श्रीकृष्णको परमात्मा रूपमें देखते हैं, वह भी श्रीकृष्णके सम्बन्धमें आशिक दर्शन है—वह श्रीकृष्णके वैभवका दर्शनमात्र है।

श्रीकृष्णकी स्वाभाविकी शक्ति अनन्त है, परन्तु उस शक्तिका त्रिविध परिज्ञान मुख्य रूपसे प्रसिद्ध है। प्रथम—उनकी बहिरगा या अचित्-शक्ति, दूसरी—उनकी अन्तरगा या चित्-शक्ति, एवं तीसरी—उनकी चित्-अचित्—इन दो शक्तियोंके सन्निस्थलरूप तदपर अवस्थित जीव-शक्ति। अचित् मायाशक्तिसे यह दृश्यमान जड जगत् प्रकट हुआ है, अन्तरगा शक्तिसे भगवान्‌के निज धाम और उनके सेवकगण प्रकट हुए हैं, और तदस्था शक्तिसे जीव-समूह प्रकट हुआ है। भगवान्‌के साथ जीवका जो सम्बन्ध है, उस ज्ञानका नाम ‘सम्बन्ध-ज्ञान’

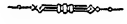
हैं। श्रीभगवान्—‘सम्बन्धी’ तत्व है। महत्की कृपासे नित्यसिद्ध-भावको हृदयमें प्रकट करना ही ‘साधन’ है, वही ‘अभिधेय’ है। उस साधनका जो चरम उद्देश्य या फल है, वही जीवका ‘प्रयोजन’ या प्राप्य-वस्तु है। श्रीकृष्णके साथ जीवका नित्य प्रभु-सेवक-सम्बन्ध है, श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान ही जीवका सबसे प्रधान अभिधेय है, और श्रीकृष्णको सुखी देखकर स्वयं सुखानुभव करना ही साधनका फल है, यही प्रयोजन या श्रीकृष्ण-प्रेम है।

‘साधन भक्ति’ दो प्रकारकी होती है—‘वैधी भक्ति’ और ‘रागा-नुगा भक्ति’। जो लोग शास्त्रके शासन या कर्तव्यबुद्धि द्वारा शासित होकर भगवान्की सेवा करनेके लिये साधन करते हैं, उनके इस साधनको ही ‘वैधी भक्ति’ कहते हैं। श्रीव्रज-गोपिकाएँ, श्रीनन्द-यशोदा, श्रीदाम-सुदाम, श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रक प्रभृति व्रजके नित्यसिद्ध सेवकगण अपने स्वाभाविक अनुरागके साथ माधुर्य-विग्रह श्रीकृष्णकी जो सेवा करते हैं उसे ‘रागात्मिका साध्य-भक्ति’ कहते हैं। उस ‘रागात्मिका भक्ति’ में जिनका स्वाभाविक अनुराग या लोभ होता है, वे उन सब व्रज-वासियोंके अनुगत होकर श्रीकृष्णकी जो सेवा करते हैं उसे ‘रागानुगा भक्ति’ कहते हैं।

अन्तःकरणमें आदौ (सर्वप्रथम) ‘श्रद्धा’का उदय होनेपर जीव ‘साधुसग’ किया करता है। साधुसगमें हरिकथा ‘श्रवण, कीर्तन’ करते करते श्रद्धालु व्यक्तिके हृदयकी नाना प्रकारकी कामना-वासना, दुर्बलता, अपराध, अपने स्वरूपकी भ्रान्ति आदि अनर्थसमूह दूर होते हैं। इस अवस्थाका नाम है ‘अनर्थ-निवृत्ति’। इसके बाद ‘निष्ठा’का उदय होता है अर्थात् भगवान्की सेवामें निरन्तर लगे रहनेकी इच्छा होती है। पश्चात् उस सेवामें स्वाभाविक ‘रुचि’ और तत्पश्चात् ‘आसक्ति’ उत्पन्न होती है, यहाँ तक ‘साधन-भक्ति’ है। इसके बाद श्रीकृष्णमें प्रीतिका अकुर या ‘भाव’ का उदय होता है। यही भाव क्रमशः परिपक्व होकर ‘प्रेम’ रूपमें प्रकट हुआ करता है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति का यही क्रम है।



श्रीसनातनकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीमन्महाप्रभुने काशीमें “आत्मा-राम” श्लोककी\* इकसठ प्रकारकी व्याख्या की थी। श्रीगौरसुन्दरने श्रीसनातनको वैष्णव-स्मृति-शास्त्र ‘श्रीहरिभक्तिविलास’ की रचना करनेके लिये आदेश देकर उसके विषयोका सूत्ररूपमें निर्देश कर दिया था।



## चौहत्तरवाँ परिच्छेद

### श्रीप्रकाशानन्द-उद्धार

एक दिन श्रीचन्द्रशेखर और श्रीतपन मिश्रने अत्यन्त दुःखके साथ श्रीमन्महाप्रभुसे कहा कि,—“काशीके मायावादी सन्यासीगण निरन्तर आपकी निन्दा करके महान् अपराधके भागी हो रहे हैं”, इसी समय एक ब्राह्मण आया और श्रीमन्महाप्रभुको निमन्त्रित करके कहा,—“आज मैंने अपने घर काशीके सभी सन्यासियोंको निमन्त्रित किया है, यदि आप कृपा करके मेरे घर एक बार चरण-धूलि दें तो मेरा अनुष्ठान पूर्ण और सफल हो जाय। आप काशीके सन्यासियोंसे नहीं मिलते-जुलते, इसे मैं जानता हूँ। तथापि आज मुझपर एक बार कृपा कीजिये।”

ब्राह्मणके निमन्त्रणको स्वीकार कर श्रीमन्महाप्रभु उस ब्राह्मणके घर सन्यासियोंकी सभामें यथासमय उपस्थित हुए, सबको नमस्कार कर उन्होंने बाहर जाकर पैर धोये तथा उसी स्थानमें बैठकर कुछ

\* आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युत्क्रमे ।

कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्यभूतगुणो हरि ॥

—भा० १।७।१०, चै०च० म०६।१८६

[जिनके अज्ञानकी ग्रन्थि टूट चुकी है, ऐसे आत्माराम मुनिगण भी भगवान् की अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि भगवान् ने ऐसे ही गुण हैं।]

ऐश्वर्य प्रकाशित किया । सन्यासीलोग श्रीकृष्णचैतन्यदेवके महातेजोमय रूपको देखकर अपने-अपने आसनको छोड़कर तुरन्त खड़े हो गये । उनके गुरु श्रीप्रकाशानन्दने भी श्रीमन्महाप्रभुको वह स्थान छोड़कर उत्तम स्थानमें आनेके लिये अनुरोध किया तथा उनको विशेष सम्मानके साथ सभाके बीचमें बैठाया ।

सन्यासी श्रीप्रकाशानन्दने श्रीकृष्णचैतन्यके काशीके सन्यासियोंके साथ न मिलनेके लिये उलाहना दिया ।

सन्यासी हड़या कर नर्त्तन-गायन ।  
भावुक सब सङ्गे लब्रा करह कीर्त्तन ॥  
वेदान्त-पठन, ध्यान—सन्यासीर धर्म ।  
ताहा छाड़ि' कर केने भावुकेर कर्म ॥  
प्रभावे देखि ये तोमा साक्षात् नारायण ।  
हीनाचार कर केने, इथे कि कारण ॥

—चै० च० आ० ७।६८-७०

[ सन्यासी होकर नाचते-गाते हो, सभी भावुकोको साथ लेकर कीर्त्तन करते हो । यह कैसा ? सन्यासीका तो धर्म है वेदान्तका पाठ करना और ध्यान करना । तुम ये सब छोड़कर भावुककी तरह क्यों कार्य करते हो ? तुम्हारे प्रभावको देखकर लगता है जैसे तुम साक्षात् नारायण हो, किंतु तुम्हारा आचार हीनोकी तरह क्यों है ? इसका क्या कारण है ? ]

श्रीमहाप्रभुने छलना करते हुए दीनताके साथ कहा,—“मेरे गुरुदेवने मुझे ‘मूर्ख’ और ‘वेदान्तमें अनधिकारी’ समझकर शासन किया और सर्वदा श्रीकृष्णका मन्त्र और श्रीकृष्णका नाम जपनेकी आज्ञा दी है ।”

कृष्णमन्त्र हैते ह'बे संसार-मोचन ।  
कृष्णनाम हैते पा'बे कृष्णेर चरेण ॥  
नाम बिना कलिकाले नाहि आर धर्म ।  
सर्वमन्त्र-सार नाम—एइ शास्त्र-मर्म ॥

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

—चै० च० आ० ७।७३-७४, ७६

[कृष्णमन्त्रसे ससारसे मुक्ति होगी। कृष्णनामसे कृष्णके चरणों की प्राप्ति होगी। कलिकालमें नामके अतिरिक्त और धर्म नहीं है। सारे मन्त्रोका सार श्रीकृष्णका नाम है। यही शास्त्रोका मर्म है। हरिका नाम, हरिका नाम, केवल हरिका नाम ही है। कलियुगमें अन्यथा गति ही नहीं, गति ही नहीं, गति ही नहीं।]

इसके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने चतुराईसे यह बतलाया कि, जो लोग अपनेको वेदान्तके अधिकारी होनेका अभिमान करके श्रीहरिनामको सामान्य वस्तु समझते हैं, वस्तुतः वेही वेदान्तके अनधिकारी हैं। सारे वेदमन्त्रोका सार और समस्त शास्त्रोका मर्म है—श्रीहरिनाम। इसी कारण वेदमन्त्रके आदिमें और अन्तमें प्रणव (ॐ)का व्यवहार होता दिखायी देता है। प्रत्येक 'वेदान्तसूत्र'के आदि और अन्तमें यही शब्द-ब्रह्म या प्रणव रहता है। वेदान्तके 'फलपाद'का प्रथम सूत्र—"ॐ आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" और अन्तिम सूत्र—"ॐ अनावृत्ति शब्दात्, " अनावृत्ति शब्दात्" ने शब्दब्रह्म श्रीनामकी निरन्तर आवृत्ति और उसीके द्वारा ससारमें अपुनरावृत्ति (आवागमनसे मुक्ति) का उपदेश दिया है। अर्थात् श्रीकृष्णमन्त्रके द्वारा जीवका ससार-मोचन, तथा श्रीनामके द्वारा कृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है। इस श्रीकृष्णप्रेमके सम्बन्धमें श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं,—

कृष्णविषयक प्रेमा परम पुरुषार्थ ।

या'र आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ ॥

पंचम पुरुषार्थ—प्रेमानन्दामृतसिन्धु ।

ब्रह्मादि-आनन्द या'र नहे एक विन्दु ॥

—चै० च० आ० ७।८४-८५

[श्रीकृष्ण-प्रेमभक्ति ही परम पुरुषार्थ है। इसके सामने चारो पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तृणके समान हैं। पंचम पुरुषार्थ है— 'प्रेमानन्दामृत-सिन्धु' ब्रह्मानन्द आदि इसका एक बिन्दु भी नहीं है।]

श्रीमहाप्रभु कहने लगे,—“वेदान्त-शास्त्रने ‘ब्रह्म’-शब्दसे मुख्य अर्थमें सविशेष-स्वरूप भगवान्‌का ही निर्देश किया है। जीवतत्त्व—शक्ति है, कृष्णतत्त्व—शक्तिमान् है। जीवका स्वरूप चिनगारीके समान क्षुद्राति-क्षुद्र सूक्ष्मताकी पराकाष्ठाको प्राप्त है। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, परिकर, लीला और धामको ‘प्राकृत’ अथवा सगुण (व्यवहारिक) समझनेके समान कोई भी नास्तिकता नहीं है। वेदान्तमे ‘शक्ति-परिणामवाद’ ही स्वीकृत हुआ है। चिन्तामणिके रत्न-प्रसवकी भाँति भगवान्‌की अचिन्त्यशक्ति इस जड़ जगत्‌को प्रसव करके भी स्वयं अविकृत रहती है। आचार्य श्रीशकरने वेदसे जिन ‘महावाक्योका\*’ चयन किया है, उनको ‘महावाक्य’ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनमें वेदका सार्वदेशिक विचार नहीं पाया जाता। वेदवृक्षका बीज प्रणव ही महावाक्य है और ईश्वरका स्वरूप है। भगवान्‌को केवल निर्विशेष कहकर उनकी स्वरूपानुबन्धिनी नित्या शक्तिको अस्वीकार करनेपर भगवान्‌के केवल आधे स्वरूपको मानना होता है और उसका परिणाम है भगवान्‌की पूर्णताको ही अस्वीकार करना।”

श्रीकृष्णचैतन्यके मुखसे वेदान्तके ठीक तात्पर्यकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर काशीके मायावादी सन्यासिगण श्रीचैतन्यदेवकी कृपासे

---

\* वेदके मूल वाक्यको ‘महावाक्य’ कहा जाता है। कोई-कोई ‘तत्त्व-मसि’ (छा० ६।८।७), “इदं सर्वं यदयमात्मा, ब्रह्मोदं सर्वम्” (वृ० आ० २।५।१), “आत्मैवेदं सर्वम्” (छा० ७।२।५।२), “नेह नानास्ति किञ्चन” (कठ० २।१।११, वृ० आ० ४।४।१६) इत्यादिको ‘महावाक्य’ कहते हैं। वस्तुतः ‘तत्त्वमसि’ आदि मन्त्रसे जो उद्दिष्ट है, वह वेदका केवल एकदेशीय उपदेश है। जो वेदमें सर्वदेश-व्यापी है वही ‘महावाक्य’ है। प्रणव ही (उँकार ही) एकमात्र ब्रह्मवाचक ‘महावाक्य’ है।

मायावादके चगुलसे उद्धार हुए। काशीमें एक दिन श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ 'श्रीविन्दुमाधव'के मंदिरमें सकीर्तन कर रहे थे, उसी समय श्रीप्रकाशानन्द अपने शिष्योंके साथ वहाँ उपस्थित हुए और महाप्रभुके चरणोपर गिरकर अपने पूर्व कार्योंके लिये अपनेको धिक्कारते हुए वेदान्त-सगत भक्तितत्त्वके विषयमें जिज्ञासा की। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने श्रीमद्-भागवतको ही 'वेदान्तका अकृत्रिम भाष्य' बतलाया।

इसके बाद श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप और श्रीअनुपमके पास भेज दिया।



## पचहत्तरवाँ परिच्छेद

### श्रीसुबुद्धि राय

हुसेनशाहके पूर्व 'सुबुद्धि राय' नामक एक व्यक्ति 'गौड'के भूम्यधि-कारी थे। उस समय हुसेन सुबुद्धि रायके अधीन एक कर्मचारी थे। कहा जाता है कि, सुबुद्धि रायकी आज्ञाके अनुसार तालाब खुद-वानेके काममें हुसेनशाह निरीक्षकके पदपर नियुक्त थे। उस कार्यमें ढिलाई करनेपर सुबुद्धि रायने हुसेनको कोड़े लगवाये थे। उसकी पीठपर उन कोड़ोके निशान बहुत दिनोतक रहे। हुसेन जब गौडके बादशाह हुए तब उन्होंने अपनी बेगमके अनुरोधसे सुबुद्धि रायको जाति-भ्रष्ट कर दिया। सुबुद्धि रायने जब काशीके पंडितोंसे प्रायश्चित्तकी व्यवस्था पूछी तो, उन्होंने सुबुद्धि रायको उबलता हुआ घृत पीकर शरीर त्याग करनेकी व्यवस्था दी। श्रीमहाप्रभु जब काशीमें आये, तब सुबुद्धि रायने महाप्रभुसे सारी बातें कहकर अपने कर्तव्यके विषयमें पूछा। श्रीमहाप्रभुने पंडितोंकी उस व्यवस्थामें कोई भी वास्तविक

कल्याणकी सम्भावना नहीं है, यह समझाकर उनको निरन्तर श्रीकृष्णनाम-सकीर्तनका उपदेश दिया,—

“एक ‘नामाभासे’ तोमार पाप-दोष या’बे ।

आर ‘नाम’ लइते कृष्ण-चरण पाइबे ॥

आर कृष्णनाम लैते कृष्णस्थाने स्थिति ।

महापातकेर ह्य एइ प्रायश्चित्त ॥”

—चै० च० म० २५।१६२-१६३

[एक ‘नामाभास’से तुम्हारे पाप-दोष मिट जायेंगे । और नाम लेनेपर तुम श्रीकृष्णचरणोको प्राप्त करोगे । और कृष्णनाम लेनेपर कृष्णके स्थानमें स्थिति होगी । महापापका यही प्रायश्चित्त है ।]

श्रीसुबुद्धि राय श्रीवृन्दावनमें जाकर दत्त-चित्त हो श्रीहरि-भजनमय जीवन व्यतीत करने लगे और उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीप्रभुके साथ श्रीवृन्दावनके ‘द्वादश-वनो’का भ्रमण किया ।



## छिहत्तरवाँ परिच्छेद

### पुनः श्रीनीलाचलमें

श्रीमन्महाप्रभु श्रीबलभद्र भट्टाचार्यके साथ ‘पुरी’ लौट आये । गौडीय भक्तवृन्दने श्रीमन्महाप्रभुके पुरी लौट आनेकी बात सुनकर पुरीकी ओर यात्रा की ।

श्रीशिवानन्द सेनके साथ एक भगवद्भक्त कुत्ता भी पुरीकी ओर जा रहा था । एक दिन श्रीशिवानन्द सेनका नौकर कुत्तेको रात्रिमें आहार देना भूल गया, तब वह कुत्ता कहीं चला गया—कोई उसका

पता न लगा सका। अन्तमें जब भक्तगण पुरीमें श्रीमहाप्रभुके समीप उपस्थित हुए तो, उन्होंने देखा कि वह कुत्ता श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोंके सामने कुछ दूरी पर बैठा है। श्रीमहाप्रभु कुत्तेको नारियलकी गिरी-प्रसाद फेंक-फेंक कर दे रहे हैं और “राम, कृष्ण, हरि बोलो” कह रहे हैं। कुत्ता श्रीमहाप्रभुके दिये हुए प्रसादको पाकर बार-बार ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहने लगा। यह देखकर सब लोग चकित हो गये। श्रीशिवानन्द सेनने भी दण्डवत्-प्रणाम करके कुत्तेसे अपने अपराधकी क्षमा-प्रार्थना की। इसके बाद उस कुत्तेको फिर किसीने नहीं देखा। कुत्ता सिद्धदेह पाकर वैकुण्ठको चला गया।

श्रीरूपगोस्वामिपाद श्रीवृन्दावन-धामसे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें आकर ठाकुर श्रीहरिदासके साथ रहने लगे। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे रथके सामने श्रीमहाप्रभुके नृत्यकालमें ‘काव्यप्रकाश’का एक विरह-श्लोक\* सुना था। उस श्लोकका गूढ़ तात्पर्य केवल श्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपादको ही ज्ञात था। श्रीरूपपादने श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुखसे उस श्लोकको सुनकर उसीके अनुरूप एक श्लोककी रचना की और उमें एक तालपत्रपर लिखकर अपने बासेके छप्परमें खोसकर वे समुद्र-स्नान करने चले गये। उसी समय अचानक श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप से भेट करनेके लिये उनके बासेपर गये और छप्परमें खोसे हुए तालपत्र पर एक श्लोक लिखा देखा। श्लोक पढ़ते ही श्रीमहाप्रभु भावाविष्ट हो गये। इधर श्रीरूपपाद समुद्र-स्नान करके लौटे और श्रीमन्महा-प्रभुके श्रीपादपद्मोंमें जैसे ही प्रणत हुए, श्रीमन्महाप्रभुने स्नेहाधिक्यवश श्रीरूपको चपत लगाकर गोदमें ले लिया। और कहा,—

\* य कौमारहर स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा—  
स्ते चोन्मीलित-मालतीसुरभय प्रौढा कदम्बानिला ।  
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरत-व्यापार-लीलाविधौ  
रेवारोधसि वेतसी-तरुतले चेत समुत्कण्ठते ॥

—काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास

“मोर श्लोकेर अभिप्राय ना जाने कोन जने ।  
मोर मनैर कथा तुजि जानिलि केमने ?”

—चै० च० म० १।६९

[मेरे श्लोकका अभिप्राय कोई आदमी नहीं जानता, फिर तूने मेरे मनकी बात कैसे जान ली ?]

श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपपर बहुत तरहसे स्नेह-कृपा की तथा श्रीस्वरूप-गोस्वामीको श्रीरूपपादके रचे हुए इस श्लोकको\* ले जाकर दिखलाया । श्रीस्वरूप बोले,—“आपके हृदयकी बात श्रीरूप जानते हैं, अतएव वे आपकी कृपाके पात्र हैं, अन्तरंग निजजन हैं ।” श्रीमहाप्रभुने कहा कि, “श्रीरूपके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मैंने उनमें सर्वशक्तिका संचार कर दिया है । श्रीरूप ही अप्राकृत गूढरसके विचारमे योग्य पात्र है ।” श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप गोस्वामीसे भी कह दिया कि,—“तुम भी उसको गूढ रसकी बातें कहना ।”

फिर एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीरायरामानन्द, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीस्वरूप गोस्वामी आदि भक्तोंके साथ श्रीहरिदास ठाकुरके बासे पर जाकर श्रीरूपसे मिले, श्रीरूप-रचित “प्रिय सोऽय” और “तुण्डे ताण्डविनी”† दो श्लोकोकी प्रशंसा अत्यन्त उल्लासके साथ करने

\* प्रिय सोऽय कृष्ण सहचरि । कुक्षेत्रमिलित-  
स्तथाह सा राधा तदिदमुभयो सगमसुखम् ।  
तथाप्यन्त-खेलन्मधुर-मुरलीपचमजुषे  
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति ॥

—पद्यावली ३८३

[हे सहचरि, मेरे वे अतिप्रिय कृष्ण आज कुक्षेत्रमें मिले, मैं भी वही राधा हूँ और हम दोनोंके मिलनका सुख भी निश्चय वही है, तथापि वनमें क्रीडाशील इन कृष्णकी मुरलीके पचम सुरमें आनन्द-प्लावित कालिन्दीपुलिनगत वनके लिये मेरा चित्त स्पृहा करता है ।]

† तुण्डे ताण्डविनी रति वितनुते तुण्डावलीलब्धये  
कर्णकौडकडम्बिनी घटयते कर्णावुदेभ्य स्पृहाम् ।



लगे। प्रसगत श्रीरूपके 'श्रीललित-माधव' और 'श्रीविदग्ध-माधव' दोनों नाटकोके मुखबन्धादि श्लोकोको श्रवण किया। श्रीरामानन्द-रायने दोनों नाटकोके अनेक अंग-उपागोपर विचार करके बतलाया कि दोनों ही नाटक सर्वोत्कृष्ट हुए हैं।

'श्रीभगवान् आचार्य' नामक एक सरल ब्राह्मण पुरीमें श्रीमहाप्रभुके पास रहते थे। उनके कनिष्ठ भ्राता गोपाल भट्टाचार्य काशीमें मायावादियोसे वेदान्त पढकर पुरीमें श्रीमहाप्रभुके समीप आये। श्री महाप्रभुने बाहरी शिष्टाचार दिखलाते हुए भी भीतरसे उनका आदर नहीं किया।



## सतहत्तरवाँ परिच्छेद

### छोटे हरिदास

एक दिन श्रीभगवान् आचार्यने श्रीमन्महाप्रभुके कीर्तनिया (प्रभुको कीर्तन सुनानेवाले) छोटे हरिदासको श्रीशिखीमाहितीकी बहन श्रीमाधवी

चेत प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणा कृति  
नो जाने जानिता कियद्भिरमृतै कृष्णेति वर्णद्वयी॥

—वि० मा० ना० १।१५

[न जाने 'कृष्ण'—ये दो वर्ण कितने अमृतके साथ उत्पन्न हुए हैं, देखो, जब (नटीके समान) वे तुण्ड (मुख) में नृत्य करते हैं, तब बहुतसे तुण्ड(मुख) पानेके लिये रतिविस्तार (अर्थात् आसक्ति-वर्धन) करते हैं, जब कर्ण-कुहरमें प्रवेश करते हैं (अकुरित होते हैं), तब अरबों कानोंके पानेकी स्पृहा उत्पन्न होती है और जब चित्तप्राण में (सगिनीरूपमें) उदित होते हैं, तब समस्त इन्द्रियोकी क्रियापर विजय प्राप्त करते हैं।]

देवीके पास जाकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये कुछ महीन चावल माँगकर लानेके लिये कहा। श्रीमाधवी देवी वृद्धा, तपस्विनी और परम वैष्णवी थी। श्रीमहाप्रभुके भक्तोंमें केवल साढ़े तीन व्यक्ति श्रीराधिकाके परिकर थे, एक—श्रीस्वरूप गोस्वामी, दूसरे—श्रीरायरामानन्द, तीसरे—श्रीशिखीमाहिती और आधी उनकी बहन श्रीमाधवी देवी।

मध्याह्नमें जब श्रीमहाप्रभु श्रीभगवान् आचार्यके घर भोजनके समय आये, तो पूछा कि “ऐसे बढिया महीन चावल कहाँसे लाये गये है?” उत्तरमें ज्ञात हुआ कि छोटे हरिदास श्रीमाधवी देवीसे भिक्षा माँगकर ये चावल लाये हैं। तब श्रीमहाप्रभुने बासेमें लौटकर श्रीगोविन्द को आदेश दिया कि “अब छोटे हरिदासको यहाँ न आने देना। तुम आजसे मेरे इस आदेशका पालन करना।”

‘घरमें आनेकी मनाही’ हो गयी है, यह सुनकर श्रीहरिदासके मनमें दुःख हुआ और वे उपवास करने लगे। श्रीस्वरूप गोस्वामीपाद आदि भक्तोंने छोटे हरिदासके अपराधके विषयमें जब जानना चाहा तो महाप्रभु बोले,—

\*\* वैरागी करे’ प्रकृति-सम्भाषण।

देखिते ना पारो आमि ताहार बदन ॥

दुर्वार इन्द्रिय करे विषय ग्रहण।

दारुप्रकृति हरे’ मुनेरपि मन ॥

—चै० च० अ० २।११७-११८

[जो वैरागी (साधु) स्त्रीसे बातचीत करता है, मैं उसका मुख नहीं देख सकता। इन्द्रियाँ बड़ी दुर्दमनीया हैं, ये विषयोका ग्रहण कर लेती हैं। काठकी बनी हुई स्त्री भी मुनिका मन हर लेती है।]

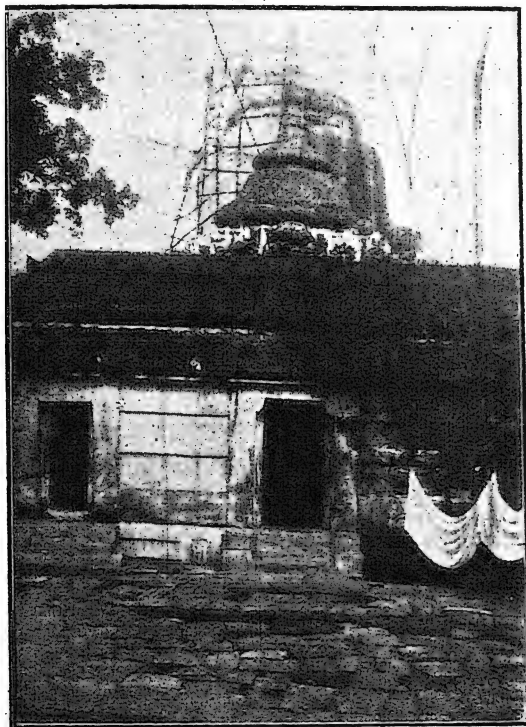
मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो वसेत् ।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥

—भा० ६।१६।१७, मनुसंहिता २।२१५, चै० च० अ० २।११६

[माता, बहिन अथवा कन्याके साथ एकान्तमें एक आसन पर कभी न रहे, क्योंकि बलवती इन्द्रियाँ विद्वान् पुरुषके भी मनको आकर्षित कर लेती हैं।]

दूसरे दिन श्रीपरमानन्दपुरीपादने श्रीमन्महाप्रभुको श्रीहरिदासके प्रति प्रसन्न होनेके लिये अनुरोध किया तो श्रीमहाप्रभुने असन्तुष्ट होकर



श्रीअलालनाथका श्रीमंदिर ; यहाँपर  
श्रीमन्महाप्रभुका पदार्पण हुआ

‘पुरी’ छोड़कर ‘अलालनाथ’\* चले जानेकी इच्छा प्रकट की। पूरा एक वर्ष बीत गया तथापि श्रीमन्महाप्रभु प्रसन्न नहीं हुए—यह देखकर छोटे हरिदासने श्रीमहाप्रभुकी सेवा-प्राप्त करनेका सकल्प करके प्रयाग जाकर ‘त्रिवेणी’के पवित्र जलमें देहत्याग कर दिया। श्रीश्रीवास पंडित जब दूसरे चातुर्मास्यके समय पुरी आये और श्रीमहाप्रभुसे हरिदासके विषयमें पूछा तो, श्रीमहाप्रभुने ‘स्वकर्मफलभुक् पुमान्’ अर्थात् जीव अपने-अपने कर्मोंके फलको भोगता है,—इतना ही उत्तर दिया। श्रीश्रीवास पंडितने तब छोटे हरिदासके त्रिवेणीमें देहत्यागकी बात कही तो श्रीमहाप्रभु बोले,—

“प्रकृति दर्शन कौले एइ प्रायश्चित्त ।”

—चै० च० अ० २।१६५

[ स्त्री-दर्शन करनेका यही प्रायश्चित्त है । ]

निजजन श्रीहरिदासके प्रति श्रीमन्महाप्रभुकी दण्ड-विधानरूप माया (कपट) रहित दया और श्रीमहाप्रभुके प्रति श्रीहरिदासकी सेवाबुद्धि और गाढ अनुराग कितने अधिक परिमाणमें था, यह दिखलानेके लिये उसकी सामान्य त्रुटिको भी श्रीमहाप्रभु सहन करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हुए। प्रभुके गाढ अनुरागका पात्र होनेकी इच्छा होनेपर प्रत्येक शुद्ध भजनेच्छु भक्तके लिये यही उचित है कि वह सब प्रकारकी ऐहिक इन्द्रिय-सुख-लालसाका सर्वतोभावेन परित्याग करे, अन्यथा श्रीगौरहरि सेवकके रूपमें उसको ग्रहण नहीं करते। श्रीमन्महाप्रभुने और भी शिक्षा दी कि, श्रीप्रयाग आदि विष्णु-तीर्थमें देहत्याग करनेपर

\* अलवरनाथ शब्दका अपभ्रंश है—‘अलालनाथ’। विशिष्टाद्वैत-सम्प्रदायमें प्राचीन सिद्धपार्षद महापुरुष ‘अलवर’ शब्दसे अभिहित होते हैं। अलवरोके नाथ चतुर्भुज विष्णुमूर्ति श्रीजनार्दन यहाँ विराजमान हैं। १४३२ शकाब्दमें महाप्रभुने प्रथम बार यहाँ पदार्पण किया। १३३३ बंगला सन्में यहाँ श्रीविश्ववैष्णवराज-सभाका एक शाखा-मठ स्थापित हुआ है।

लोग अपराधादिमे मुक्त होकर सद्गति प्राप्त करते हैं। लोक-शिक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुने अपने भक्त श्रीहरिदासको पहले नहीं ग्रहण किया, परन्तु पीछे उनके मुखकी श्रीकृष्णकीर्तिनरूप सेवा स्वीकार करके उन्हें अपने भक्तके रूपमे ही स्वीकार कर लिया। अपने पार्षदभक्त श्रीहरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने गृह-त्यागी साधक वैरागियोंके लिये आचारकी शिक्षा दी है। प्रचारक वैष्णवाचार्योंका आसन और आचरणकारी भक्तोंका आसन कैसा होना चाहिये, इसका उपदेश इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने सर्वसाधारणको दिया है। असत् चरित्र और छिपे-छिपे व्यभिचार-परायण वैष्णववेषधारी व्यक्तियोंको देखकर जो उनको श्रीमहाप्रभुके अनुगत वैष्णव समझते हैं, उनकी भ्रान्त धारणाका सशोधन भी श्रीमहाप्रभुकी अपने पार्षद छोटे हरिदासकी दण्डलीलाके द्वारा होना उचित ही है।

जहाँ पाप है, वहाँ कोई भी विष्णु-सम्बन्ध नहीं है, यदि दैवात् पाप हो जाता है तो उससे विष्णुभक्तका आदर नहीं होता। लौकिक-श्रद्धायुक्त व्यक्तिके भी मनमें पाप करते समय कोडेकी चोट जैसी लगती है,—भगवान् विष्णु इससे सुखी नहीं होते, इस विचारमे, वह फिर पाप नहीं करता, शीघ्रही पाप छोड़कर श्रद्धावान् हो जाता है। अतएव जिसके मनमे शास्त्रीय-श्रद्धाका उदय हो गया है, ऐसे भगवद्भक्तमें तो पाप रह ही नहीं सकते।

शास्त्रीय श्रद्धा\*, जो शुद्धा भक्तिका कारण है—इस प्रकारकी श्रद्धासे युक्त भक्तके कोई भी पाप नहीं रह सकता। ज्ञानमिश्र साधक-भक्तका अधिकारानुसार दण्डदान और दण्डस्वीकार कल्याण-दायक होता है, ये दो महती शिक्षा अपने पार्षद भक्त छोटे हरिदासके प्रति दण्ड-लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने दी है। किन्तु मुमुक्षु-साधकके लिये जो शिक्षा

---

\* शास्त्रने बहिर्मुख मानव-जातिके लिये जो नित्य शासनविधान किया है, उसके प्रति दृढ़ अविचलित विश्वास ही शास्त्रके अर्थाविधारणसे उत्पन्न श्रद्धा अथवा 'शास्त्रीय श्रद्धा' है।

उचित है उसे जातभाव व्यक्तिके ऊपर आरोप करनेपर अपराधभाजन होकर चिरकालके लिये भक्तिपथसे भ्रष्ट होना पड़ेगा । श्रीरूप गोस्वामिपादने कहा है कि, जातभाव व्यक्तिके यदि (बाह्य दुराचारतारूप) वैगुण्यवत् कुछ दिखलायी भी दे तो उसमें असूया न करे, क्योंकि वे उससे निर्लिप्त हैं, इसीलिये तो भावप्राप्तिमें वह सर्वतोभावसे कृतार्थ हुए हैं । पूर्णचन्द्र बाहरसे मृगचित्तसे लाञ्छित होनेपर भी कभी अन्धकारसे पराभूत नहीं होते, इसी प्रकार श्रीभगवान् हरिमें अनन्यचित्त मनुष्य भी बाहरसे अत्यन्त दुराचारशील दीख पड़ने पर भी अन्तर्विशिष्टमान भक्तिके बलसे अन्यान्य लोगोको पराभव करके ही शोभा-विस्तार करते हैं ।\*

— or —

## अठहत्तरवाँ परिच्छेद

### श्रीनीलाचलमें विविध-शिक्षा-प्रचार

[ १ ]

‘पुरी’ में किसी सुन्दरी विधवा ब्राह्मण-युवतीका एक अति सुन्दर पुत्र था । उसको प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुके पास आते तथा श्रीमहाप्रभुको उस बालकसे स्नेह करते देखकर श्रीदामोदर पंडितने † श्रीमहाप्रभुसे कहा, --“इस बालकको स्नेह करनेपर लोग आपके चरित्रमें सन्देह करेगे ।” यह बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभुने एक दिन श्रीदामोदरको तब-

\* भ० २० सि० १।३।५६-६०

† श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीदामोदर पंडित—दो पृथक् व्यक्ति हैं । ये दोनों ही श्रीमन्महाप्रभुके भक्त हैं ।

द्वीपमें श्रीशचीमाताके देख-रेखके लिये भेज दिया । इसके द्वारा श्री-महाप्रभुने बतलाया कि, साधक जीवके लिये जो शासन (नियम) आवश्यक है, सिद्धपुरुष या भगवान्को उसी शासन (नियम) के अधीन करना केवल अपना भ्रम ही नहीं, बल्कि ऐसा करना उनके चरणोंमें अपराध करना है ।

अधिकारी वैष्णव न बुद्धि' व्यवहार ।

ये-जन निन्दये, ता'र नाहिक निस्तार ॥

अधम जनेर ये आचार, येन धर्म ।

अधिकारी वैष्णवेश्रो करे सेइ कर्म ॥

कृष्ण-कृपाय से इहा जानिवारे पारे ।

ए-सब संकटे केह मरे, केह तरे ॥

—चै० भा० अ० ६।३८७-३८६

[अधिकारी वैष्णवके व्यवहारको न समझकर जो मनुष्य उनकी निन्दा करता है, उसका निस्तार नहीं है । अधम मनुष्यका जैसा आचार, धर्म है, लोक-चक्षुसे देखनेपर ऐसा लगता है अधिकारी वैष्णव भी वही कर्म कर रहा है । किन्तु दोनोंका पार्थक्य कृष्णकृपाके द्वारा ही जाना जा सकता है । इन सब संकटोंसे कोई मरता है, कोई तरता है ।]

[ २ ]

श्रीसनातन गोस्वामिपाद श्रीमथुरामण्डलसे 'झारखंड' के वन-मार्गसे 'पुरी' आये । कृष्ण-विरहकी अतिशयताके कारण रथचक्रके नीचे गिरकर उन्होंने शरीर-परित्याग करनेका सकल्प किया है, यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले,—“देहत्यागसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती, भजनसे ही वे मिलते हैं । श्रीकृष्ण-प्राप्तिका एक मात्र उपाय है—अहैतुकी भक्ति ।”

श्रीमहाप्रभुने साधकजीवके लिये यह शिक्षा दी, तथापि प्रेमी भक्त श्रीसनातनके देहत्यागके तात्पर्यका उल्लेख करते हुए कहा,—

गाढ़ानुरागेर वियोग ना याय सहन ।

ताते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण ॥

—चै० च० अ० ४।६२ -

[प्रगाढ प्रेममें वियोग सहा नहीं जाता । इसलिये प्रेमी अपना मरण चाहता है । ]

श्रीमन्महाप्रभुने जीवके लिये इस प्रसंगमें और भी अनेको उपदेश दिये हैं,—

नीच-जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य ।

सत्कुल बिप्र नहे भजनेर योग्य ॥

येइ भजे, सेइ बड़, अभक्त—हीन, छार ।

कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि-विचार ॥

दीनेरे अधिक दया करे भगवान् ।

कुलीन, पंडित, धनीर बड़ अभिमान ॥

—चै० च० अ० ४।६६-६८

[नीच जाति श्रीकृष्ण-भजनके लिये अयोग्य नहीं है । और अच्छे कुलमें जन्म या ब्राह्मण होना ही भजनकी योग्यता नहीं है । जो भजता है वही बड़ा है । अभक्त हीन नगण्य है । कृष्ण-भजनमें जाति-कुलादिका विचार नहीं है । भगवान् दीनपर अधिक दया करते हैं । कुलीन, पंडित और धनीको तो बड़ा अभिमान होता है ।]

श्रीगौरसुन्दरने बतलाया कि श्रीसनातनके द्वारा भक्ति-शास्त्रका प्रचार और श्रीवृन्दावनके गुप्त तीर्थोंका उद्धार आदि अनेको लोक-हितकर कार्य कराने हैं । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनको उस वर्ष श्रीक्षेत्रमें (श्रीजगन्नाथ-धाममें) रहकर दूसरे वर्ष श्रीवृन्दावन जानेका आदेश दिया ।

[ ३ ]

श्रीहृदनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने श्रीगौरसुन्दरसे श्रीकृष्णकथा सुननेकी इच्छा प्रकट की । श्रीगौरसुन्दरने उनको श्रीरामानन्द रायके



पास भेज दिया। श्रीरामानन्दके घर जानेपर श्रीप्रद्युम्न मिश्रको पता लगा कि, श्रीरामानन्द प्रभु युवती देवदासियोको निर्जन उद्यानमें स्वरचित 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक'के गीत और नृत्यकी शिक्षा दे रहे हैं। श्रीरामानन्द राय थे—श्रीब्रजलीलामे श्रीमतीके निज-जन। श्रीगौर-लीलामे उन्होंने परम-मुक्त विजितेन्द्रिय-शिरोमणिका आदर्श प्रदर्शित किया है। वे साधारण साधक जीव नहीं थे। परन्तु श्रीप्रद्युम्न मिश्र इस बातको नहीं समझ सके और श्रीरामानन्दके इस प्रकारके व्यवहारकी बात सुनकर घर लौट आये। श्रीमहाप्रभुने श्रीरामानन्दके परम महत्वको समझाकर श्रीप्रद्युम्न मिश्रके भ्रमको दूर किया। इसके बाद मिश्रने फिर श्रीरामानन्दके पास आकर अनेक तत्वोपदेश ग्रहण किये।

[ ४ ]

श्रीमहाप्रभु जिस किसी प्राकृत कवि या साहित्यिककी कविता या गीत-नाटकादि नहीं सुन सकते थे। जिस कवित्व और साहित्यमें तत्त्व-विरोध या रस-विपर्यय होता, वह श्रीमहाप्रभुके लिये बहुत ही अप्रीतिकर और असह्य हो जाता था। जो लोग यथार्थ भक्त हैं, वे ही इस बातके मर्मको भलीभाँति समझ सकते हैं। वे भी जिस किसी कविके तत्त्वविरोध और रसाभास-दुष्ट काव्य, गान और साहित्य कभी नहीं सुन सकते। यह उनके लिये असहनीय हो जाता है। पर यह बात साधारण लोगोकी समझमें नहीं आती।

पहले श्रीस्वरूप-दामोदरके परीक्षा कर चुकनेपर श्रीमहाप्रभु उसे श्रवण करते थे। बगदेशीय एक कविने श्रीमहाप्रभुकी लीलाके सम्बन्धमें एक नाटक रचकर श्रीमहाप्रभुको सुनाना चाहा, तब पहले श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभुने उसे श्रवण किया। सभाके सभी लोगोने उस नाटककी प्रशंसा की; परन्तु श्रीस्वरूप-दामोदर-प्रभुने उसमें मायावाद दोष दिखलाते हुए कहा,—“श्रीकृष्णलीला और श्रीगौरलीलाका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जिन्होंने श्रीगौरागपादपद्मको जीवनका एकमात्र

सबल बना लिया है। उसके वर्णन करनेकी योग्यता ग्राम्य कवि और साधारण साहित्यिकमें नहीं होती।”

आधुनिक कालमें बहुतेकी यह धारणा है कि, लौकिक साहित्य और काव्य-रचनामें पारदर्शी व्यक्ति मात्रमें ही श्रीकृष्णलीला और श्रीगौर-लीलाके वर्णन करनेकी योग्यता हो जाती है। परन्तु श्रीमहाप्रभुके द्वितीय स्वरूप श्रीस्वरूप-दामोदरने हम लोगोको बतलाया है कि, महत् (महाभागवत)का अनुगमन तथा अनन्य-भावसे श्रीचैतन्यके श्रीचरणोंका आश्रय लिये बिना तथा सर्वदा प्रीति एवं आवेशके साथ श्रीचैतन्य-भक्तोंकी सगति किये बिना श्रीचैतन्य या श्रीकृष्णके सम्बन्धमें साहित्य और ग्रन्थादिकी रचना करनेकी चेष्टा करना केवल धृष्टता ही नहीं, बल्कि उसमें ‘शिव’की रचना करने जाकर ‘बदर’की रचना हो जाती है।\*

श्रीस्वरूपदामोदरके इस उपदेशसे वह कवि अपने भ्रमको समझकर भगवद्भक्तोंके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर तथा श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर पुरीमें रहने लगा।

[ ५ ]

श्रीगौरसुन्दरकी श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलता क्रमशः तीव्रसे तीव्रतर-रूपमें प्रकट होने लगी। इस अवस्थामें श्रीरामानन्दकी श्रीकृष्णकथा और श्रीस्वरूपका कीर्तन ही श्रीमन्महाप्रभुके जीवनका एकमात्र अवलम्बन हो गया।

इधर श्रीमहाप्रभुकी शिक्षाके अनुसार चलनेवाले श्रीरघुनाथदास घर लौटकर बाहरसे विषयी लोगोकी भाँति व्यवहार करने लगे, परन्तु मन-ही-मन कृष्णसेवाकी तीव्र आकांक्षासे व्याकुल हो उठे। ‘सप्तग्राम’के किसी मुसलमान जमींदारने नवाबके वजीरकी सहायतासे हिरण्य और गोवर्द्धनदासको तरह-तरहके कष्ट पहुँचानेकी इच्छा की,

\* चै० च० अ० ५।९१-१५८

इससे वे लोग भाग निकले। श्रीरघुनाथकी बुद्धिमानीसे उनका वह उत्पात शान्त हो गया। श्रीरघुनाथ नीलाचलमें श्रीमहाप्रभुके पास चले जानेके लिये बार-बार चेष्टा करने लगे। उन्होंने ‘पानिहाटी’ जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभुका साक्षात्कार किया और प्रभुकी आज्ञासे वहाँ एक ‘दही-चिउड़ा-महोत्सव’ किया। उस महोत्सवके दूसरे दिन श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीरघुनाथपर कृपा करके श्रीचैतन्यचरण-प्राप्तिके लिये आशीर्वाद दिया।

श्रीरघुनाथदास एक दिन रातको किसी कामके बहाने श्रीयदुनन्दन आचार्यके घर पहुँचे और उनके साथ कुछ दूर चलकर अकेले गुप्त मार्गसे बारह दिनमें पुरी पहुँचकर श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणत हो गये। श्रीमहाप्रभुने उनको ‘स्वरूपका रघु’ नाम देकर श्रीस्वरूप-गोस्वामीके हाथोंमें सौंप दिया। श्रीरघुनाथने पाँच दिनोत्तक श्रीमहा-प्रभुका अवशेष-प्रसाद प्राप्त किया। उसके बाद श्रीजगन्नाथजीके श्रीमन्दिरके सिंहद्वारपर उन्होंने अयाचक-वृत्तिका\* अवलम्बन किया।

श्रीमन्महाप्रभु रघुनाथके इस वैराग्यकी बात सुनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बोले,—

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सकीर्तन ।

शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण ॥

जिह्वार लालसे येइ इति-उति धाय ।

शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय ॥

—चै० च० अ० ६।२२६-२२७

[वैरागीका उचित कार्य सदा नाम-सकीर्तन करना है। साग-पत्ता-फल-मूलसे वह पेट भर ले। जो जिह्वाकी लालसासे इधर-उधर दौडता है, वह शिश्नोदर-परायण मनुष्य कृष्णको नहीं पाता।]

\* अपने माँगनेके बदले दूसरा कोई इच्छा हो तो कुछ दे, इस आशासे बैठे रहकर भिक्षा करनेको ‘अयाचक-वृत्ति’ कहते हैं।

श्रीमहाप्रभुका यह उपदेश प्रत्येक हरिभजनकारी (हरिभजनीक) के लिये विशेष रूपसे पालनीय है। श्रीरघुनाथने श्रीमन्महाप्रभुसे कुछ उपदेश सुननेकी इच्छा प्रकट की, तो श्रीमहाप्रभुने 'रागानुग'\* भक्तके लिये पालनीय आचारोका संक्षेपमें निर्देश कर दिया,—

ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्ता ना कहिबे ।

भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे ॥

अमानी, मानद हजा कृष्णनाम सदा ल'बे ।

ब्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे ॥

—चै० च० अ० ६।२३६-२३७

[ जागतिक सुखभोगकी बात नहीं सुनना, जागतिक सुखभोगकी बात नहीं कहना, अच्छा न खाना और अच्छा न पहनना। स्वयं मान पानेकी इच्छा न रखकर दूसरोको मान देना, सदा कृष्णनाम लेना और ब्रजमें श्रीराधाकृष्णकी मानस-सेवा करना। ]

श्रीगोवर्द्धन दासने अपने पुत्र रघुनाथका समाचार पाकर पुरीमें श्रीरघुनाथके पास आदमी और रुपये-पैसे भेजे, परन्तु श्रीरघुनाथने उनमें से उतना ही अर्थ ग्रहण किया, जितनेसे प्रतिमास श्रीमहाप्रभुको दो बार निमन्त्रण करके प्रीति-पूर्वक भोजन करानेका खर्च चल सके। परन्तु विषयीका द्रव्य ग्रहण करनेपर श्रीमहाप्रभु प्रसन्न नहीं होते और निमन्त्रणकारीको केवल सम्मान लाभ मात्र फल मिलता है—ऐसा विचारकर अन्तमें गोवर्द्धनके अर्थके द्वारा श्रीमहाप्रभुकी निमन्त्रण-सेवाको भी छोड़ दिया।

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन ।

मलिन मन हैले नहे कृष्णेर स्मरण ॥

—चै० च० अ० ६।२७८

\* 'रागानुग'—जो लोग श्रीकृष्णके नित्य सिद्ध सेवक श्रीब्रजगोपी, श्रीश्रीनन्द-यशोदा, श्रीसुदाम-श्रीदाम या श्रीरक्तक-पत्रक-चित्रककी

[ विषयीका अन्न खानेसे मन मलिन होता है और मनके मलिन होनेपर श्रीकृष्णका स्मरण नहीं होता । ]

कुछ दिनों बाद श्रीरघुनाथने सिंहद्वारपर अयाचक-वृत्ति भी परित्याग कर मधुकरी भिक्षा लेना प्रारम्भ किया । यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने अत्यन्त आनन्दित होकर कहा,—

“सिंहद्वारे भिक्षावृत्ति—वेश्यार आचार ।”

—चै० च० अ० ६।२८४

[सिंहद्वारपर भिक्षा माँगना तो वेश्याके आचरणके समान है ।]

जिस प्रकार वेश्याको पर-पुरुषकी आशामें द्वारपर बाट देखनी पड़ती है, भिक्षा-प्राप्तिके लोभसे सिंहद्वारपर खड़े रहना भी उसी प्रकारकी बात है ।

श्रीरघुनाथ मधुकरी भिक्षा करते हैं, यह सुनकर तथा श्रीराधा-कृष्णकी रागमयी सेवामें उनकी रुचि देखकर श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको अपनी श्रीगुजामाला और श्रीगोवर्द्धन-शिला प्रदान की । इसके बाद श्रीरघुनाथ रास्तेमें फँके हुए और बासी श्रीमहाप्रसादको जलमें धोकर उसीको ही ग्रहण करने लगे । श्रीमन्महाप्रभु और श्रीस्वरूप-दामादरने इससे अधिक सन्तुष्ट होकर एक दिन श्रीरघुनाथमें उस महाप्रसादको बलपूर्वक छीनकर उसका आस्वादन किया ।




---

श्रीकृष्णसेवाकी पद्धतिसे लुब्ध होकर उनके अनुगामी बनकर उन्हींके अनुसार श्रीकृष्णसेवा करनेमें अनुराग करते हैं ।

## उन्नासीवाँ परिच्छेद

### पुरीमें श्रीवल्लभ भट्ट

श्रीवल्लभ भट्ट एक बार रथयात्राके पहले पुरीमें आकर श्रीगौर-सुन्दरके चरणोंमें प्रणत हुए। श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगौरसुन्दरसे कहा,—“कलिकालका धर्म है—श्रीकृष्णनाम-संकीर्तन, कृष्णशक्ति स्वरूपशक्ति श्रीराधा और उनके परिकरोंके अतिरिक्त कोई भी इसका प्रचार नहीं कर सकता। आप कृष्णशक्तिको धारण करते हैं; इसीसे आज आपकी कृपासे जगत्में श्रीकृष्ण-नाम प्रकाशित हो रहा है।” श्रीमन्महा-प्रभुने दीनताके साथ अपनी अयोग्यता प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत प्रभृति भक्तोंकी महिमाका बखान करते हुए श्रीवल्लभ भट्टके सामने अपनेको छिपाया।

फिर दूसरे एक दिन श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभुके पास आये और बोले कि उन्होंने श्रीमद्भागवतकी एक टीका लिखी है और उसमें श्रीकृष्ण नामके अर्थकी बहुत प्रकारसे व्याख्या की है। श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभ भट्टके ‘हृदयकी-यशोलिप्सा समझ गये और बोले,—“मे श्रीकृष्णनामके बहुत अर्थोंको नहीं मानता। श्रीकृष्ण—श्रीश्यामसुन्दर श्रीयशोदानन्दन है—केवल इतना ही जानता हूँ।” श्रीमद् अद्वैताचार्यने भी श्रीवल्लभ भट्टके नाना प्रकारके तत्त्वविरुद्ध सिद्धान्तोंका खण्डन किया। एक दिन श्रीवल्लभ भट्टने श्रीमद् अद्वैताचार्यसे पूछा,—“जीव—प्रकृति है, और कृष्ण—पति है। अतएव पतिव्रता-स्वरूप जीव किस प्रकार दूसरेके सामने पतिस्वरूप श्रीकृष्णके नामका उच्च-स्वरसे कीर्तन कर सकता है?” श्रीअद्वैताचार्यने श्रीवल्लभ भट्टको साक्षात् ‘धर्मविग्रह’ श्रीमहाप्रभुसे यह प्रश्न पूछनेके लिये कहा। भट्टके प्रश्नके उत्तरमें श्रीमहाप्रभु बोले,—“स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ही पतिव्रताका धर्म है, पतिने जब निरन्तर अपना नाम उच्चारण करनेके लिये कह

दिया है, तब पतिव्रता अपने स्वामीके आदेशका उल्लघन नहीं कर सकती ।”

फिर एक दिन वैष्णव-सभामे श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमहाप्रभुके पास आकर बोले कि उन्होंने श्रीमद्भागवतकी श्रीश्रीधरस्वामीकी टीकाका खण्डन करके एक नयी व्याख्या लिखी है। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने व्यग्रे रूपमें श्रीवल्लभ भट्टके इस प्रकारके कार्यका प्रतिवाद करते हुए कहा,—

## ‘स्वामी’ ना माने ये जन ।

वेश्यार भितरे ता’रे करिये गणन ॥

—चै० च० अ० ७।१११

[ जो मनुष्य ‘स्वामी’को नहीं मानता, उसकी गिनती वेश्यामें करनी चाहिए । ]

श्रीगौरसुन्दरने श्रीवल्लभ भट्टको बहुत तरहसे समझाते हुए कहा,—  
“जगद्गुरु श्रीश्रीधरस्वामिपादके प्रसादसे ही हमलोग श्रीमद्भागवतका तात्पर्य समझ पाते हैं। वे भक्तिके एकमात्र रक्षक हैं। गुरुके ऊपर गुरुगिरी करने जाना भीषण अपराध है। श्रीश्रीधरस्वामीका अनुसरण करते हुए श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करो, अभिमान छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करो, अपराध छोड़कर श्रीकृष्ण-सकीर्तन करो, तभी श्रीकृष्णके चरणोकी प्राप्ति कर सकोगे।” कुछ दिनों बाद श्रीमहाप्रभुकी अनुमति लेकर श्रीवल्लभ भट्टने श्रीगदाधर पंडित-गोस्वामीसे ‘किशोर-गोपाल-मन्त्र’की दीक्षा प्राप्त की।

श्रीवल्लभ भट्टके समान पंडित, बुद्धिमान् और सर्व विषयोमें सुयोग्य व्यक्तिको भी श्रीश्रीधरस्वामीके ‘मायावादी’ होनेका भ्रम हो गया था। वस्तुतः श्रीस्वामिपाद मायावादी नहीं हैं—वे ‘भक्त्येकरक्षक जगद्गुरु’, परम वैष्णव हैं।



## अस्सीवाँ परिच्छेद

### रामचन्द्र पुरी

रामचन्द्र पुरी-नामक एक सन्यासी अपनेको श्रीमाधवेन्द्र पुरीका शिष्य बतलाकर परिचय देते थे, वस्तुतः उनका शुद्धभक्ति-सम्बन्धी कोई विचार नहीं था। श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद अन्तर्धानके समय श्रीकृष्ण विरहमें श्रीकृष्णनाम-सकीर्तन करते हुए प्रेमसे रो रहे थे। यह देखकर रामचन्द्र पुरीने श्रीमाधवेन्द्र पुरीसे कहा,—“आप ब्रह्मविद् होकर क्यों शोक-मोह-ग्रस्तकी भाँति इस प्रकार रो रहे हैं?” श्रीमाधवेन्द्र पुरीपाद इससे विशेष असन्तुष्ट हुए और उन्होंने रामचन्द्रका त्याग कर दिया।

रामचन्द्र पुरीने श्रीनीलाचल आकर भगवान् श्रीगौरसुन्दरकी निन्दा प्रारम्भ कर दी। “श्रीमहाप्रभु अच्छा-अच्छा भोजन करते हैं, खीर, मिठाई खाते हैं, अतएव वे सन्यास-विधिका पालन नहीं करते”—इस प्रकारकी निन्दा करने लगे। एक दिन प्रातःकाल रामचन्द्र पुरीने श्रीमन्महाप्रभुके वासस्थानमें आकर देखा कि, बहुत-सी चीटियाँ श्रेणीबद्ध होकर वहाँ विचरण कर रही हैं। यह देखकर मणिमय मन्दिरमें पिपीलिकाके छिद्रदर्शनके समान स्वाभाविक छिद्रान्वेषी रामचन्द्र पुरी श्रीमहाप्रभुसे कहने लगे,—“रातको निश्चय ही इस स्थानमें ईखका बना गुड था, इसी कारण यहाँ इतनी चीटियाँ चल रही हैं। अहो! विरक्त सन्यासियोंमें भी इस प्रकारकी इन्द्रिय-लालसा है।” इतना कहकर ही रामचन्द्र पुरी वहाँसे चले गये। यह सुनकर श्रीमहाप्रभुने उस दिनसे अपने दैनिक आहारका परिमाण खूब कम कर दिया।

रामचन्द्र पुरी बड़े ही कुटिल स्वभावके आदमी थे। लोगोको स्वयं ही आग्रह करके अधिक भोजन कराते थे और फिर स्वयं ही उसको ‘अत्याहारी’ (पेटू) कहकर निन्दा करते थे। महाभागवत गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरीपादकी उपेक्षाके फलस्वरूप रामचन्द्र पुरीकी भगव-च्चरणोंमें अपराध करनेकी दुर्बुद्धि उत्पन्न हो गयी।



गुरु उपेक्षा कैंले ऐछे फल ह्य ।

क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराध ठेक्य ॥

—चै० च० अ० ८।१७

[ गुरु यदि उपेक्षा करे तो फल यह होता है कि धीरे-धीरे उपेक्षित-शिष्य ईश्वरके निकट भी अपराध करने लगता है । ]

रामचन्द्र पुरी और अमोघके समान वित्तवृत्ति हममें से अनेकोकी ही है । हम भी बहुधा भगवान् और महाभागवत वैष्णवको भी क्षुद्र साधक-जीवके समान काम-क्रोध-लोभाधीन समझकर उनके आहार-विहारादिकी निन्दा करते हैं । श्रीगौरसुन्दरने इस लीलाके द्वारा हमारी इस दुर्बुद्धिको शासित किया है ।



## इक्कासीवाँ परिच्छेद

### श्रीगोपीनाथ पट्टनायक

श्रीभवानन्द रायके \* पुत्र और रामानन्द रायके भ्राता श्रीगोपीनाथ पट्टनायक उस समय उडीसाके राजा श्रीप्रतापसुन्दरके अधीन मेदिनीपुरके (मालजाठ्या दण्डपाटके) भू-सम्पत्ति-रक्षक और राज्यकर वसूल करनेके कामपर नियुक्त थे । श्रीगोपीनाथने राजकोषका कुछ धन नष्ट कर दिया तथा कुछ दूसरे कारणोंसे भी युवराजके अप्रीतिभाजन हो गये, इससे युवराजने गोपीनाथको प्राणदण्डका आदेश दे दिया । श्रीमहाप्रभुके प्रति गजपति श्रीप्रतापसुन्दर विशेष श्रद्धाभक्ति करते थे और रामानन्द राय भी महाप्रभुके विशेष आदरके पात्र थे,—यह

\* श्रीभवानन्द रायके पाँच पुत्र थे—(१) श्रीरामानन्द राय, (२) श्रीगोपीनाथ पट्टनायक, (३) श्रीकलानिधि, (४) श्रीसुधानिधि और (५) श्रीवाणीनाथ ।

जानकर कुछ लोग श्रीगोपीनाथके प्राणरक्षार्थ राजासे अनुरोध करनेके लिये श्रीमहाप्रभुके पास आये। इसपर श्रीमहाप्रभुने इस प्रकारकी विषयी बातोंसे अपना कोई प्रयोजन न बतलाकर श्रीगोपीनाथका तिरस्कार किया। पश्चात् कुछ और लोगोंने भी आकर गोपीनाथके सपरिवार कैद कर लिये जानेकी बात श्रीमहाप्रभुसे कही, तब महाप्रभु बहुत क्रोधित हुए और बोले,—“तुम क्या यह कहना चाहते हो कि मैं राजाके पास जाकर गोपीनाथके वशके लिये आँचल पसारकर अर्थ भिक्षा माँगूँ ?”

कुछ ही क्षणोंके बाद यह समाचार आया कि, गोपीनाथको प्राण-दण्डके लिये खगके ऊपर गिराया जा रहा है। महाप्रभुको यह बतलाने पर भी वे बोले—“मैं भिखारी आदमी हूँ, मैं क्या कर सकता हूँ ? तुम लोग यह बात श्रीजगन्नाथजीसे कहो।”

इधर श्रीहरिचन्दन महापात्रने महाराज श्रीप्रतापसुन्दरके पास जाकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-भिक्षा माँगी। श्रीप्रतापसुन्दरने कहा कि, इस विषयमें उन्होंने कुछ भी नहीं सुना है। जिससे श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा हो, उसके लिये शीघ्र व्यवस्था करनी चाहिये। अतएव श्रीहरि-चन्दनने युवराजसे कहकर श्रीगोपीनाथकी प्राण-रक्षा करनेकी व्यवस्था कर दी।

तदनन्तर श्रीमहाप्रभुने इस राज-दण्ड सम्बन्धी समाचार लानेवालेसे श्रीगोपीनाथके उस समयकी अवस्थाके विषयमें पूछनेपर उसने कहा कि, जब युवराजके आदमी श्रीगोपीनाथको बाँधकर राजद्वार ले जा रहे थे, उस समय श्रीगोपीनाथ हाथोंकी अगुलियोंकी गाँठोंपर निर्भय होकर उच्चस्वरसे ‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण’ महामन्त्रका कीर्तन करते जा रहे थे। यह बात सुनकर श्रीमहाप्रभु मन-ही-मन सन्तुष्ट हुए।

श्रीकाशी मिश्र जब श्रीमहाप्रभुके पास पहुँचे तो महाप्रभुने कहा कि,—“मैं श्रीआलालनाथ चला जाऊँगा। मैं अब पुरीमें रहकर विषयी लोगोंकी भली-बुरी बातें सुनना नहीं चाहता।”

यह सुनकर श्रीकाशी मिश्रने श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोको पकड़कर क्रातर भावसे निवेदन किया कि, श्रीरामानन्दके छोटे भाई श्रीगोपीनाथने कभी श्रीमहाप्रभुसे अपनी प्राण-रक्षाके लिये श्रीप्रतापसुद्धको अनुरोध करनेकी कोई बात नहीं कही। श्रीमहाप्रभुके द्वारा अपनी किसी प्रकार की सेवा करा लेना श्रीगोपीनाथका उद्देश्य नहीं है, परन्तु उनके द्वितैषियोने श्रीगोपीनाथको श्रीमहाप्रभुका शरणागत भक्त जानकर और उनके प्राणापहरणकी चेष्टा होते देखकर श्रीगोपीनाथकी प्राणरक्षाके लिये श्रीमहाप्रभुको सूचित किया था। श्रीगोपीनाथने श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे शुद्ध-भक्तोके स्वभावके विषयमें श्रवण किया है,—

सेइ 'शुद्ध भक्त, ये तोमा भजे तोमा लागि' ।

आपनार सुख-दु.खे नहे भोग-भागी ॥

तोमार अनुकम्पा चाहे, भजे अनुक्षण ।

अचिरात् मिले तौंरे तोमार चरण ॥

—चै० च० अ० ६।७५-७६

[वही शुद्ध भक्त है, जो तुम्हारे लिये ही तुम्हें भजता है। अपने सुख-दुःखकी चिन्ता नहीं करता। जो तुम्हारी कृपा चाहता हुआ प्रतिक्षण तुम्हें भजता है, उसे अविलम्ब तुम्हारे चरणोकी प्राप्ति होती है।]

श्रीकाशी मिश्रने श्रीमन्महाप्रभुसे निवेदन किया कि कोई भी उन्हें कभी भी किसी विषयीकी बातें नहीं सुनायगा। वे कृपा करके पुरीमें ही रहें।

इधर जब श्रीकाशी मिश्रकी श्रीप्रतापसुद्धसे भेंट हुई, तब उन्होने श्रीप्रतापसुद्धसे श्रीमन्महाप्रभुके पुरी छोड़कर 'आलालनाथ' जानेके सकल्पकी बात सुनायी। यह सुनकर श्रीप्रतापसुद्धने बहुत ही व्यथित होकर मिश्रसे अनुरोध करके कहा कि श्रीमहाप्रभु जिससे किसी प्रकार पुरीका त्याग न करे, इसके लिये सर्वतोभावेन प्रयत्न करना होगा। श्रीमहाप्रभुके बिना इस राज्य-ऐश्वर्य किसीका भी मूल्य नहीं है।

महाराज श्रीप्रतापरुद्रने काशी मिश्रसे अनुरोध किया कि वे श्रीमन्महा-  
प्रभुको श्रीभवानन्द रायकी गोष्ठीके प्रति उनकी (राजाकी) स्वाभाविक  
प्रीतिकी बात भी जना दें। इधर युवराजने श्रीगोपीनाथको बुलाकर उनको  
समस्त अभियोगोसे मुक्त कर दिया और उनके प्रति यथेष्ट अनुग्रह  
दिखलाया। श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रतापरुद्रकी दीनता और उदारताकी  
बात सुनकर विशेष आनन्दित हुए। श्रीभवानन्द राय अपने पाँचो  
पुत्रके साथ श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोंमें प्रणत होकर बोले,—“जागतिक  
महान् विपत्तियोसे त्राण पाना ही श्रीगौरसुन्दरकी कृपाका मुख्य फल  
नहीं है, उनकी निश्छल कृपाका फल तो है उनके पादपद्मोंमें प्रीति  
उत्पन्न होना। श्रीरामानन्द राय और श्रीवाणीनाथ श्रीमहाप्रभुकी ऐसी  
शुद्ध-कृपा प्राप्त करके धन्यातिधन्य हुए हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी इस  
प्रकारकी कृपा मुझे कब प्राप्त होगी?”

किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ ‘मुख्य फल’ ।

‘फलाभास’ एइ, या’ते’ विषय’ चचल ॥

रामराये, वाणीनाथे कैला ‘निर्विषय’ ।

सेइ कृपा आमाते नाहि, या’ते ऐछे हय ॥

शुद्ध कृपा कर’, गोसाजि, घुचाह ‘विषय’ ।

निर्विघ्न हइनु, मोते ‘विषय’ ना हय ॥

—चै० च० अ० ६।१३७-१३६

[ परन्तु तुम्हारे स्मरणका यह ‘मुख्य फल’ नहीं है, यह फलाभास  
है क्योंकि जगत्का विषय चचल है। रामानन्द राय और वाणीनाथको  
तुमने ‘विषय मुक्त’ कर दिया। वह कृपा मुझपर नहीं हुई, जिसमें  
ऐसा हो, स्वामिन् । शुद्ध कृपा करो’ ‘विषय’का नाश करो। विषयोसे  
मेरा मन हट गया है। मेरे द्वारा विषय-कार्य नहीं होगा। ]



## बयासीवाँ परिच्छेद 'श्रीराघवकी झालि'

गौडीय भक्तोंने रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीमहाप्रभुके दर्शन करनेके लिये पुन पुरीकी यात्रा की। 'पानिहाटी'के श्रीराघव पंडित अपनी बहन श्रीदमयन्तीके बनाये नाना प्रकारके प्रभु-प्रिय व्यजन पिटारी और टोकरीमें भरकर श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके लिये पुरी ले आये। यही 'राघवकी झालि' के नामसे प्रसिद्ध है।

वैष्णव-गृहिणी और महिलाएँ दूर-दूरसे इस प्रकार श्रीमहाप्रभुकी सेवा किया करती। वे प्रतिवर्ष रथयात्राके पहले पुरी आकर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी सुनकर जाती थी तथा सालभर घर रहकर निरन्तर श्रीमहाप्रभुकी सुखानुसन्धान-स्मृतिसे विभावित रहकर श्रीमहाप्रभुके लिये प्रिय भोज्य-सामग्रियोंको सग्रह तथा प्रस्तुत करती रहती। अतएव घर रहनेपर भी उनका घर गोलोककी स्मृतिसे उद्भासित रहता। उनका ससार तो श्रीकृष्णका ही ससार है। देह-सम्बन्धी पति, पुत्र अथवा परिजन परिवारके लिये सुख-स्वाच्छन्द्य-विधान, आहारकी व्यवस्था, उनके विलासके उपकरणोंका सग्रह, वहिर्मुख सामाजिकता और लौकिकताका पालन करके जो मायाका ससार करते हैं उनके ससारसे वैष्णव-गृहस्थ और वैष्णव-सहधर्मियोंके ससार किस प्रकार पूर्णत पृथक् होते हैं, यह हमें गौडीय भक्तोंके आदर्शमें देखनेको मिलता है। वैष्णव-गृहस्थगण श्रीमहाप्रभुकी सेवाके लिये घरमें वास करते थे और चातककी भाँति उत्कण्ठित रहते थे कि कब नीलाचल जाकर साक्षात् रूपमें श्रीगौरसुन्दरको सुख देंगे और उनके उपदेशामृतको पान कर सकेंगे।

श्रीदमयन्ती देवी श्रीमहाप्रभुकी सेवामें किस प्रकार वात्सल्य-रसमें डूबकर विचित्रतापूर्ण झालि (टोकरी) सजाती थी, इसका विस्तृत विवरण 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' ग्रन्थकी अन्त्य-लीलाके दशम परिच्छेदमें

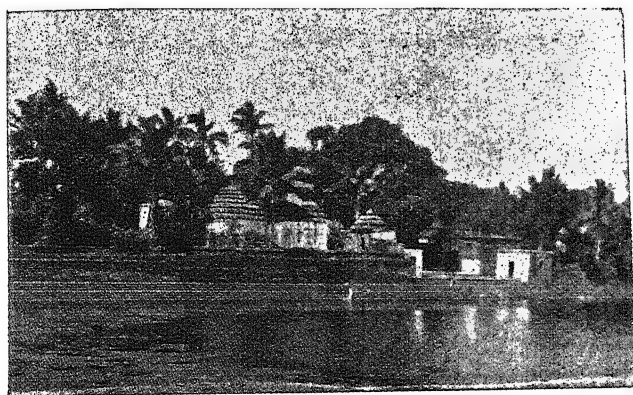
प्राप्त होता है। आम्रकाशन्दी (काशन्दी अर्थात् सरसो, हल्दी और नमक इत्यादिसे बनाया गया अचार विशेष। इसी काशन्दीमें कच्चे आमकी फालियाँ डालकर आम्रकाशन्दी बनाई जाती है।), अदरक-काशन्दी (काशन्दीमें अदरक डालकर अदरक-काशन्दी बनाई जाती है।), नीबू-अदरक, अमिया (खिच्चा आम), कच्चे आमकी सूखी हुई फालियाँ, अमोट, आमका अचार, सूखे हुए पाटके नए पत्तीकी बुकनी (यह आँव नाशक होती है), धनिया तथा सौफके तडुल द्वारा चीनीमें पाक किए हुए लड्डू, सूखा अदरक, मिश्री मिश्रित बेर, सूखे बेर, सूखे बेरका चूर्ण, इस प्रकार अनेको पदार्थ, सैकड़ों प्रकारके अचार, नारियल खण्ड, गगाजलकी नाई सफेद लड्डू, बहुत दिनो तक रहनेवाली मिश्रीकी मिठा-इयाँ, खोआ, पनीरकी बनाई हुई मिठाई, विविध प्रकारके अमृत कर्पूर बासमती धानका आतप चिउडा, घीमें भुना हुआ खील और मुरमुरे बासमती चावलोको भुनकर यानी मुरमुरे बनाकर उसे बूक करके चीनी द्वारा बनाया गया लड्डू, आदि सैकड़ों प्रकारके भोज्य द्रव्य श्रीराघवके निर्देशानुसार श्रीदमयन्ती देवी अत्यन्त स्नेह-भक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया करती थी। गगाकी मिट्टीकी पर्पटी (गगाकी मिट्टीको कपड़ेमें छानकर उसमें सुगन्धित द्रव्यादि मिलाकर पापडके रूपमें) तथा दूसरे मिट्टीके हल्के पात्रमें चन्दनादि भरकर श्रीराघवने बहुत यत्नके साथ झालि सजायी और झालिका मुँह बन्द करके उसके ऊपर मोहर लगा दी। इस झालिके 'मुनसिब' अर्थात् परिदर्शक और परिचालक बने पानिहाटी-ग्रामनिवासी श्रीराघव पंडितके अनुगामी श्रीगौरसेवागतप्राण—'श्रीमकरध्वज कर'। वे सावधानीसे झालिके रक्षक बनकर गौडीय वैष्णवोंके साथ अत्यन्त आर्तभावसे नीलाचलकी ओर चल पडते।



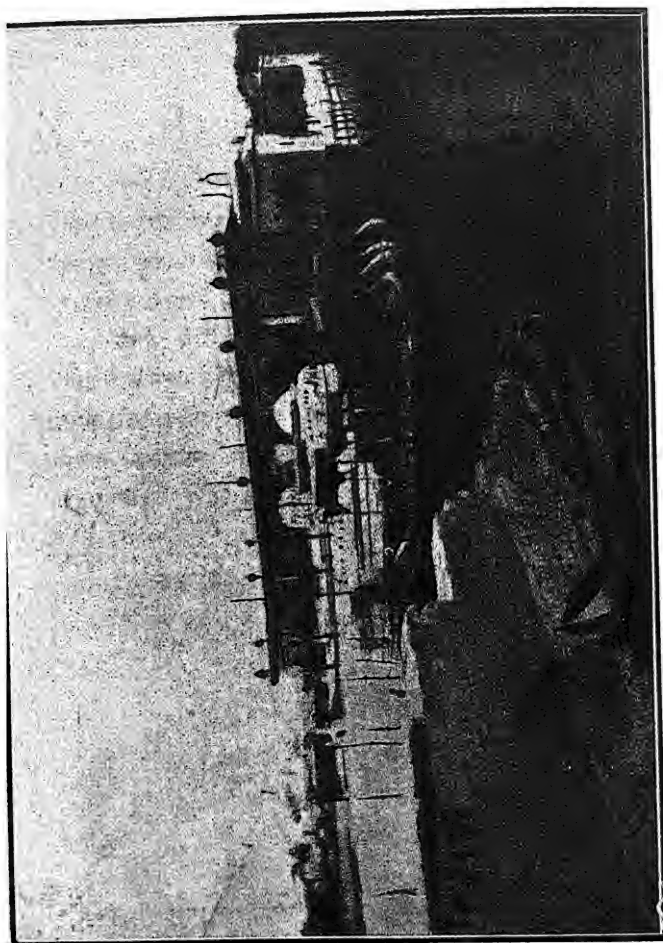
## तिरासीवाँ परिच्छेद

### ‘श्रीनरेन्द्र-सरोवरमें श्रीचन्दन-यात्रा’

पूर्वकालमें ‘श्रीइन्द्रद्युम्न’ नामक एक महासद्गुणसम्पन्न वैष्णव राजा थे । ‘मालव’ देशके अन्तर्गत ‘अवन्तीपुरी’ उनकी राजधानी थी । वे श्रीजगन्नाथजीके परम भक्त और सेवक थे । महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नको श्रीजगन्नाथदेवने वैशाख मासके शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयाको सुगन्ध-चन्दनके द्वारा अपने श्रीअंग-लेपन करनेका आदेश दिया । सियार-कुत्तोंके भोज्य इस देहपर जगत्के लोग अपने भोगके लिये नाना प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों और प्रसाधन-सामग्रियोंका व्यवहार करते हैं । इससे इस नश्वर देहपर आसक्ति और इस देहको आराम पहुँचानेकी चेष्टा बढ़ती है ; अतएव भगवद्भक्तोंने इन सारे द्रव्योंको भगवान्की सेवामें लगाकर अनायास ही देहासक्तिको उच्छेद करने और श्रीभगवान्के श्रीचरणोंमें प्रीति प्राप्त करनेकी व्यवस्था की है ।



श्रीइन्द्रद्युम्न-सरोवर, पुरी ; इस स्थानपर श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंके साथ जलकेलि किया करते थे ।



श्रीनरेन्द्र-सरोवर या चन्दन-तालाब ; चन्दन-यात्रीके समय इस सरोवरमें श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हुआ करता है । सरोवरमें श्रीमन्महाप्रभुने अपने भक्तोंके साथ जलक्रीडा की थी ।



महाराज श्रीइन्द्रद्युम्नके प्रति श्रीजगन्नाथदेवकी इस आज्ञाका अनुसरण कर आज भी 'अक्षय-तृतीया' से आरम्भ करके ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला अष्टमी तक प्रति दिन श्रीजगन्नाथ देवके विजय-विग्रह-स्वरूप श्रीमदनमोहनको श्रीमन्दिरसे पालकीपर चढाकर 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीर लाया जाता है। श्रीमदनमोहनदेव अपने मन्त्री श्रीलोकनाथ महादेव आदिको साथ लेकर सरोवरमें नौका-विलास करते हैं। श्रीमदनमोहनदेवकी 'श्रीचन्दन-यात्रा' अनुष्ठित होनेके कारण श्रीनरेन्द्र-सरोवरको 'चन्दनपुकुर' (चन्दन-तालाब) के नामसे भी पुकारते हैं।

गौडीय भक्तगण 'चन्दन-यात्रा'के दिन ही श्रीनीलाचलमें आ पहुँचे। श्रीगौरसुन्दरने पहले ही श्रीअद्वैत, श्रीनित्यानन्द आदि गौडीय भक्तोंके नीलाचलकी ओर आनेका समाचार सुनकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये 'कटक' तक श्रीमहाप्रसाद भोज दिया था और स्वयं 'अठारहनाला' तक आगे जाकर उन गौडीय भक्तोंकी अभ्यर्थना की। श्रीअद्वैत आदि गौडीय-गोष्ठी और श्रीगौरसुन्दर प्रमुख नीलाचल-गोष्ठीके परस्पर मिलनसे महान् आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। नृत्यगीत और सकीर्तन के साथ गौडीय वैष्णवगण श्रीमहाप्रभुको आगे करके 'नरेन्द्र-सरोवर'के तीरपर जा उपस्थित हुए।

उस समय श्रीनरेन्द्रसरोवरमें श्रीमदनमोहनजीका नौका-विलास हो रहा था। उसी समय श्रीमहाप्रभु भी सरोवरमें भक्तोंके साथ जलकेलि करने लगे। चारों ओर नाना प्रकारकी बाद्यध्वनि और सकीर्तनका महाकोलाहल होने लगा।

गौडदेशीय और उत्कलवासी भक्तगण एक साथ सकीर्तन करने लग गये। जलक्रीडाके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु भक्तोंको साथ लेकर श्रीजगन्नाथके मन्दिरमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करने गये। गौडीय भक्तगण श्रीमन्महाप्रभुके पास रहकर निरन्तर उनका कथामृत पान करने लगे।



## चौरासीवाँ परिच्छेद संकीर्तन-रास-नृत्य

श्रीमन्महाप्रभुको संकीर्तनका 'पिता' या 'प्रवर्तक' कहा जाता है। बहुतसे लोग मिलकर जो श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हैं, उसे ही 'संकीर्तन' कहते हैं। बहुत लोगोमें श्रीभगवान्की महिमाके प्रचारका और श्री-भगवद्भजनका इस प्रकारका सहज मार्ग दूसरा कोई भी आविष्कृत नहीं हुआ। इस संकीर्तनमें 'बेडा संकीर्तन' (गोलाकार रूपमें घूम-घूमकर कीर्तन) ने वैष्णव-सम्प्रदायमें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। इसको 'संकीर्तन-रास-नृत्य'के नामसे पुकारा जा सकता है। श्रीमन्दिर या किसी स्थानको घेरकर किये जानेवाले नृत्य-संकीर्तनको ही 'बेडा संकीर्तन' कहते हैं।

श्रीगौरहरिने नीलाचलमे सात-संकीर्तन दलोकी रचना करके एक दिन 'बेडा-संकीर्तन'-नृत्य आरम्भ किया। एक-एक दलमें एक-एक आदमी नर्तक निर्धारित किया गया। श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, पण्डित श्रीवक्त्रेश्वर, श्रीअच्युतानन्द, पंडित श्रीश्रीवास, कुलीन ग्रामके श्रीसत्यराज खा और श्रीखण्डके श्रीनरहरि सरकार ठाकुर—इन सात पुरुषोंने सात विभिन्न दलोमे नृत्य किया। श्रीमहाप्रभु इन सातो दलोके बीच घूमने लगे। परन्तु कैसा आश्चर्य है कि, प्रत्येक दलने ही समझा कि श्रीमहाप्रभु केवल उन्हीकी गोष्ठीमें उपस्थित है। सारे उत्कलवासी इस प्रकारके अद्भुत संकीर्तन-रास-नृत्यको देखकर विस्मित हो उठे। स्वयं महाराज श्रीप्रतापरुद्र सपरिजन इस संकीर्तन-नृत्यके दर्शन करने लगे। संकीर्तन करते-करते प्रभुके आठो सात्विक विकार प्रकट होते रहे। क्षण-क्षणमें श्रीमहाप्रभुका प्रेमानन्द-सागर बढ़ने लगा। श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रीमहाप्रभुको क्रमशः बाह्य दशामें लानेके लिये मन्द स्वरसे कीर्तन आरम्भ किया। श्रीमहाप्रभुको धीरे-धीरे बाह्य-

दशा प्राप्त हुई और वे भक्तोंके साथ समुद्रमें स्नान करने गये। उसके बाद भक्तोंको साथ लेकर उन्होंने सम्मानपूर्वक महाप्रसाद ग्रहण किया।



## पचासीवाँ परिच्छेद

### सेवा ही नियम है

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद-सेवनके बाद 'गम्भीरा'के \* द्वारपर जाकर सो रहे। सेवक श्रीगोविन्दका एक दैनिक नियम यह था कि जब श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद पाकर विश्राम करते थे, श्रीगोविन्द उसी समय प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करते थे और जब श्रीमहाप्रभुको नीद आ जाती तब गोविन्द श्रीमहाप्रभुका अवशेष† ग्रहण करने चले जाते। उस दिन श्रीमहाप्रभु अत्यन्त थके होनेके कारण गम्भीराका पूरा द्वार रोक कर सो गए। अतएव श्रीगोविन्द भीतर प्रवेश करके प्रभुकी चरणसेवा नहीं कर सके इसलिये उन्होंने प्रभुसे किंचित करवट बदल करके जानेके लिये रास्ता देनेकी प्रार्थना की। श्रीमहाप्रभु बोले,— “मैं सरक नहीं सकूंगा। तुम्हारी जो इच्छा हो करो।” तब अन्तमें श्रीगोविन्दने अपनी चादरके द्वारा श्रीमहाप्रभुका श्रीअंग ढक करके महा-प्रभुको उत्लघन करके ही भीतर प्रवेश किया और प्रभुकी पाद-सवाहन-सेवा करने लगे। निद्रा-भग होनेपर श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको घरके भीतर देखकर उसकी अत्यन्त भर्त्सना की और इतने समयतक बिना भोजन किये वहाँ बैठे रहनेका कारण पूछा। श्रीगोविन्दने कहा,—“आप

\* चौबारे या बरामदेके बाद दालान होता है, उसके भीतरकी छोटी कोठरीको 'गम्भीरा' कहते हैं।

† श्रीमहाप्रभुके भोजनके बाद बचा हुआ प्रसाद।

द्वारपर शयन किये हुए हैं, मैं कैसे बाहर जाता ?” श्रीमहाप्रभु बोले,—  
 “तुम जैसे भीतर आये थे वैसे ही बाहर क्यों नहीं चले गये ?”  
 श्रीगोविन्द निरुत्तर होकर मन-ही-मन सोचने लगे —

\* \* \* आमार सेवा से नियम ।

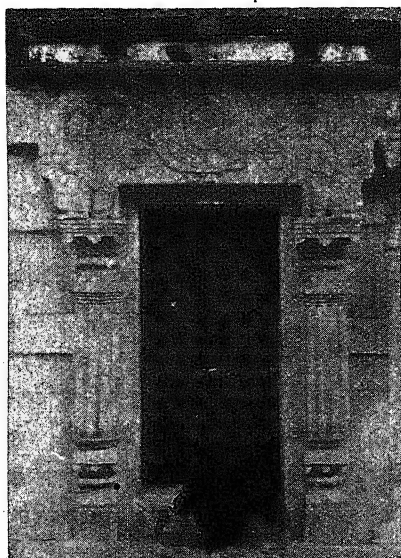
अपराध हुआ, किंवा नरके गमन ॥

सेवा लागि' कोटि 'अपराध' नाहि गणि ।

स्व-निमित्त 'अपराधाभासे' भय मानि ॥

—चै० च० अ० १०।१५-१६

“सेवा ही मेरा मूल लक्ष्य है, सेवा करते हुए यदि मुझे नरक जाना पड़े तो उसमें भी कोई आपत्ति नहीं। परन्तु अपने निजी सुखके हेतु



पुरीमें श्रीकाशी मिश्रके घरके नामसे परिचित

‘गंभीरा’ गृहका द्वार

भोजन करनेके लिये मैं अपराधके आभासमात्रसे भी भय करता हूँ । श्रीमहाप्रभुकी सेवाके प्रयोजनसे ही मैंने श्रीमहाप्रभुको लाँघकर भीतर प्रवेश किया था, अब अपने प्रयोजनके लिये मैं फिर वैसा किसी प्रकार भी नहीं कर सकता ।”

पाठको, श्रीगोविन्दकी इस सेवाके आदर्शमें शुद्धभक्तिका रहस्य-विज्ञान परिस्फुटित हुआ है । भगवद्भक्त कभी भी अपने सुख, शान्ति और तृप्तिके लिये सेवाका बहाना नहीं करते । जिसमें किसी प्रकार भी आत्मेन्द्रिय-सुख कामना, भुक्ति-मुक्ति कामना छिपी रहती है, उसका बाहरी रूप सेवाके समान दिखायी देनेपर भी, वह सेवा नहीं है, वह सेवाके नाम पर ‘भोग’ है, अथवा भक्तिके नामपर ‘भुक्ति’ है ।



## छियासीवाँ परिच्छेद

### श्रीचैतन्यदासका निमन्त्रण

श्रीशिवानन्द सेन अपने ज्येष्ठ पुत्रको साथ लेकर एक दिन श्रीमहा-प्रभुके दर्शन करने गये । श्रीकृष्णचैतन्यने जब श्रीशिवानन्दके पुत्रका नाम पूछा तो शिवानन्दने बतलाया—बालकका नाम ‘श्रीचैतन्यदास’ है । श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपना दास्य-सूचक नाम सुनकर अपनेको छिपानेके बहाने श्रीशिवानन्दसे कहा,—“तुमने यह क्या नाम रक्खा है ? यह तो कुछ भी समझमें नहीं आता ।”

श्रीशिवानन्दने कहा,—“श्रीकृष्णने मेरे चित्तमें जैसी स्फूर्ति करायी, मैंने वही नाम रक्खा है ।” इसके बाद श्रीशिवानन्दने श्रीमन्महाप्रभुको भोजनके लिये निमन्त्रण दिया और श्रीजगन्नाथजीका बहुमूल्य प्रसाद

मँगवाकर भक्तगणके साथ श्रीमहाप्रभुको भोजन कराया। श्रीशिवा-  
नन्दके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण श्रीमन्महाप्रभुने प्रसादका सम्मान तो  
अवश्य किया, परन्तु इस प्रकारके अत्यन्त गरिष्ठ पदार्थोंके भोजनसे  
श्रीमहाप्रभुका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ।

श्रीमन्महाप्रभुका अभिप्राय समझकर एक दिन फिर श्रीचैतन्यदासने  
श्रीमहाप्रभुकी अग्निमान्द्य दूर करनेवाला दही, निम्बू, अदरक प्रभृति  
द्रव्योंके द्वारा सेवा की। इन पदार्थोंको देखकर श्रीमहाप्रभु विशेष  
आनन्दित हुए और बोले,—“यह बालक मेरे अभिप्रायको जानता है। मैं  
इसके निमन्त्रणसे सन्तुष्ट हुआ हूँ।” यह कहकर श्रीमहाप्रभुने दही-चावल  
भोजन किया, और श्रीचैतन्यदासको अपना उच्छिष्ट प्रदान किया।  
आगे चलकर ‘श्रीचैतन्यदास’ एक अप्राकृत ‘कवि’के रूपमें प्रसिद्ध हुए।



## सतासीवाँ परिच्छेद

### ठाकुर श्रीहरिदासका तिरोधान

श्रीनामाचार्य श्रीठाकुर हरिदास श्रीगौरसुन्दरके वासस्थानके समीप  
एक निर्जन पुष्पोद्यानमें\* रहते हुए निरन्तर सख्या रखकर हरिनाम लिया  
करते थे। एक दिन श्रीगोविन्द श्रीहरिदास ठाकुरके निकट श्रीमहा-  
प्रसाद लेकर गये, देखते क्या है कि ठाकुर सोये हुए हैं और बहुत धीरे-  
धीरे सख्या नाम सकीर्तन कर रहे हैं। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रसादका  
एक कणमात्र लेकर उसका सम्मान किया। फिर एक दिन श्रीमन्महा-  
प्रभुने स्वयं आकर श्रीहरिदाससे कुशल पूछी। श्रीहरिदास बोले,—

\* यह स्थान ‘सिद्धवकुल’के नामसे प्रसिद्ध हो गया है।

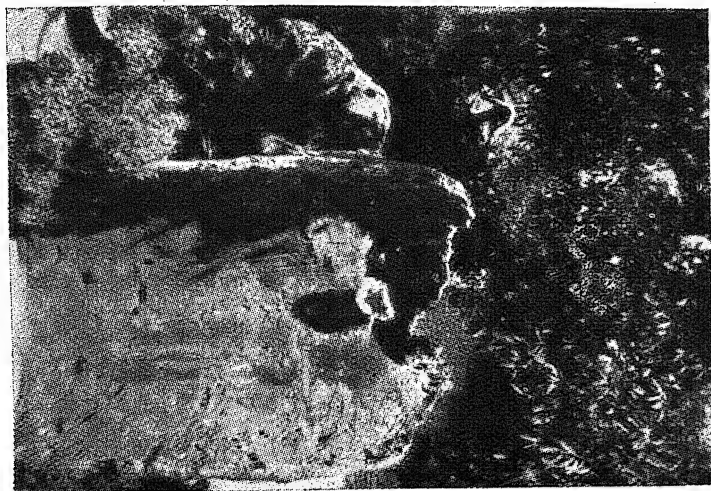
“शरीर सुस्थ हय मोर, असुस्थ बुद्धि - मन ।”

—चै० च० अ० ११।२२

[ मेरा शरीर स्वस्थ है पर बुद्धि और मन अस्वस्थ हैं ।]

श्रीमन्महाप्रभु बोले,—“हरिदास तुम्हें क्या बीमारी है ?” हरिदास ने उत्तर दिया —“मेरा संख्या-नाम-कीर्तन पूरा नहीं हो रहा है, यही मेरी बीमारी है ।” श्रीमन्महाप्रभुने कहा,—“तुम्हारी सिद्ध देह है, अतएव इस प्रकारके साधनाभिनयमें आग्रहकी क्या आवश्यकता है ?”

श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुके सामने अत्यन्त दीनता प्रकट की और उनसे एक विशेष प्रार्थना करके कहा कि उनके हृदयकी एकमात्र अभिलाषा यही है कि वे श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोंको हृदयमें धारण करके तथा उनके चन्द्रवदनको दोनों नयनोंसे देखते हुए मुखसे ‘श्रीकृष्ण-



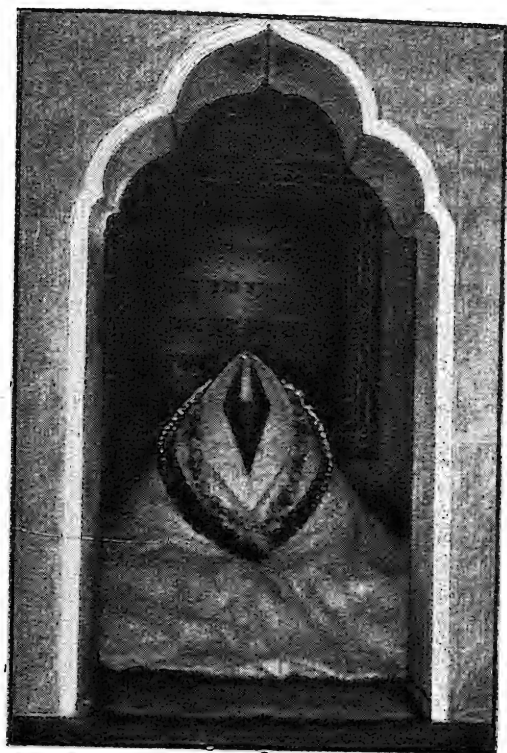
श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-स्थली ‘सिद्ध-वकुल’ (पुरी)

चैतन्य' नामोच्चारण करते-करते इहलीला सवरण करें। क्योंकि वे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्रकट लीलाके बाद इस पृथ्वीपर नहीं रह सकेंगे।

श्रीमन्महाप्रभु उस दिन चले गये और दूसरे दिन प्रातःकाल श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करनेके बाद भक्तोंको साथ लेकर पुनः श्रीहरिदासके यहाँ पहुँचे। श्रीहरिदासकी कुटीके सामने महासकीर्तन प्रारम्भ हुआ—सभी श्रीहरिदासको घेरकर श्रीनाम-सकीर्तन करने लगे। श्रीमहाप्रभु तब सब वैष्णवोंके सामने श्रीहरिदासका गुण वर्णन करने लगे। समवेत वैष्णवोंने श्रीहरिदासके श्रीचरणोंमें प्रणाम किया। श्रीहरिदासने श्रीमहाप्रभुको सामने बैठाया और वे प्रभुके श्रीमुखचन्द्रके दर्शन करने लगे। श्रीमहाप्रभुके युगलचरणोंको लेकर श्रीहरिदासने अपने हृदयपर स्थापन किया, सब भक्तोंकी चरणभूलि लेकर अपने सिरपर धारण की और वे बारम्बार मुखसे 'श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु' नाम उच्चारण करने लगे। 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामोच्चारणके साथ-साथ भीष्मकी इच्छा-मृत्युके समान ठाकुर श्रीहरिदासका भी 'महाप्रयाण' हो गया। सभी 'हरि', 'कृष्ण' उच्चारण करते हुए महासकीर्तन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु प्रेमानन्दसे अत्यन्त विह्वल हो उठे।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुरको सुशोभित पलंगपर चढ़ाकर भक्तोंके साथ नृत्य करते-करते समुद्रके किनारे ले गये। श्रीहरिदासके चिदानन्दशरीरको समुद्रजलमें स्नान कराकर श्रीमहाप्रभु बोले,—“आजसे समुद्र महातीर्थ हो गया।” महाप्रभुके भक्तोंने श्रीहरिदासका चरणधौत-जल पान किया, श्रीहरिदासके अगपर प्रसादी चन्दन लेपन किया और वस्त्रादिके द्वारा ढककर उस शरीरको बालुकाके गर्तमें शयन करा दिया। महाप्रभुने स्वयं 'हरि बोलो' 'हरि बोलो' कहते हुए अपने हाथों श्रीहरिदास ठाकुरको समाधिस्थ किया और उनपर बालू देकर समाधिपीठ बनवा दिया। निरन्तर भक्तोंका सकीर्तन और नृत्य होने लगा। श्रीमन्महाप्रभुने 'ठाकुर श्रीहरिदासकी समाधिपीठ'की प्रदक्षिणा की और वे श्रीहरि-कीर्तन करते-करते सिंहद्वारपर आये। “हरिदास ठाकुरके महोत्सवके लिये





श्रीहरिदास ठाकुरकी समाधि (पुरी)

मुझको महाप्रसाद भिक्षा दो” — यह कहकर श्रीमहाप्रभुने पसारियोके (प्रसाद-विक्रेताओंके) सामने स्वयं आँचल पसारकर श्रीमहाप्रसादकी भिक्षा ली ।

प्रचुर महाप्रसाद सगृहीत हो गया, ठाकुर हरिदासके विरहोत्सवमें स्वयं श्रीमहाप्रभुने अपने हाथसे सबको प्रचुर परिमाणमें प्रसाद परोसा । पश्चात् पुरी, भारती आदि सन्यासियोंके साथ स्वयं प्रसादका सम्मान किया । भक्तगण कण्ठ तक भरकर प्रसाद-भोजनकर हरिकीर्तन करने लगे । श्रीमहाप्रभु ठाकुर श्रीहरिदासके विरहमें पुन-पुन विलाप करते हुए कहने लगे,—

कृपा करि’ कृष्ण मोरे दियाछिला संग ।

स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,—कैला संग-भंग ॥

—चै० च० अ० ११।६४

[ कृपा करके श्रीकृष्णने मुझे हरिदासका संग दिया था । कृष्णकी इच्छा स्वतन्त्र है । उसने उस संगको तोड़ दिया । ]



## अठासीवाँ परिच्छेद श्रीपुरीदास और परमेश्वर मोदक

प्रति वर्षके समान इस वर्ष भी गौडीय भक्तगण पुरीधाम पधारे । श्रीशिवानन्द सेनके तीन पुत्र भी उनके साथ आये । श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीशिवानन्दने अपने कनिष्ठ पुत्रका नाम ‘श्रीपरमानन्द-पुरीदास’ रखवा था । जब श्रीशिवानन्दने बालक परमानन्दको श्रीमहा-प्रभुके समीप उपस्थित किया, तब श्रीमन्महाप्रभुने बालकके मुखमें अपने

पैरका अंगूठा दे दिया। बालक उस अंगूठेको चूसने लगा। वे परमानन्द-दास ही 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक' और 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका' के प्रसिद्ध रचयिता 'श्रीकविकर्णपूरगोस्वामी' हैं। उनके रचे हुए श्रीआनन्द-वृन्दावनचम्पू और 'अलंकारकौस्तुभ' आदि ग्रंथ भी गौडीय-वैष्णव-साहित्य-भाण्डारके महामणि-स्वरूप हैं।

श्रीधाम-नवद्वीपमें बाल्यलीलाके समय श्रीगौरसुन्दर श्रीमायापुरके 'परमेश्वर मोदक' नामक एक मोदक (हलवाई) के घर दुग्ध-खण्डादि मिष्टान्नके लिये प्राय ही जाया करते थे। उसी भाग्यवान् मोदकने अपनी पत्नीके साथ पुरी आकर श्रीमहाप्रभुके श्रीचरणोके दर्शन किये। मोदकने श्रीमहाप्रभुकी बाल्यलीलाका स्मरण करके श्रीमहाप्रभुसे कहा,—“मेरे साथ मुकुन्दकी माता भी (मेरी पत्नी भी) आयी है।” सन्यासीके आदर्शका प्रदर्शन करनेवाले लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभु मुकुन्दकी माताका नाम सुनकर कुछ सकुचित हुए। परन्तु सरल ग्राम्यस्वभाव मोदकको कुछ नहीं कहा, बल्कि वे भीतर ही भीतर सुखी हुए।



## नवासीवाँ परिच्छेद

### पंडित श्रीजगदानन्द

पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीशिवानन्द सेनक घरसे एक घड़ा सुगन्धित चन्दनादि तेल बहुत यत्नसे लाकर श्रीमहाप्रभुके व्यवहारके लिये श्रीगोविन्दके हाथमें प्रदान किया। लोकशिक्षक श्रीमहाप्रभुने सन्यासीके आचरणकी शिक्षा देनेके लिये श्रीगोविन्दसे कहा,—“प्रथम तो सन्यासीको किसी भी तेलका अधिकार नहीं है और उसमें भी फिर यह सुगन्धित तेल! यह तेल श्रीजगन्नाथजीकी सेवामें ले जाकर दे आओ, उससे उनका दीपक जलेगा—तुमलोगोका परिश्रम सफल हो जायगा।”

दस दिनके बाद पुन श्रीगोविन्दने श्रीमहाप्रभुसे श्रीजगदानन्दका अनुरोध कह सुनाया, तब श्रीमहाप्रभु क्रोध प्रकट करते हुए बोले,— “जब जगदानन्दने तेल दिया है तब मालिश करनेवाला एक आदमी भी होना चाहिए । इसी सुखके लिये तो मैंने सन्यास लिया है । इसमें मेरा सर्वनाश है और तुम लोगोका परिहास है । रास्ता चलते समय जब लोगोको तेलकी सुगन्धि मिलेगी तो मुझको लोग ‘दारी-सन्यासी’ ही समझेंगे ।”

पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीगोविन्दके मुखसे श्रीमहाप्रभुकी इन सारी बातोको सुनकर प्यारभरे गुस्सेमें आकर श्रीमहाप्रभुके सामने ही तेलके बर्तनको फोड़ दिया और अपने घरका द्वार बन्द करके वे अनशन करके सो रहे । भक्त-प्रेमवश श्रीमहाप्रभु भक्तका मान-भग करनेके लिये तीसरे दिन श्रीजगदानन्दके घर गये और उन्होंने स्वयं उपयाचक बनकर पंडितके द्वारा भोजन बनवाकर भिक्षा ग्रहण की और पंडितको भी प्रसाद सेवन कराया ।

इस लीलाके द्वारा श्रीमहाप्रभुने यह बतलाया कि सर्वोत्कृष्ट उपकरणके द्वारा एकमात्र परमेश्वरकी ही स्वारसिकी-सेवा\* करनी चाहिये । साधक अपने इन्द्रिय-सुखका त्यागकर आदर्श जीवन बिताते हुए हरिसेवा करे । वे कभी भी भोगका अथवा महाभागवतकी चेष्टाका अनुकरण न करे ।

कृष्ण-विरहानलमे श्रीमहाप्रभुकी देह सदा तप्त रहती थी, अतएव वे केलेके वृक्षके ऊपरी वस्तुपर शयन करते थे । श्रीमहाप्रभुको इस प्रकारके वैराग्यका आचरण करते हुए देखकर भक्तोके हृदयमें अत्यन्त व्यथा होती थी । पंडित श्रीजगदानन्दने श्रीमहाप्रभुके लिये गेरुए रगकी

---

\* स्वारसिकी-सेवा—स्व=निज, रसके अनुकूल सेवा, अर्थात् अपनी रुचि जिस-जिस वस्तुके उपभोगकी होती है, उस-उस वस्तुको भोग न करके भगवान्‌के भोगमें लगाना ।

खोली देकर गद्दा-तकिया तैयार कराया। परन्तु महाप्रभुने उसे स्वीकार नहीं किया। अन्तमें श्रीस्वरूप-गोस्वामीप्रभुने सूखे केलेके पत्तोको नखसे चीर-चीर करके उसे चादरमें भरकर गद्दा-तकिया तैयार करा दिया। बहुत चेष्टा करनेके बाद श्रीमन्महाप्रभुने उसे व्यवहार करना स्वीकार किया। इस लीलाके द्वारा भी श्रीमहाप्रभुने साधक-सन्यासियोंको श्रीकृष्णप्रीतिके लिये भोग-त्यागके आदर्शकी शिक्षा दी है।



## नब्बेवाँ परिच्छेद देवदासीका 'श्रीगीतगोविन्द'-गान

एक दिन श्रीमहाप्रभुको दूरसे श्रीजयदेवके 'गीतगोविन्द'का एक पद-गान सुनाई दिया। स्त्री है या पुरुष—कठ-स्वर किसका है, इस ओर ध्यान न देकर महाप्रभु प्रेमावेशमें अपने-आपको भूल गये और अर्द्धबाह्यदशाको प्राप्त हो कण्टकमय वनके मार्गसे गायिका देवदासीकी ओर दौड़ पड़े। सेवक श्रीगोविन्दने श्रीमन्महाप्रभुको रोककर बताया कि वह किसी स्त्रीका सगीत है। 'स्त्री' नाम सुनते ही श्रीमहाप्रभुको बाह्यदशा प्राप्त हो गयी और वे बोले,—

\* \* गोविन्द, आज राखिला जीवन ।

स्त्री-परश हँले आमार हृदय मरण ॥

ए-ऋण शोधिते आमि नारिमु तोमार ।

—चै० च० अ० १३।८५-८६

[ गोविन्द, आज तुमने मेरा जीवन बचाया। स्त्री-स्पर्श होनेपर मेरी मृत्यु हो जाती। मैं तुम्हारा यह ऋण नहीं चुका सकूँगा। ]

श्रीमहाप्रभुने इम लीलाके द्वारा श्रीकृष्ण-कीर्तन-श्रवणके बहाने रमणीके मधुर कण्ठ और रूपका उपभोग करनेकी प्रच्छन्न पिपासा—जो भविष्यमें सहजिया-सम्प्रदायमें सक्रामक रोगके समान फैल जायगी—उसका सर्वतोभावेन निषेध किया। श्रीकृष्ण-गान-श्रवणका बहाना करके मुमुक्षु, सन्यासी या साधक-जीवके लिये स्त्रियोका गान सुनना उचित नहीं है। साधक-जीवको इस विषयमें निरन्तर सावधान रहना चाहिये।



## इकानबेवाँ परिच्छेद

### श्रीरघुनाथ भट्ट

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीकाशीसे श्रीपुरुषोत्तमधाम आते समय अपने साथ 'रामदास विश्वास' नामक एक रामानन्दी-सम्प्रदायके पंडितको लेते आये थे। रामदासके हृदयमें मुक्तिकी पिपासा और पांडित्यका अहंकार था, अतएव श्रीमन्महाप्रभुने रामदासकी बाहरी दीनता और वैष्णव-सेवाका अभिनय देखकर भी उनके प्रति उदासीनता प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरघुनाथको विवाह करनेसे मना कर दिया और परम वैष्णव पिता श्रीतपन मिश्र तथा परमाभक्तिमती माताकी सेवाके लिये पुनः काशी भेज दिया। श्रीरघुनाथदास गोस्वामि-प्रभुके वृद्ध माता-पिताके पुत्रके परमार्थमें बाधा प्रदान की थी, इसीलिये श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथको उनके सगसे छुड़ाकर दूसरी जगह बुलाया था, परन्तु श्रीरघुनाथ भट्टके वृद्ध माता-पिता भगवान्‌के एकान्त सेवक-सेविका थे। इसी कारण श्रीमहाप्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको, वृद्ध माता-पिताका अन्तर्धान होनेके बाद नीलाचल चले आनेका आदेश देकर,

उन लोगोकी सेवाके लिये घर भेजा । श्रीरघुनाथ भट्ट माता-पिताकी कृष्ण-प्राप्तिके बाद श्रीमहाप्रभुके पास नीलाचल चले आये । श्रीमहा-प्रभुने श्रीरघुनाथ भट्टको अपने पास आठ मास रखनेके बाद श्रीवृन्दा-वनमें श्रीरूप-सनातनके पास भेज दिया और निरन्तर श्रीमद्भागवत पाठ और श्रीकृष्णनाम लेनेका आदेश दिया ।

श्रीमन्महाप्रभुकी इस लीलामें एक महती शिक्षा है । जो व्यक्ति ससारमें प्रविष्ट नहीं हुए हैं और जिनके हृदयमें निष्कपट हरि-भजन करनेकी प्रवृत्ति है, उनको बहिर्मुख ससारी बननेकी प्रेरणा देना उनके प्रति हिंसा करना ही होता है । फिर श्रीमहाप्रभुने वैष्णव माता-पिताकी सेवाके सुयोगके बहाने नये ढंगसे ससार बनाने या भोगमय ससारमें प्रवेश करनेकी जो प्रच्छन्न भोगवृत्ति मनुष्यके हृदयमें होती है, उसका भी श्रीरघुनाथ भट्टको विवाह न करनेकी आज्ञा देकर निवारण कर दिया है ।



## बानबेवाँ परिच्छेद

### उत्कलवासिनी भक्तमहिला

श्रीमहाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण होनेपर भी जगत्के जीवोको कृष्ण-भक्तके आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका श्रीराधारानीके भाव और कान्तिको लेकर अवतीर्ण हुए थे । श्रीकविराज गोस्वामिपाद कहते हैं—

कृष्णवांछा-पूर्तिरूप करे' आराधने ।

अतएव 'राधिका' नाम पुराणे बाखाने ॥

—चै० च० आ० ४।८७

[कृष्णकी बाछापूतिरूप आराधन करती है, इसलिये पुराणोंमें उनका 'राधिका' नाम बतलाया गया है ।]

स्वेच्छामय लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अभिलाषा सर्वेन्द्रियसे और सर्वतोभावसे निरन्तर पूर्ण करनेके लिये ही जिन्होंने श्रीविग्रह धारण किया है, वे ही हैं—'श्रीराधिका' । श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा आराधिका होनेके कारण ही उनका नाम 'श्रीराधा' है । जो सर्वश्रेष्ठ सेवक है, वे कभी भी सेव्यतत्त्वके द्वारा अपना भोग-साधन प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं करते । वे निरन्तर समस्त इन्द्रियोके द्वारा सर्वतोभावसे किस प्रकार श्रीकृष्णको सन्तोष प्राप्त हो, इसीके अनुसन्धानके आवेशमें ही आविष्ट और उन्मत्त रहते हैं । इस आवेशकी और उन्मत्तताकी पराकाष्ठाको ही भक्तिशास्त्रकी परिभाषामें 'दिव्योन्माद' कहा गया है ।

श्रीमन्महाप्रभु अपनेको श्रीराधारानीकी एक दासी समझते थे । इनमें भी उनकी एक शिक्षा है । पीछे अपनेमें 'राधा' होनेका अभिमान करनेपर लोग 'मैं राधा हूँ'—ऐसी कल्पना करके 'अहग्रहोपासना' को प्रश्रय दे देंगे, इसी कारण श्रीमहाप्रभु अपने लिये श्रीराधारानीकी दासी होनेका अभिमान करते थे ।

एक दिन श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्नमें देखा कि मुरलीवदन श्रीश्याम-सुन्दर श्रीराधारानीके साथ गोपागनाओकी मण्डलीमें नृत्य कर रहे हैं । इधर श्रीमहाप्रभुके उठनेमें देर होती देखकर गोविन्दने श्रीमहाप्रभुको जगानेकी चेष्टा की । श्रीमहाप्रभु जगकर अत्यन्त ही कृष्ण-विरह-विधुर हो उठे । अभ्यासवश नित्यकृत्य सम्पादन करके वे श्रीजगन्नाथदेवके दर्शनके लिए श्रीमन्दिर चले गये ।

श्रीजगन्नाथदेवके नाट्य-मन्दिरमें एक 'गरुडस्तम्भ' है । वह गर्भमन्दिरसे बहुत दूर अवस्थित है । श्रीमहाप्रभु उस गरुडस्तम्भके

\* 'अहग्रहोपासना'—दो प्रकारकी है—(१) जीवका अपनेको 'विषय-विग्रह' समझनेका अभिमान और (२) अपनेको 'मूल-आश्रय-विग्रह' माननेका अभिमान । दूसरी 'अहग्रहोपासना' अधिकतर अपराधमयी है ।



पीछेसे ही श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन करते थे। इसके द्वारा श्रीमहाप्रभु यह शिक्षा देते थे कि, गरुड श्रीनारायणक नित्य पार्षद भक्त हैं, उनके पीछे रहकर ही अर्थात् श्रीभगवान्‌के शुद्ध भक्तका अनुगामी होकर ही श्रीभगवान्‌के दर्शनके लिये जब मनुष्य आर्त्त हो जाता है, तब श्रीभगवान् कृपा करके दर्शन देते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु गरुडस्तम्भसे भावावेशमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर रहे थे, उनके सामनेसे भी लाखो-लाखो लोग श्रीजगन्नाथदेवजीके दर्शन कर रहे थे, उसी समय एक उत्कलवासिनी नारी उस भारी भीडमें श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन न पाकर श्रीमहाप्रभुके कन्धेपर पैर रखकर गरुडस्तम्भपर चढ़कर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन कर रही थी। यह देखकर गोविन्दने अतिशय व्यग्र होकर उन स्त्रीको नीचे उतार दिया। श्रीमहाप्रभुने गोविन्दको मना करते हुए कहा,—“वे श्रीजगन्नाथ जीकी सेवा कर रही हैं, अतएव उनकी सेवामें बाधा डालना उचित नहीं है। वे इच्छानुसार श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करे।” उन स्त्रीको जब यह पता लगा कि उन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके कन्धेपर पैर रक्खा था तो वह शीघ्र ही नीचे उतरकर श्रीमहाप्रभुको प्रणाम करके पुनः-पुनः क्षमा-प्रार्थना करने लगी। श्रीमहाप्रभु उन स्त्रीके आर्त्तभावको देखकर कहने लगे,—“अहो! श्रीजगन्नाथकी सेवाके लिये मुझे तो इस प्रकारके आर्त्तभावकी प्राप्ति नहीं हुई। इनके देह-मन-प्राण सभी जगन्नाथजीके पादपद्मोंमें आविष्ट हैं, इसी कारण इनको इतना भी बाह्यज्ञान नहीं है कि इन्होंने दूसरेके कन्धेपर पैर रक्खा है। ये महिला अत्यन्त भाग्यवती है, मैं इनकी कृपाके लिये प्रार्थना करता हूँ। इनकी कृपासे संभव है किसी दिन मुझमें भी इसी प्रकारकी आर्त्ति उदय हो जय।”

श्रीमन्महाप्रभुने इस लीलाके द्वारा शिक्षा दी कि ऐकान्तिक कृष्णसेवाके उपकरणको इन्द्रियजन्य ज्ञानसे स्त्री-पुरुषादिको बाह्य रूपमें देखना उचित नहीं। जब तक हमको प्रकृतिजात स्त्री और पुरुषका अभिमान रहता है, तब तक श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन नहीं होते, उनकी

सेवाके लिये यथार्थ आर्तभावका भी उदय नहीं होता। जिनका चित्त सर्वदा श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानमें आविष्ट रहता है, वे सर्वत्र सर्वदा कृष्णसेवाके उपकरणोंको ही देखते हैं।



## तिरानबेवाँ परिच्छेद दिव्योन्माद

श्रीगौरसुन्दरका विप्रलम्भ (श्रीकृष्ण-विरह) क्रमशः बढ़ने लगा। रातमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दके समीप विलाप करते-करते न जाने कितने प्रकारसे श्रीकृष्ण-सुखानुसन्धानके लिये अपनी व्याकुलता प्रकट करते थे। एक दिन रात्रिके समय श्रीमन्महाप्रभु अपने शयन-कक्षके तीनों द्वार बन्द करके शयन कर रहे थे। गभीर रात्रिमें प्रभुकी कोई भी आवाज न पाकर श्रीगोविन्द और श्रीस्वरूपको सन्देह हुआ। किसी प्रकार द्वार खोला तो उन्हें दिखायी दिया कि घरके सारे द्वार बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु घरमें नहीं हैं। श्रीस्वरूपादि भक्तोंने अनुसन्धान करते-करते श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके सिंहद्वारके उत्तर अचेतन अवस्थामें देखा। भक्तगण जब कृष्णनाम उच्चारण करने लगे तो श्रीमहाप्रभुको चेत हुआ। भक्तवृन्द प्रभुको घर ले गये।

एक दिन श्रीमहाप्रभु समुद्रकी ओर जा रहे थे, अकस्मात् 'चटक-पर्वत'\* देखकर श्रीमहाप्रभुने उसको गोवर्द्धन समझा। श्रीमहाप्रभु

\* श्रीगदाधर पंडित गोस्वामीप्रभुके श्रीटोटा-गोपीनाथके श्रीमन्दिरके सामने जो बालूके पर्वतके समान ऊँचा स्तूप है, वह 'चटक-पर्वत'के नामसे प्रसिद्ध है। इसी स्थानमें श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वती गोस्वामिपादने 'श्रीपुरुषोत्तम मठ'की स्थापना की है।

गोवर्द्धनके सम्बन्धका श्रीमद्भागवतका एक श्लोक पढ़ते-पढ़ते वायुवेगसे पर्वतकी ओर दौड़ पड़े। उनके शरीरमें अद्भुत सात्विक विकार समूह प्रकट हो आये, वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे श्रीराधाकी दासीके अभिमानमें अपनी भावदशाओंका वर्णन करने लगे।

इसी प्रकार श्रीमहाप्रभु रात-दिन कृष्ण-विरहमें प्रेमावेशमें आविष्ट रहते थे। उनकी कभी अन्तर्दशा, कभी अर्धवाह्यदशा और कभी बाह्य-स्फूर्ति हो जाती थी। केवल स्वभाव और अभ्यासवश वे स्नान, दर्शन, भोजनादि करते थे। वे महाभावमें श्रीश्रीस्वरूप-रामानन्दका गला पकड़कर श्रीकृष्णके लिये विलाप करते थे। अपनेको 'गोपीकी दासी' अभिमान करके और पुष्पोद्यानोको श्रीवृन्दावन रूपमें देखकर उनमें प्रवेश करते, तथा तरु-लता-गुल्म और मृगोंके समूहसे श्रीकृष्णका पता पूछते।

श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण-विरहमें विह्वल होकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शन करते समय श्रीजगन्नाथजीको श्रीश्यामसुन्दर मुरली-मनोहर-रूपमें देखते थे और कभी महाभावके आवेशमें मन्दिरके द्वार-रक्षकका हाथ पकड़कर कहते,—“मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्णको दिखला दो।”

एक दिन पण्डोने श्रीमहाप्रभुको श्रीजगन्नाथका बाल्य-भोग महाप्रसाद ग्रहण करानेकी चेष्टा की। श्रीमहाप्रभुने उसमेसे जरा-सा स्वीकार किया, तत्काल ही उनका सर्वांग पुलकित हो उठा और नयनोंसे अश्रुधारा बह चली। इस प्रकार प्रसादमें श्रीकृष्णके अधरामृतका संचार हुआ है, इसी स्मृतिसे श्रीमहाप्रभु प्रेमावेशमें श्रीकृष्णके अधरोका बहुत तरहसे गुणगान करने लगे। श्रीकृष्णके अधरामृत-पानके लिये श्रीराधा और श्रीगोपिकाओंकी जो सुतीव्र उत्कण्ठा है वह श्रीमहाप्रभुमें प्रकट हो उठी।



## चौरानबेवाँ परिच्छेद

### श्रीकालिदास और श्रीझड़ूठाकुर

श्रीकालिदास-नामक श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादके एक दूर-सम्पर्कमें चाचा थे। वैष्णवोंका उच्छिष्ट भोजन करके वैष्णवोंकी कृपा प्राप्त करना ही उनका आजीवन साधन और साध्य था। श्रीमहाप्रभुके दर्शनके लिये गौडदेशसे जितने वैष्णव पुरीमें आते थे, श्रीकालिदास उन सभीका उच्छिष्ट भोजन करते। वैष्णव देखते ही वे उनके पास उत्तम-उत्तम भोजनकी सामग्री 'भेट' ले जाते थे और उनके भोजनके बाद बचा हुआ माँग लेते थे। "वैष्णवमें किसी प्रकारकी जाति-बुद्धि नहीं रखनी चाहिये।"—इसका उज्ज्वल आदर्श श्रीकालिदास ने अपने जीवनमें आचरणके द्वारा दिखला दिया।

श्रीमन्महाप्रभुके भवत श्रीझड़ूठाकुर भुईमाली-कुलमें आविर्भूत हुए थे। श्रीकालिदास एक दिन कुछ मीठे आम 'भेट' लेकर झड़ूठाकुरके पास गए और झड़ूठाकुर तथा उनकी सहधर्मिणीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम किया। श्रीझड़ूठाकुरने श्रीकालिदासकी अभ्यर्थना करके किसी ब्राह्मणके घरमें उनके आतिथ्यकी व्यवस्था करनेकी इच्छा प्रकट की। श्रीकालिदासने समझा कि श्रीझड़ूठाकुर दैन्य दिखाकर उनको ठगनेकी चेष्टा कर रहे हैं। श्रीकालिदासने श्रीझड़ूठाकुरकी चरणधूलिके लिये प्रार्थना की और उनका चरण अपने सिरपर धारण करनेकी इच्छा प्रकट की।

श्रीकालिदास जब झड़ूठाकुरके घरसे जाने लगे, तब झड़ूठाकुर कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे गए। झड़ूठाकुर जब घरकी ओर लौट गये तब कालिदासने मार्गमें जहाँ झड़ूठाकुरके पदचिह्न पड़े थे, वहाँकी धूल लेकर अपने सर्वांगमें लगा लिया तथा झड़ूठाकुर इसको देख न सके, इस प्रकारसे वे एक जगह छिप गए।

इधर झड़ूठाकुर मन-ही-मन भगवान्‌को आम निवेदन करके प्रसाद ग्रहण करने लगे । तत्पश्चात् उनकी सहधर्मिणीने झड़ूठाकुरके भुक्तावशेषको ग्रहण करके आमके छिलके और चूसी हुई गुठलियोंको बाहर घूरेपर फेक दिया ।

श्रीकालिदास अब तक छिपे हुए थे , उन्होंने उस उच्छिष्टके गड्ढेमे से आमके छिलके और गुठलियोंको इकट्ठा कर लिया और उन्हें चूसते-चूसते वे प्रेममे विह्वल हो गए ।

श्रीमहाप्रभु जब मन्दिरमे श्रीजगन्नाथके दर्शनके लिये जाते थे, तब सिंहद्वारके समीपकी सीढीके नीचे एक गड्ढेमे पैर धोकर मन्दिरमे प्रवेश करते थे । उन्होंने श्रीगोविन्दको विशेष रूपसे कह दिया था कि जिसमे कोई उनके उस पैर धोये हुए जलको किसी प्रकार भी ग्रहण न करने पाये । दो एक अन्तरंग भक्तोके सिवा कोई भी उस जलको ग्रहण नहीं कर सकता था । एक दिन श्रीमहाप्रभु पैर धो रहे थे, इसी समय श्रीकालिदासने तीन अजलि चरणोदक पान कर लिया । वे श्रीगोविन्दसे श्रीमहाप्रभुका उच्छिष्ट माँगकर उसका भोजन करते ।

श्रीकृष्णके उच्छिष्टका नाम 'महाप्रसाद' है , और कोई भी महा-भागवत जब महाप्रसादका आस्वादन करके जो शेष छोड़ देते हैं, तब उसे 'महामहाप्रसाद' कहते हैं । महाभागवतकी चरणधूलि, महाभागवतका चरणोदक और महाभागवतका भुक्तावशेष—ये तीन ही साधनके बल हैं । इन तीन वस्तुओंकी सेवासे श्रीकृष्णके चरणोमे प्रेमकी प्राप्ति होती है—इस सिद्धान्तमे दृढनिष्ठ श्रीकालिदासने इन तीन अलौकिक वस्तुओंकी सेवाकी ही साध्य और साधन रूपमे निश्चय किया था ।



## पंचानवेवाँ परिच्छेद श्रीपुरीदासकी कवित्व-स्फूर्ति

एक वर्ष श्रीशिवानन्द सेन अपनी पत्नी और शिशु-पुत्र श्रीपुरीदास को साथ लेकर नीलाचलमे श्रीमन्महाप्रभुके चरणोमे उपस्थित हुए। श्रीशिवानन्दने जब पुरीदासको श्रीमहाप्रभुके पादपद्मोमे प्रणत कराया, तब श्रीमहाप्रभु पुन-पुन बालकको 'कृष्ण कहो, कृष्ण कहो', बोलकर श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण करनेके लिये प्रेरणा देने लगे। परन्तु बालकने किसी प्रकार भी कृष्ण-नाम उच्चारण नहीं किया। वह पूर्णरूपसे मौन लिये रहा। श्रीशिवानन्दने भी बालकसे कृष्ण-नाम बुलवानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु पिताकी भी सारी चेष्टा व्यर्थ हुई। तब श्रीमहाप्रभु अत्यन्त विस्मित होकर बोले,—“मैंने स्थावरतकसे कृष्ण-नाम बुलवा दिया, परन्तु जगत्मे एकमात्र इस बालकसे ही श्रीकृष्ण-नाम उच्चारण नहीं करा सका।” यह सुनकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिप्रभु बोले,—“मुझे अनुमान हो रहा है कि आपने श्रीपुरीदास को जो श्रीकृष्णनाम-मन्त्र उपदेश किया है उसे वह दूसरे लोगोंके सामने प्रकट करना नहीं चाहता। इसी कारण वह मन्त्रका उच्चारण न करके मन-ही-मन उसका जप करता है।”

फिर एक दिन श्रीमहाप्रभुने श्रीपुरीदासको कुछ पढ़नेके लिये कहा तो बालकने इस श्लोककी रचना करके उसे पढ़ दिया,—

श्रवसोः कुबलयमक्ष्णो रंजनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।

वृंदावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥

—श्रीकविकर्णपूरकृत 'आर्याशतक'का प्रथम श्लोक

[ जो श्रवण-युगलके लिये नीलकमल, नेत्रोके लिये अजय, वक्ष स्थलके लिये इन्द्रनीलमणिमय हार—श्रीवृन्दावनकी रमणियोंके लिये अखिल भूषणरूप है ऐसे श्रीहरिका जय जयकार हो रहा है। ]

सात वर्षका शिशु जिसने अव्ययन नहीं किया—वह किस प्रकार ऐसे श्लोककी रचना कर सकता है, इसके कारणका निर्णय न कर पानेसे सभी लोग विस्मित हो उठे और सबने विचार किया कि एकमात्र श्रीमहाप्रभुकी कृपासे ही यह सम्भव हुआ है। यही पुरीदास आगे चलकर श्रीकविकर्णपुर गोस्वामीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका रचा हुआ 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक'—श्रीगौर-लीलाका एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। ये १४४८ शकाब्दमें प्रकट हुए और १४९८ शकाब्द पर्यन्त इन्होंने ग्रन्थ-रचना की।



## छानवेवाँ परिच्छेद

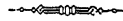
### अप्राकृत भावावेशमें कूर्माकृति

श्रीमन्महाप्रभु दिनरात श्रीकृष्णके विरहमें उन्मत्त होकर नाना प्रकारसे उन्मादकी चेष्टा और प्रलाप करने लगे। श्रीकृष्णके सन्तोष-साधनके लिये जब हृदयमें व्याकुलताकी पराकाष्ठा उदित हो जाती है, तब इसी प्रकारके अप्राकृत भावोका उदय होता है।

इस समय श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरायरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुके साथ-साथ निरन्तर रहते थे। वे लोग प्रभुके भावोपयोगी नाना प्रकार के सगीत प्रभुके प्रिय ग्रन्थोंसे लेकर पढ़ते और कीर्तन करते थे। बीच-बीचमें श्रीमहाप्रभु भी किसी-किसी श्लोकको पढ़कर विलाप करते-करते श्लोकके तात्पर्यकी व्याख्या करते थे। एक दिन इसी प्रकार प्रायः आधी रात बीत गयी। श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरामानन्द श्रीमन्महाप्रभुको शयन कराके अपने-अपने वासस्थानको चले गये; गम्भीराके द्वारपर श्रीगोविन्द सो रहे। अर्धरात्रिके बाद श्रीमहाप्रभु

उच्चस्वरसे सकीर्तन करने लगे। तीनों द्वारोंके किवाड बन्द थे, परन्तु कैसा आश्चर्य है कि द्वारके बन्द रहनेपर भी श्रीमहाप्रभु भावावेशमे तीनों दीवालोकों लॉचकर बाहर निकल गये। सिंहद्वारके दक्षिणमे जहाँ 'तैलगी \* गाये रहती है, वहाँ जाकर श्रीमहाप्रभु मूर्छित हो पड़े रहे। इधर श्रीगोविन्दने गम्भीरामे श्रीमहाप्रभुकी कोई आवाज न पाकर श्रीस्वरूप-गोस्वामिपादको बुलवाया। श्रीस्वरूप-दामोदर दीपक जलाकर भक्तोंके साथ प्रभुको खोजने लगे। अनेकों स्थानोंपर खोजते-खोजते जब सिंहद्वारपर पहुँचे तो देखा कि, गायोंके बीचमे श्रीमहाप्रभु कूर्माकृतिमे पड़े हुए हैं। श्रीमहाप्रभुके मुँहमे फेन, श्रीअगमे पुलक, नयनोंमे अश्रुधारा, बाहर जडत्व और भीतर आनन्द है। चारों ओर गायें प्रभुके श्रीअगोंको सूँघ रही हैं, दूर हटानेपर भी वे प्रभुके अग-स्पर्शका त्याग नहीं कर रही हैं।

भक्तगण श्रीमहाप्रभुको घर ले आये, और कानमें बहुत देर तक उच्चस्वरसे नाम-सकीर्तन करनेके बाद श्रीमहाप्रभुको अर्द्ध-बाह्यदशा प्राप्त हुई। तब प्रभुके हाथ-पैर बाहर आये। श्रीमहाप्रभु स्वरूपके समीप फिर विरहका विलाप करने लगे।




---

\* द्रविडके पूर्वोत्तर अवस्थित देशको 'तैलग देश' कहते हैं। उस देशकी गायको 'तैलगी गाय' कहते हैं। -



## सत्तानबेवाँ परिच्छेद

### समुद्र-वक्षमें

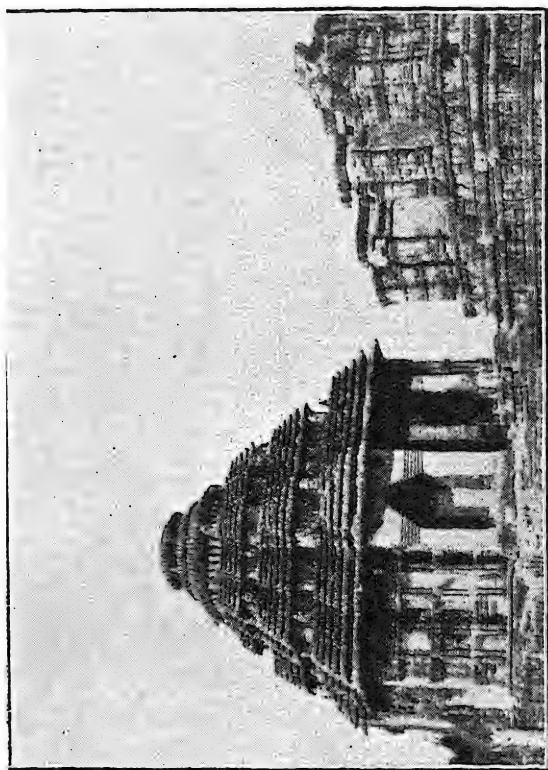
शरत्कालकी किसी ज्योत्स्नामयी रजनीमें श्रीमहाप्रभु अपने भक्तोंके साथ कृष्ण-विरहमें विभावित होकर श्रीमद्भागवतके श्लोक श्रवण-कीर्तन करते हुए विभिन्न उद्यानोंमें भ्रमण कर रहे थे। भ्रमण करते-करते 'आई-डोटा' नामक स्थानमें श्रीमहाप्रभुको अकस्मात् समुद्र दिखलायी दिया। नील सिन्धुकी उछलती हुई तरंगोंपर चन्द्रज्योत्स्नाके पङ्कजसे वह झिलमिला रहा था। यह देखकर महाप्रभुको यमुनाकी स्मृति उद्दीप्त हो उठी। श्रीमहाप्रभु यमुना समझकर अत्यन्त वेगसे समुद्रकी ओर दौड़े और किसीके लक्ष्यमें न आकर समुद्रमें कूद पड़े। समुद्रमें गिरते ही श्रीमहाप्रभु मूर्च्छित हो गये। समुद्रकी तरंगें कभी श्रीमहाप्रभुको डुबा देती, कभी बहाती, कभी तरंगके साथ-साथ नचाती और कभी बहाकर तीरकी ओर लाने लगी। इस प्रकार मूर्च्छाविवशतामें तरंगके द्वारा परिचालित होकर श्रीमहाप्रभु 'कोणार्क'की\* ओर चले। श्रीमहाप्रभु गोपीकी दासीका अभिमान करके यमुनामें कृष्णकी जल-केलि-उत्सव देखनेके भावमें मग्न थे।

इधर श्रीस्वरूपदामोदर प्रभृति भक्तगण श्रीमहाप्रभुको न देख पाकर मन-ही-मन नाना प्रकारके वितर्क करने लगे। उन्होंने अनेकों स्थानोंमें अन्वेषण किया, परन्तु कहीं भी श्रीमहाप्रभुका पता न लगा। इसी प्रकार अन्वेषण करते-करते जब रातका प्रायः अवसान हो गया तो सभीने निश्चय किया कि श्रीमहाप्रभु अन्तर्हित हो गये हैं। प्रभुके

---

\* पुरीसे १६ मील दूर उत्तरकी ओर समुद्रतटपर काले पत्थरोंका सूर्य मन्दिर अवस्थित है। इस स्थानको इसीलिये 'कोणार्क' या 'अर्कतीर्थ' कहते हैं। 'अर्क'-शब्दका अर्थ है—सूर्य। बोलचालकी भाषामें इस स्थानको 'कणारक' भी कहते हैं।

विच्छेदसे किसीके भी शरीरमें प्राण नहीं-से रह गये। बन्धु-हृदयका यह स्वभाव ही होता है कि वह अनिष्टकी आशंका करता है। तथापि कोई भी श्रीमहाप्रभुके पुनः दर्शनकी आशाका परित्याग नहीं कर सके



कोणार्क या कणारकमें भग्न सूर्य-मन्दिर

और फिर खोज करने लगे। इसी समय श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने देखा कि एक मछुआ अपने कन्धेपर मछली पकड़नेका जाल रक्खे अद्भुत भावावेशमें 'हरि हरि' बोलता हुआ आ रहा है। मछुआके

ऐसे भावावेशको देखकर श्रीस्वरूपगोस्वामीने उसके इस प्रकारके भावावेशका कारण पूछा। मछुएने कहा कि, उसके जालमें एक मृत मनुष्य आया है। उसने एक बड़ी मछली समझकर उस मृत व्यक्तिको यत्नपूर्वक निकाला था। जालसे उसको बाहर करनेके समय जब उसका शरीर-स्पर्श हुआ है, तब उसके हृदयमें एक भूत प्रवेश कर गया है और भयसे उसके शरीरमें पुलक, कम्प, अश्रु और गद्गद् वाणीका प्रकाश हो गया है। उसके दर्शनमात्रसे ही मनुष्यके शरीरमें मानों सारे भूत-व्यापार प्रविष्ट हो जाते हैं। यह भूत मृत मनुष्यका रूप धारण करके कभी 'गों-गो' शब्द करता है और कभी अचेतन होकर पड़ा रहता है।

मछुएने और भी कहा,—“यदि मैं मर गया तो मेरे स्त्री-पुत्र कैसे जियेगे? इसी डरसे मैं भूत छुड़वानेके लिये ओझाके पास जा रहा हूँ। मैं प्रतिदिन रातको अकेले निर्जनमें मछली पकड़ता घूमा करता हूँ। श्रीनृसिंह भगवान्‌के नामस्मरणसे भूत-प्रेत मेरा कुछ भी नहीं कर पाते। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि 'नृसिंह'का नाम लेते ही यह भूत मानो और भी दूनी शक्तिमें गर्दन दबा बैठता है। तुम लोग वहाँ मत जाना, वहाँ जाओगे तो तुमको भी भूत पकड़ लेगा।”

मछुएके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने यथार्थ विषयको समझ लिया और मछुएको आश्वासन देकर कहा,—“मैं एक बड़ा ओझा हूँ, तीन चपतमें ही तुम्हारा भूत छुड़ा देता हूँ। तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम जिनको भूत समझते हो, वे साक्षात् भगवान् हैं। प्रेमाविष्ट होकर वे समुद्रके जलमें कूद गये थे, तुमने अपने जालमें उनको निकाला है। उनके स्पर्शमात्रसे तुममें श्रीकृष्ण-प्रेमका उदय हो गया है। तुमने उनको कहाँ निकालकर रक्खा है, मुझे तुरन्त दिखाओ।”

मछुएने भक्तगणको ले जाकर श्रीमहाप्रभुके दर्शन कराये। श्रीस्वरूप आदि भक्तोंने श्रीमन्महाप्रभुको समुद्र-बालुकामें मूर्छितावस्थामें शिथिल

शरीर देखकर, गीले कौपीनको हटाया और सूखा वस्त्र पहनाया तथा सब मिलकर उच्चस्वरसे सकीर्तन करने और श्रीमहाप्रभुके कानमें कृष्ण-नाम बोलने लगे ।-

कुछ क्षणोंके बाद श्रीमहाप्रभु अर्द्धवाह्यदशामे आये और भावावेशमें बोलने लगे,—“मैं श्रीधमुनाके दर्शन करके श्रीवृन्दावन गया था । मैंने देखा—वहाँ श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्रीगोपीगणके साथ महा-जलक्रीडा कर रहे हैं । मैं तीरपर खड़ा सखियोंके साथ श्रीकृष्णकी उस विचित्र लीलाको देख रहा था ।”

जब श्रीमन्महाप्रभु वाह्यदशामे आ गये, तब उन्होंने श्रीस्वरूप गोस्वामिपादसे पूछा,—“तुम मुझे लेकर इस स्थानपर क्यों खड़े हो ?” श्रीस्वरूपदामोदरने प्रभुसे आद्योपांत सारी घटना सुनायी । श्रीमहाप्रभुने भी अपनी अवस्थाका अन्तरंग भक्तोंके प्रति वर्णन किया ।



## अट्टानबेवाँ परिच्छेद

### लीला-संगोपनका संकेत

भगवान् श्रीगौरसुन्दर प्रतिवर्ष वात्सल्यरस-मूर्ति श्रीशचीमाताको आश्विन देनेके लिये श्रीजगदानन्द पंडितको श्रीमायापुर भेजा करते थे । उनके साथ श्रीपरमानन्द पुरीपादके अनुरोधसे श्रीमन्महाप्रभु श्रीशचीदेवीके लिये श्रीनवद्वीप वस्त्र और महाप्रसाद भेजते थे । वे पार्षद भक्तगणके लिये भी महाप्रसाद भेजते थे ।

एक बार श्रीजगदानन्द पंडित जब नवद्वीप और शान्तिपुर होते हुए पुरी में आये, तब श्रीअद्वैतप्रभुने श्रीजगदानन्दके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुके पास पहलीके बहाने इस प्रकार की कुछ बातें कहला भेजी,—

बाउलके कहिह,—लोक हइल बाउल\* ।

बाउलके कहिह,—हाटे ना बिकाय चाउल ॥

बाउलके कहिह,—काये नाहिक आउल† ।

बाउलके कहिह,—इहा कहियाछे बाउल ॥

—चै० च० अ० १६।२०-२१

अर्थात् प्रेमोन्मत्त (श्रीकृष्ण-विरहिणी गोपीके भावमें विभावित श्रीमहाप्रभु) से कहना कि लोग प्रेममें उन्मत्त हो गये हैं। प्रेमकी हाटमें प्रेमरूपी चावलके विक्रयके लिये स्थान अब नहीं है। अर्थात् दूसरे बहुतेरे लोग इस गोपी-प्रेमके तात्पर्यको उपलब्ध नहीं कर सकेंगे। उनसे कहना कि, आउल अर्थात् प्रेमातुर (अद्वैताचार्य) अब सासारिक कार्यमें नहीं है। प्रेम-पागलको कहना कि, प्रेम-पागल या प्रेमोन्मत्त श्रीअद्वैतने इस प्रकार कहा है। अर्थात् श्रीमहाप्रभुके आविर्भावका जो तात्पर्य था, वह पूरा हो गया है, अब प्रभुकी जो इच्छा हो, वही करे।

इस पहलीको सुनकर श्रीमहाप्रभु कुछ हँसे, 'आचार्यकी जो आज्ञा'— कहकर चुप हो गये। जब श्रीस्वरूपगोस्वामिपादने इस पहलीका अर्थ पूछा तो श्रीमहाप्रभुने संकेत मात्र करके कहा,—

\* \* आचार्य हय पूजक प्रबल ।

आगम-शास्त्रेर विधि-विधाने कुशल ॥

उपासना लागि' देवेर करेन आवाहन ।

पूजा लागि' कत काल करेन निरोधन ॥

पूजा-निर्वाहण हैले पाछे करेन विसर्जन ।

—चै० च० अ० १६।२५-२

\* 'बाउल'—बातुल (पागल) शब्दका अपभ्रंश है ।

† 'आउल'—'आकुल' या 'आतुर' शब्दका अपभ्रंश है ।

[ आचार्य प्रबल पूजक, है, वे आगमशास्त्रके विधि-विधानमें कुशल हैं। उपासनाके लिये देवताका आवाहन करते हैं, पूजाके लिये उनको कुछ समयतक रखते हैं, जब पूजा समाप्त हो जाती है तब उनका विसर्जन कर देते हैं। ]

श्रीमन्महाप्रभुने इशारेसे जताया कि, श्रीअद्वैताचार्य प्रभुने ही श्री-मायापुरके गगातीर पर गगाजल और तुलसीके द्वारा पूजा करके श्री-महाप्रभुको गोलोकसे आवाहन कर भूलोकमें अवतीर्ण किया था। पूजाका निर्वाह करके जिस प्रकार पुजारी देवताका विसर्जन करता है, जान पड़ता है कि श्रीअद्वैताचार्य अब उसी प्रकारकी इच्छा प्रकट कर रहे हैं।

आचार्यकी इस प्रहेलिकाको पढ़नेके बादसे श्रीमन्महाप्रभुकी कृष्ण-विरह-दशा और भी बढ़ने लगी। विरहोन्मादमें श्रीमहाप्रभु रातमें गम्भीराकी दीवालसे मुँह रगड़ा करते थे। श्रीस्वरूप तथा श्रीरामराय समयोचित गानके द्वारा श्रीमहाप्रभुको सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते थे, परन्तु प्रभुका कृष्ण-विरह-सिन्धु नाना प्रकारसे उद्वेलित हो उठता था।

एक दिन वैशाखके महीनेमें पूर्णिमा-तिथिकी रातमें श्रीमहाप्रभुने 'श्रीजगन्नाथवल्लभ'\* उद्यानमें महाभावावेशमें दस प्रकारकी चित्र-जल्पोक्ति† प्रकट की। दैन्य-उद्वेग और उत्कण्ठामें श्रीमहाप्रभु कभी-कभी श्रीस्वरूप-रामानन्दके साथ अपने स्वरचित 'शिक्षाष्टकके'‡ श्लोकोका आस्वादन करते-करते रात बिताते थे। अथवा कभी 'श्रीगीतगोविन्द' 'श्रीकृष्णकर्णामृत', 'श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक' (श्रीरामानन्द राय कृत), अथवा कभी श्रीचण्डीदास-विद्यापतिकी पदावली, और कभी श्रीमद्-

---

\* गुण्डिचावाडी और मन्दिरके प्राय बीचो-बीच "जगन्नाथ वल्लभ" नामक एक उद्यान है।

† ग्रन्थके परिशिष्टमें श्रीचैतन्यदेवरचित 'शिक्षाष्टक' देखना चाहिये।

‡ तरह-तरहके भावत्रैचिध्ययुक्तचमत्कारजनक वाक्य-विशेष। चित्रजल्प दस प्रकारके हैं,—प्रजल्प, परिजल्प, विजल्प, उज्जल्प, सजल्प, अवजल्प, अभिजल्प, आजल्प, प्रतिजल्प, सुजल्प। श्रीरूपगोस्वामि-पादकृत श्रीउज्ज्वलनीलमणि-ग्रन्थमें विस्तृत विवरण देख सकते हैं।

भागवतके श्लोकोका आस्वादन करते-करते श्रीमहाप्रभुका कृष्ण-विरह रूपी महाभाव-सागर नवनवायमानरूपसे उच्छलित हो उठता था ।

ये समस्त अप्राकृत महाभावके लक्षण एकमात्र श्रीकृष्णकी सर्व-श्रेष्ठा सेविका और प्रियतमा श्रीराधारानीमे ही पूर्णतया प्रकट होते हैं । जो लोग जगत्के अभिनिवेश अथवा शुष्क वैराग्यके सामान्य सबलको लेकर व्यवसाय करते हैं, वे इन ऊँचे भावोकी धारणा ही नहीं कर सकेंगे । इतना ही नहीं, जिनका चित्त वैकुण्ठके ऐश्वर्यमे आकृष्ट है, वे भी श्रीराधाके प्रेमोन्मादकी बात किसी तरह भी नहीं समझ सकते । श्रीराधाका श्रीकृष्णप्रेम सेवा-राज्यकी चरम सीमा है । उसी सेवाकी पराकाष्ठाको—प्रेमकी पराकाष्ठाको इस प्रपञ्चमे मूर्तिमान् किया है श्रीचैतन्यदेवने ।

पूर्णतमभावमे सर्वाङ्गद्वारा सब समय श्रीकृष्णके सुखका अनुसन्धान (आवेशके साथ ध्यान) करते हुए भी 'कुछ भी सेवा नहीं कर पा रहा हूँ, किस प्रकारसे कृष्णकी इन्द्रियतृप्ति करूँगा ?' इसके लिये जो निरन्तर प्रबलोत्कण्ठा होती है, उसीको 'विप्रलम्भ' या 'कृष्ण-विरह' कहते हैं । श्रीमन्महाप्रभुने इसी अति उच्चतम भजनके विषयको जगत्मे वितरित किया है । इसका वितरण पहले किसी समय किसी स्थानमे नहीं हुआ है ।

इस प्रकार श्रीमहाप्रभुने प्रथम चौबीस वर्ष गृहस्थलीलाका अभिनय, द्वितीय चौबीस वर्षमे पहले छ वर्ष सन्यासी-शिरोमणि आचार्यकी लीलामे समस्त भारतमे शुद्ध-भक्तिका प्रचार, शेष अठारह वर्षोंमे छ वर्ष भक्तोके सग वास और पुरीमे आचार्य-लीलाका अभिनय तथा सबके अन्तके बारह वर्ष अन्तरंग भक्तोके साथ निरन्तर रसास्वादन-लीला प्रकट करके कुल अड़तालीस वर्ष प्रकट-लीला की थी । इसके बाद भक्तगणको अधिकतर विरहमे और श्रीकृष्णभजनमे उत्तम करनेके लिये अपनी प्रकट-लीलाको सगोपन किया था । इसी कारण श्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद विरह-व्यथित होकर गाया है,—

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालीकलनया

मुहुर्वृन्दारण्य-स्मरणजनित-प्रेमविवशः ।

क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचलरसनो भक्तिरसिकः

स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥

—‘स्तवमाला’, श्रीचैतन्यदेवका प्रथमाष्टक

[समुद्र-तीरके उपवन समूहको देखकर बारबार वृन्दावन-स्मृतिमे जो प्रेमविवश हो जाते थे अथवा कभी निरन्तर श्रीकृष्णनाम कीर्तनमे जिनकी रसना चचल हो उठती थी, वही भक्ति-रस-रसिक श्रीचैतन्यदेव क्या पुन हमारे नेत्रोके गोचरीभूत होंगे ?]



## निन्यानबेवाँ परिच्छेद

### अप्रकट-लीला

बहुतेरे श्रीचैतन्यदेवकी अप्रकट-लीलाको साधारण मनुष्यके देह-त्यागकी सीमामे लाकर देखना चाहते हैं। साधारण योगियोंके शरीर भी अलक्षितभावसे अदृश्य हो जाते हैं, इसके अनेको प्रत्यक्ष प्रमाण पाये जाते हैं। भक्तवर श्रीध्रुवके सशरीर नित्यधाममे जानेकी बात\* श्रीमद्भागवतमे देखी जाती है। और श्रीचैतन्यदेव जो योगेश्वरोके परमेश्वर हैं, भक्तियोगियोंके नित्य ध्यानकी वस्तु हैं, उनका सच्चिदानन्द-शरीर किस प्रकार अन्तर्हित हुआ था, यह तनिक सेवोन्मुख-प्रकृतिस्थ होकर विचार करनेसे ही उनकी कृपासे समझमे आ सकता है। श्रीमहाप्रभुने प्रकट-लीलाके समय भी अनेको बार अनेको स्थानोसे अन्तर्धान-लीला प्रदर्शन की थी, यह अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌के लिये कुछ भी

\* श्रीमद्भागवत ४।१२।३० श्लोक देखिये ।



असंभव बात नहीं है। जिन्होंने सप्त-सकीर्तन-सम्प्रदायोके प्रत्येक सम्प्रदायमे एक ही समय नृत्य-कीर्तन-लीला प्रकट की थी, जिन्होंने श्रीश्रीवास पंडितके मृत पुत्रके मुखसे तत्त्वकी बात कहलायी थी, जिन्होंने विसूचिका-रोगसे मृतप्राय अमोघको स्पर्शमात्रसे रोगमुक्त और स्वस्थ करके उसी क्षण उसके द्वारा श्रीकृष्ण-नाम लेते हुए नृत्य कराया था, जो प्रबल तरंगोंके द्वारा उछलते हुए समुद्रमे महाभावकी मूर्च्छामे सारी रात्रि रहे थे, जिन कृपालु भगवान्ने गलित-कुष्ठ रोगी वासुदेवको आलिंगन करके तुरन्त सुपुरुष और कृष्णप्रेमी बना दिया था, उन अचिन्त्य अतर्क्य अनन्त ऐश्वर्य प्रकटकारी श्रीभगवान्के लिये सशरीर अन्तर्हित होना अथवा एक ही समयमे बहुतसे स्थानोमे प्रकट रहना कुछ भी अस्वाभाविक और असंभव बात नहीं है। श्रीरामचन्द्रादि भगवदवतारोंके भी सशरीर और सपार्षद वैकुण्ठ-विजयकी कथा भारतवर्षमे शास्त्र-प्रसिद्ध व्यापार है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके सशरीर अन्तर्धान-लीलामे प्रवेशकी कथा श्रीमद्भागवतमे मिलती है।

लोकाभिरामां स्वतनु धारणाध्यान-मङ्गलम् ।

योगधारणयाग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥

—भा० ११।३१।६

अर्थात् श्रीकृष्ण ध्यान-धारणाके विषयस्वरूप लोकाभिराम श्री-विग्रहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध किये बिना ही अपने धाममे प्रविष्ट हुए ।

स्वेच्छामृत्यु योगीगण अपनी देहको आग्नेयी योगधारणाके द्वारा दग्ध करके लोकान्तरमे प्रवेश करते हैं। परन्तु श्रीभगवान्का अन्तर्धान उस प्रकारका नहीं है, श्रीभगवान् अपने नित्य सच्चिदानन्द-शरीरको बिना दग्ध किये हुए उसी शरीरसे वैकुण्ठमे प्रवेश करते हैं। इसका कारण यही है कि, उनके श्रीअंगमे समस्त लोक अवस्थित रहते हैं, अतएव सारे जगत्के आश्रयस्वरूप उनके शरीरके दग्ध होनेपर जगत्के दग्ध होनेका प्रसंग उपस्थित हो जाता है।

अजातो जातवद् विष्णुरमृतो मृतवत्तथा ।  
मायया दर्शयेन्नित्यं अज्ञानां मोहनाय च ॥

—ब्रह्मपुराण

[ भगवान् विष्णु अज्ञानी व्यक्तियोंको मोहित करनेके लिये अजन्मा होते हुए भी मायाबलसे जन्म लेनेवाले जीवके समान और अमृत होते हुए भी मृत जीवकी भाँति अपनेको दिखलाते हैं । ]



## सौवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके रचित ग्रन्थ

श्रीचैतन्यदेवने श्रीसनातन और श्रीरूपके द्वारा भक्तिशास्त्रकी रचना करवायी । जो जो भक्ति-ग्रन्थ लिखवाने थे, उनके सूत्रोको काशीमें अवस्थानके समय उन्होंने श्रीसनातनको बतला दिया था । श्रीसनातनके द्वारा रचित 'श्रीवृहद्भागवतामृत', 'श्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी', 'श्रीकृष्णलीलास्तव', 'श्रीहरिभक्तिविलास' महाप्रभुके ही सिद्धान्तों से पूर्ण ग्रन्थराज है । श्रीरूपके द्वारा रचित 'श्रीसंक्षेप-भागवतामृत', 'श्रीभक्तिसामृतसिन्धु', 'श्रीउज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थ भी वैसे ही हैं । श्रीमहाप्रभुने प्रयागमें इन ग्रन्थोंके सूत्र श्रीरूपको बतलाये थे । श्रीरूपके 'श्रीललितमाधव', 'श्रीविदग्धमाधव' प्रभृति नाटकोंको और श्रीसनातनकी कतिपय रचनाओंको श्रीमहाप्रभुने स्वयं देखकर उनका पूर्णतया अनुमोदन किया था । श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपाद, श्रीरघुनाथ दासगोस्वामिपाद और आगे चलकर श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने जिन ग्रन्थोंकी रचना

की थी, वे भी श्रीमहाप्रभुके बतलाये हुए सूत्रो और सिद्धान्तोका अवलम्बन करके ही रचे गये थे ।

‘कुमारहट्ट’ अथवा ‘हालीशहर’के निवासी श्रीशिवानन्द सेन प्रतिवर्ष बहुतसे गौडीय भक्तोको साथ लेकर श्रीनीलाचलमे श्रीचैतन्यदेवके श्रीचरणोमे पहुँचते थे । श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदास और कनिष्ठ पुत्र श्रीपरमानन्ददास (कविकर्णपूर) ने श्रीचैतन्यदेवके दर्शन और कृपा प्राप्त की थी, एव अपने नेत्रोसे श्रीगौरसुन्दरकी विभिन्न लीलाओको देखा था । कोई-कोई कहते हैं कि, ‘श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य’ श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र कविकर्णपूरके रचित बताये जानेपर भी\* वस्तुतः श्रीशिवानन्दके ज्येष्ठ पुत्र श्रीचैतन्यदासने ही उक्त ग्रन्थकी रचना की थी । इसमे भी श्रीचैतन्यदेवकी विस्तृत चरित-कथा प्राप्त होती है । श्रीशिवानन्दके कनिष्ठ पुत्र—जो श्रीपरमानन्ददास या श्रीपुरीदास अथवा ‘श्रीकविकर्णपूर’के नामसे प्रसिद्ध है, उनके ही मुहमे श्रीचैतन्यदेवने अपना पदागुष्ठ प्रदान किया था । इन्होंने ही ‘श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक’ और ‘श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका’मे श्रीचैतन्यदेव और उनके पार्षदोके चरित्रका वर्णन किया है । श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद श्रीगौरसुन्दरके प्रिय पार्षद थे, उनके श्रीमुखसे श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशयने श्रीचैतन्यदेवके जिन सब उपदेशोको श्रवण किया था, उन्हें ही सर्वसाधारणके लिये बगलामे ‘प्रार्थना’ और ‘प्रेमभक्तिचन्द्रिका’ नामक ग्रन्थमे लिपिबद्ध किया है ।

श्रीमुरारिगुप्त श्रीमन्महाप्रभुके नवद्वीप-लीलाके सगी थे और श्रीस्वरूप दामोदरने ‘पुरी’मे निरन्तर श्रीमहाप्रभुके साथ रहकर उनकी ग्रन्थलीलाको अपनी आँखोसे देखा था । उन दोनोने ही श्रीमन्महाप्रभुकी लीला, चरित्र, शिक्षा, भजनादर्श, तत्व और सिद्धान्तको जो लिपिबद्ध कर रक्खा था, वही क्रमशः ‘श्रीमुरारिगुप्तके करचा† और

\* श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्य २०।४६

† करचा—सूत्राकारमे लिखित घटनाएँ ।

‘श्रीस्वरूपदामोदरके करचा’ के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीस्वरूपदामोदरके करचाका अवलम्बन करके श्रीरघुनाथदास गोस्वामिपादने श्रीचैतन्य-देवके लीलात्मक कतिपय स्तव, तथा प्रभुके सिद्धान्तोसे पूर्ण ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीदासगोस्वामिपादके श्रीमुखसे सुनकर ही श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवके चरितकी अर्थात् ‘श्रीचैतन्य-चरितामृत’ ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीमन्महाप्रभुके अभिन्न आत्मा श्रीमन्नित्यानन्दके साक्षात् शिष्य तथा श्रीश्रीवास पंडितके दौहित्र (भतीजीके पुत्र) थे—श्रीवृन्दावनदास ठाकुर। उन्होने श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, श्रीश्रीवास पंडित और श्रीगौरभक्तगणक श्रीमुखसे श्रीमन्महाप्रभुकी लीलाकथा श्रवण कर “श्रीचैतन्यभागवत” नामक ग्रन्थ लिखा है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाका अवलम्बन कर श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने श्रीचैतन्यभागवतमे श्रीमन्महाप्रभुकी लीला और शिक्षा गुम्फित (विशेषरूपसे वर्णित) की है। श्रीमुरारिगुप्तके करचाको मूल रूपमें ग्रहण करके श्रीनरहरि सरकार ठाकुरक शिष्य श्रीलोचनदास ठाकुरने भी ‘श्रीचैतन्यमंगल’ नामक पाचाली ग्रन्थकी रचना की है।

श्रीचैतन्यदेवने स्वयं ‘शिक्षाष्टक’ नामसे प्रसिद्ध आठ सस्कृत श्लोकोकी रचना की है, उसमे उनकी शिक्षाका सार निहित है। इसके अतिरिक्त श्रीमहाप्रभुके रचे हुए और भी कई बिखरे श्लोक पाये जाते हैं। उनका श्रीरूपगोस्वामिपादने ‘श्रीपद्यावली’मे सकलन किया है। श्रीमहाप्रभुने दाक्षिणात्यकी पयस्विनी नदीके तीरस्थ ‘आदि-केशव’ मन्दिरसे ‘श्रीब्रह्मसहिता’ और ‘कृष्णवेण्वा’के तीरसे ‘श्रीकृष्णकर्णामृत’ नामक दो ग्रन्थोको लाकर उनसे क्रमशः अपने प्रचार्य तत्त्व-सिद्धान्त और रस-सिद्धान्तोके विचारोको जगत्मे प्रकट किया था।

श्रीगौरसुन्दरके प्रकट-कालीन पार्षदोमे और भी बहुतोने गौडीय (बग) भाषामे तथा सस्कृत भाषामे बहुतसी पदावली और सिद्धान्त ग्रन्थोकी रचना की है। श्रीशिवानन्द सेन, श्रीवासु घोष, श्रीमाधव घोष, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरामानन्द राय, श्रीनरहरि सरकार ठाकुर, श्रीमुरारि

गुप्त, श्रीरामानन्द बसु, श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुर, श्रीजगदानन्द पंडित, श्रीवशीवदन, श्रीमाधवी-देवी आदि श्रीगौर-पार्षदोने पदावलीकी रचना करके श्रीगौरहरिकी विभिन्न लीलाओंको गुम्फित किया है। श्रीरघुनाथ भागवताचार्यने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका पद्यानुवाद किया है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थका नाम है—“श्रीकृष्णप्रेम-तरंगिणी”। श्रीरूप-सनातनके मित्र श्रीराघवपंडित गोस्वामीने जो दाक्षिणात्यविप्र थे और गोवर्द्धन-पुछरीके निकट गुफामें\* श्रीयुगल-भजनमें रत थे ‘श्रीभक्ति-रत्नप्रकाश’की रचना की, तथा श्रीलोकनाथ गोस्वामिपाद और श्रीश्रीनाथ पंडितने ‘श्रीमद्भागवतकी टीका’, श्रीनरहरि सरकार ठाकुरने ‘श्रीकृष्णभजनामृत’, उत्कलनिवासी श्रीकानाई खूंटियाने ‘महाभाव-प्रकाश’, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपादने ‘श्रीचैतन्यचन्द्रामृत’ और ‘श्रीवृन्दावन-शतक’ इत्यादि ग्रन्थोंकी रचना की।



## एकसौ एकवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके प्रचार और सिद्धान्त

श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने ‘श्रीचैतन्य-शिक्षामृत’ ग्रंथमें लिखा है,—  
“श्रीमन्महाप्रभुने जिन चौबीस वर्ष गृहस्थ-लीलाका अभिनय किया था, उस समय श्रीश्रीवासके आँगनमें, गंगाके तीरपर, चतुष्पाठी (पाठशाला) में, रास्ते-रास्तेपर तथा गाँवके द्वार-द्वारपर आपामर सर्वसाधारणके निकट हरिनाम-माहात्म्य और हरिकीर्तनकी कर्तव्यताका प्रचार किया था ; पश्चात् संन्यास ग्रहण करके श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य प्रभूतिको, विद्यानगरमें श्रीराय रामानन्दको, दक्षिण देशमें

\* अभी तक यह गुफा ‘राघवपंडितकी गुफा’के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीवेंकट भट्ट आदिको, प्रयागमें श्रीरूपगोस्वामीको तथा चातुर्यसे श्रीरघुपति उपाध्याय और श्रीवल्लभभट्ट महोदयको , वाराणसीमें श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती आदिको जो उपदेश दिये थे, उनसे ही श्रीमहाप्रभुकी शिक्षा यथार्थरूपसे प्राप्त की जा सकती है ।

जगज्जीवके प्रति अपार दया प्रकट करके श्रीमन्महाप्रभुने समस्त भारतमें विशुद्ध वैष्णव-धर्मका प्रचार किया था । किसी देशमें स्वयं जाकर प्रचार कार्य किया तो किसी-किसी देशमें प्रचारक भेजकर यह कार्य सम्पन्न किया । प्रचारकोमें असीम शक्ति संचार करके उन्हें देश-देशमें भेजा था । श्रीमहाप्रभुके प्रचारकगण प्रेमसूत्रसे कार्य करते थे । वे लोग किसी वेतन या पुरस्कारकी आशा नहीं करते थे ।”

श्रीचैतन्यदेवने श्रीभागवत-धर्मका प्रचार किया है । भागवत-धर्मके सिद्धान्तानुसार परतत्त्व—अद्वयज्ञान या अद्वितीय-तत्त्व है । उसकी त्रिविध प्रतीति होती है—(क) ‘ब्रह्म’, (ख) ‘परमात्मा’ और (ग) ‘भगवान्’ । परतत्त्व ‘सनातन’ अर्थात् नित्य, ‘पूर्ण’ अर्थात् अखण्ड और ‘परमानन्द’ अर्थात् सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है । परतत्त्वका आनन्द दो प्रकारका है—(१) उनके स्वरूपका आनन्द और (२) स्वरूपशक्त्यानन्द । स्वरूप-शक्तिके आनन्दमें अधिक विलास और विचित्रता है । जहाँ वैशिष्ट्य या धर्म प्रकाशित नहीं होता वही ‘ब्रह्म’ है । जहाँ गुण, धर्म या शक्तिसे वस्तुका परिचय नहीं मिलता, तथापि वह चेतन और सत्तामय है, ऐसा दुर्निर्णय तत्त्व ही ‘ब्रह्म’ है । उसके बाद ही है ईश्वर, पुरुष, अन्तर्यामी या परमात्मा । यही ‘परमात्मा’ सर्वव्यापक और सर्वनियन्ता है । उनकी सत्तासे सबकी सत्ता है, उनकी असत्तामें अर्थात् महाप्रलयकी निष्क्रियावस्थामें सबकी असत्ता है । वे माया और जीवको प्रकट करके नियमन करते हैं । प्रत्येक जीवके हृदयरूपी पुरमें वे अन्तर्यामी नियामकरूपमें अवस्थान करते हैं । और ‘श्रीभगवान्’ एकमात्र स्वरूपशक्तिके साथ विलास करते हैं । ब्रह्म,

परमात्मा, श्रीनारायण या श्रीकृष्ण—एक ही तत्व है। इनमे केवल शक्तिके प्रकाश और आविर्भावका तारतम्य है। परतत्त्वका पूर्णतम आविर्भाव ही—श्रीकृष्ण है। परतत्त्वकी सारी विशिष्टताओंमें श्रेष्ठ विशिष्टता यही है कि—वे प्रेम करते हैं, और प्रेम स्वीकार करते हैं। वह सर्वापेक्षा घनिष्ठ और प्रियतम है। उनको प्रेम क्यों किया जाता है, इसका कोई कारण नहीं है। क्योंकि प्रेम करना और प्रेम स्वीकार करना उनके स्वरूपका ही नित्यसिद्ध स्वभाव है।

श्रीभगवत्तत्त्व एक और अद्वितीय होनेपर भी शक्तिके प्रकाश-भेदसे विभिन्न नित्य नाम, नित्य रूप, नित्य गुण, नित्य लीला और नित्य परिकरमे प्रकाशित होता है। श्रीमत्स्य, श्रीकूर्म, श्रीवराह—आदि भगवत्तत्त्वमे आशिक शक्तिका आशिक प्रकाश है। इनकी अपेक्षा श्रीनृसिंह और श्रीरामचन्द्रमे अधिक शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्णमे परिपूर्ण शक्तिका प्रकाश है। श्रीकृष्ण-स्वरूपमे श्रीद्वारकेश 'पूर्ण', श्रीमथुरेश 'पूर्णतर' और श्रीगोकुलेश 'पूर्णतम' है। श्रीगोकुलेश श्रीब्रजेन्द्र-नन्दन ही—युगलविहारी श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णके अतिरिक्त अन्य भगवद्-विग्रहके भक्त अपने उपास्यको इतना प्रेम नहीं करते, अथवा अन्य भगवद्-विग्रह भी अपने भक्तको इतना प्रेम नहीं करते। स्वयं भगवान्का भक्तवात्सल्य तथा तदीय भक्तकी भक्ति दोनों अद्वितीय एवं अतुलनीय है।

अशी भगवत्तत्त्वकी जैसी सामर्थ्य, जैसा स्वरूप, जैसी स्थिति है, स्वाशकी भी वैसी ही है। स्वाश और अशीमे जरा-सा भी भेद नहीं है, इनमे केवल शक्तिप्रकाशका तारतम्य और लीलाकी विचित्रता प्रकाशित है।

जीव भगवान्का 'विभिन्नाश' है—विशेषरूपसे भिन्न अश अर्थात् जीव-शक्ति-विशिष्ट श्रीभगवान्का अश है, परन्तु कृष्णके शुद्ध अश या लीलावतारादि स्वाशके समान शक्तिमान् अश या विष्णुतत्त्व नहीं है। शक्तिमान्की स्वरूपसिद्धा शक्तिका ही विविध विक्रम है—(१) 'चित्-

शक्ति' या स्वरूप शक्ति। ये शक्तिमान्के साथ रहती है ; शक्ति-मान्को सुख देती है—आनन्द देती है। जो भगवान्को आनन्द देती है वे ही भक्तको भी सुखी करती है। (२) 'अचित्-शक्ति' या विरूप-शक्ति, इसीको 'माया' कहते हैं। यह जीवको शक्तिमान्से ढककर रखती है, शक्तिमान्को देखने नहीं देती, प्रतारणा करती है। (३) इन दोनों शक्तियोंके मध्यवर्ती स्थानमें अवस्थित रहनेवाली तटस्था 'जीवशक्ति' है, यह अणुचेतन, अनन्त और नित्य है। जीव—परमात्माका वैभव, और स्वरूपशक्ति—श्रीभगवान्का वैभव है।

मत्स्य, कूर्म, वराह प्रभृति स्वाश भगवत्-तत्त्वगण—परमेश्वर है। ये भगवदश कथित होनेपर भी विभिन्नाश जीवके समान नहीं हैं। जिस प्रकार तेजके अशी सूर्य, और तेजके अश खद्योत—दोनों ही अखण्ड तेज के अश हैं, तथापि सूर्य और जुगनू एक नहीं हैं। महाप्रभावशाली ऋषि, मनु, देवता, मनुपुत्र, प्रजापति—ये श्रीहरिकी विभूति हैं। महत्तम जीवमें श्रीभगवान्की अल्पशक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'विभूति' और अधिक शक्ति प्रकाशित होनेपर वह 'आवेशावतार' कहलाता है। देवता-गण—तेजोमय शरीर-विशिष्ट सत्त्वगुणयुक्त, स्वच्छन्दगति, मनुष्यके पूज्य, भक्तोको अभिलषित वर देनेवाले स्वर्गलोकके वासी हैं।

देवताओंमें देवराज इन्द्र श्रेष्ठ है। स्वर्गलोकमें वामनरूपी श्रीउपेन्द्र (इन्द्रके कनिष्ठ भ्राता) पत्नी 'कीर्ति'के साथ सर्वदा इन्द्रकी विपद्से रक्षा करते हैं और उनकी पूजा ग्रहण करते हैं। इन इन्द्रसे ब्रह्मा श्रेष्ठ है। ब्रह्मलोकमें सहस्रशीर्षा यज्ञाधि-ठाता महापुरुष भगवान् श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ आविर्भूत होकर ब्रह्माके दिये हुए यज्ञभागको ग्रहण करते हैं। श्रीब्रह्मासे श्रीमहादेव श्रेष्ठ है। यह कैलास-पर्वतपर ईशानकोणके पालकके रूपमें परिवारवर्गसे घिरे हुए श्रीउमादेवीके साथ श्रीसकर्षण-विष्णुकी सेवा करते हैं। श्रीमहादेवसे श्रीप्रह्लाद श्रेष्ठ है। ये भगवद्भक्तोंके आदर्श हैं, ये सुतलमें ध्यानयोगके द्वारा श्रीश्रीनृसिंह देवकी सेवा करते हैं। श्रीप्रह्लादसे श्रीहनुमान श्रेष्ठ है। ये किंपुरुष-



वर्षमे श्रीरामचन्द्रका नित्य दासत्व करते हैं। श्रीहनुमानसे पाण्डवगण श्रेष्ठ है। ये बन्धु और स्वजनोके साथ श्रीकृष्णके प्रेमपात्र और कृपा-पात्र हैं। पाण्डवोंके लिये श्रीकृष्णने अपनी प्रतिज्ञा भग की थी, उनके सारथीका कार्य, मन्त्रित्व, दौत्य, अनुगमन, स्तव और नति की थी। पाण्डवोंकी अपेक्षा भी कुछ यादव (नित्य पार्षदगण) श्रेष्ठ हैं। श्री-द्वारकापुरीमे नित्यपार्षद यादवगण साधारण मनुष्यके समान देह-गोह-कर्ममे व्यस्त रहते हुए भी श्रीकृष्णके प्रेमवश अपने-अपने स्त्री-पुत्रादिको भी भूल जाते हैं। समस्त यादवोंकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रेष्ठ है, द्वारकामे श्रीकृष्णकी निजमूर्तिकी अपेक्षा भी श्रीउद्धव श्रीकृष्णके अधिक प्रिय है। ब्रह्मादि श्रीकृष्णके पुत्रगण, सकर्षणादि भ्रातृगण, शिवादि सुहृद्गण, रमादि भार्यागण अथवा श्रीकृष्णकी निजमूर्ति भी श्रीकृष्णको श्रीउद्धवके समान प्रिय नहीं है\*। श्रीउद्धवसे भी श्रीब्रजदेवियों श्रेष्ठ हैं। दुस्त्यज्य स्वजन और विधिमार्गका परित्याग करनेवाली श्रीकृष्ण-गतप्राणा श्रीब्रजसुन्दरियोंके श्रीपादपद्मोंकी सेवा करनेवाले श्रीवृन्दा-वनके गुल्म, लता और औषधियोंमे जन्म लेनेकी प्रार्थना करके श्रीउद्धवजीने श्रीब्रजदेवियोंकी महिमा प्रकट की है†। उन ब्रजदेवियोंमे फिर समस्त इन्द्रियो द्वारा, सर्वतोभावेन, सर्वदा, सर्वश्रेष्ठ आराधना करने-वाली श्रीराधिका सर्वश्रेष्ठा है।

उपासकोमे उनके समान श्रेष्ठ और श्रीभगवान्के लिये प्रेष्ठ (प्रियतम) और कोई नहीं है। श्रीभगवान्के प्रति प्रीतिकी गाढताके तारतम्यसे ही भक्तोंके इस प्रकारके तारतम्य स्वत ही प्रकाशित हुए हैं।

अनादिकालसे परतत्वकी उपासना भूलकर जीवने दूसरी ओर मुँह फेर रखा है। जिससे इस विमुखताके छिद्रको पाकर माया, जीवके बन्धनका कारण तथा जीवके समस्त दुःखोंका जो मूल

\* भा० ११।१४।१५, † भा० १०।४७।६१।

योगमार्गका प्रयोजन क्रममुक्ति अर्थात् परमात्मामे सायुज्यादिकी प्राप्ति है। यह ईश्वर-सायुज्य ब्रह्म-सायुज्यकी अपेक्षा भी घृणित है, क्योंकि इसमें साधनकी प्राथमिक अवस्थामे भगवद्-विग्रहका स्वीकार तथा उनके आनुगत्य अर्थात् भक्तिका भाण होता है।

विमुख जीवके उन्मुख होनेका एकमात्र निदान है—साधुसंग। शास्त्र-मूर्ति साधु अथवा महत् (महाभागवत) ही ह्लादिनीशक्तिके दूत हैं। सर्वश्रेष्ठ साधु या महत् ही हैं श्रीगुरुदेव। उन्होंने परब्रह्ममें प्रचुर निष्ठा प्राप्त की है। नैष्ठिकी भक्तिके कारण वे श्रीभगवान्में परमाविष्टताको प्राप्त हैं।

अज्ञातरुचि व्यक्तिके लिये विचारप्रधान मार्ग और जातरुचि व्यक्ति के लिये रुचिप्रधान मार्ग है। विचारप्रधान मार्ग मनीषा या मस्तिष्क का मार्ग है। अपनी अयोग्यताकी तीव्र अनुभूतिसे रुचि उत्पन्न होती है। प्रीतिका आधार हृदय ही इस रुचिका आविर्भाव-स्थान है।

समस्त अभिधेय या साधनोमें भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ अभिधेय है, क्योंकि, अन्यान्य साधनोके जो फल हैं, उन सभीको भक्ति निरपेक्ष-भावसे अनायास ही प्रदान कर सकती है। परन्तु भक्तिका जो फल है, उसका आभास भी अन्यान्य साधनोके द्वारा नहीं प्राप्त हो सकता। यदि भगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त भक्ति अनुष्ठित होती है, तो वह शीघ्र ही साध्यभक्ति अर्थात् प्रीतिमें पर्यवसित हो जाती है। श्रीभगवान्के सुखकी चिन्तासे युक्त, निरवच्छिन्न अमृतधारावत् स्मृतिसे संयुक्त जो नवधा भक्तिके अंग हैं, वे ही—केवला, अकिंचना या स्वरूप-सिद्धा भक्ति हैं। वर्णाश्रम धर्मके पालन-द्वारा जो विष्णुका तोषण होता है, वह भक्तिका आभास मात्र है। उसके द्वारा चित्तशुद्धि होती है, आत्माकी प्रसन्नता और मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु श्रीभगवान्की प्रीति प्राप्त नहीं होती। निरन्तर आवेशमयी अकिंचना भक्तिके द्वारा ही प्रीति अर्थात् श्रीकृष्णके माधुर्यका अनुभव और लीला-रसका आस्वादन होता है। वर्णाश्रम-धर्मका परित्याग कर शास्त्र

विधिके अनुसार भजन ही—‘वैधी साधन भक्ति’ है, इसे अनन्या भक्ति भी कहा जाता है। और अभिरुचिके साथ अभिमानयुक्त होकर भजन करना ही ‘रागानुगा भक्ति’ है, इसका दूसरा नाम—‘अनन्या भाव-भक्ति’ है। ‘भावभक्ति’ और ‘प्रेमभक्ति’ उत्तरोत्तर गाढावस्था है। ‘प्रेमभक्ति’ सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन है।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने अपने स्वरचित शिक्षाष्टकमे\* निम्नलिखित उपदेश प्रदान किये हैं—

१। श्रीकृष्ण-सकीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ भजन है। श्रीकृष्ण-सकीर्तनसे चित्त-दर्पण सम्पूर्णरूपसे मार्जित होता है, भीषण ससार-दावानल अनायास ही सर्वतोभावसे निर्वासित हो जाता है तथा सर्वश्रेष्ठ आत्ममगल पूर्ण विकसित होता है। श्रीकृष्ण-कीर्तन—परविद्या या भक्तिका जीवन-स्वरूप है, श्रीकृष्ण-कीर्तन—प्रेमानन्दको सम्यक् रूपसे बढ़ानेवाला है, श्रीकृष्णकीर्तन—पद-पदपर परिपूर्ण अमृतका आस्वादन कराता रहता है, और श्रीकृष्ण-कीर्तनके प्रभावसे ही जीवगण सुशीतल श्रीकृष्णपाद-पद्म-सेवाके समुद्रमे अवगाहन कर सकते हैं।

२। नाम और नामीमे कोई भेद नहीं है। नामी भगवान्ने अपने नाममे सर्वशक्ति अर्पण करके उसे जगत्मे अवतीर्ण कराया है, नाम-कीर्तनमे कालाकाल, स्थानास्थान या पात्रापात्रका विचार नहीं है। परन्तु दुर्दैव अर्थात् अपराध रहनेपर नाममे रुचि नहीं होती। वे अपराध दस प्रकारके† हैं। उनमे महत्की निन्दा ही प्रथम अपराध है।

\* परिशिष्टमे ‘शिक्षाष्टक’ देखिये।

† दस अपराध—(१) साधुनिन्दा, (२) अन्यदेवमे स्वतन्त्र ईश्वर-बुद्धि, तथा कृष्णके नाम, रूप, गुण और लीलामे श्रीकृष्णस्वरूपसे पृथक् बुद्धि, (३) नामतत्त्वविद् गुरुके प्रति अवज्ञा, (४) नाम-महिमावाचक शास्त्रकी निन्दा, (५) शास्त्रमे नामका जो माहात्म्य और फल लिखा है उसको अर्थवाद मानना, (६) श्रीहरिनामको मनकी कल्पना समझना; (७) नामके बलपर पापबुद्धि, (८) श्रद्धाहीन व्यक्तिको नामोपदेश

३। तृणसे भी सुनीच, वृक्षसे भी सहिष्णु, स्वयं अमानी और दूसरेको मान देनेवाला होकर निरन्तर हरिनाम कीर्तन करते रहना ।

‘तृणादपि सुनीच’—वाक्यका अर्थ यह है कि जीव इस जड़-जगत्के अन्तर्गत कोई वस्तु नहीं है, वस्तुतः जीव—अप्राकृत अणुचैतन्य और श्रीहरि-गुरु-वैष्णवके पादपद्मकी नित्य रेणु है, अर्थात् उनका नित्य सेवकानुसेवक है ।

४। श्रीहरिकीर्तन करनेवाले श्रीहरिनामसे धन, जन, सुन्दरी कामिनी, जागतिक कवित्व या विद्या अर्थात् कनक-कामिनी-प्रतिष्ठाकी याचना न करे। अधिक क्या, पुनर्जन्मसे भी निष्कृति या मुक्ति, त्रिताप-ज्वाला की शान्ति भी न चाहे। प्रति जन्म श्रीकृष्ण-पादपद्ममें अहैतुकी भक्ति अर्थात् श्रीकृष्णके सुखानुसन्धानके अतिरिक्त अन्य कामना करनेपर कभी भी श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं होगी ।

५। जीव अपने स्वरूपको श्रीकृष्णके पादपद्मकी धूलिके कणके समान समझकर सर्वदा उत्कण्ठाके साथ श्रीकृष्णका सुखानुसन्धान करे ।

६। नाम-ग्रहण लेते-लेते सिद्धिके बाह्य लक्षणरूप आठ सात्विक भाव-विकार स्वतः ही शरीरमें प्रकट होंगे ।

७। सिद्धिके अन्तर्लक्षणके श्रीकृष्णके सन्तोषकी चिन्ताके बिना निमेष भर भी युगके समान जान पड़ेगा । भीतरकी अकृत्रिम सेवा-व्याकुलताके कारण अश्रु वर्षाकालकी जलधाराके समान प्रवाहित होंगे, श्रीकृष्ण-विरह-व्याकुलतामें समस्त जगत् शून्य जान पड़ेगा अर्थात् जगत्के भोगकी पिपासाके बदले सारी वस्तुओंके द्वारा केवल श्रीकृष्णके सन्तोष-विधानके लिये आवेशमयी व्याकुलता होगी ।

८। श्रीकृष्ण अपनी-निरकुश इच्छावश यदि कृपापूर्वक दर्शन देते हैं तो बड़ी अच्छी बात है, और यदि दर्शन न देकर मर्माहत करते हैं

करना, (६) अन्य शुभ कर्मोंके साथ हरिनामकी बराबरी करना, (१०) ‘मैं और मेरे’ की आसक्तिसे नामके माहात्म्यको जानकर भी उसमें प्रीति न करना और नाम ग्रहणके सम्बन्धमें असावधानी होना ।

हो भी उस स्वतन्त्र परम पुरुषकी अव्यभिचारिणी सेवाकी प्राप्तिकी आशामे ही पड़े रहना होगा। एकमात्र श्रीकृष्ण ही यथा-सर्वस्व, नित्यप्रभु है।

श्रीचैतन्यदेवने दस सिद्धान्त जगत्मे प्रकट किये हैं। ये ही उनकी शिक्षाके मूल सूत्र हैं—

(१) 'शब्द' या वेद-वाक्य ही प्रधान प्रमाण है। श्रीमद्भागवत उस वेदकल्पतरुका परिपक्व फल है तथा ब्रह्मसूत्रोका अकृत्रिम भाष्य है। वेद-बीज प्रणव ही महावाक्य है।

(२) श्रीकृष्ण ही अद्वितीय परम तत्व है।

(३) वे सर्वशक्तिमान् हैं—स्वरूप-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्तिके आश्रय हैं।

(४) वह समस्त रसामृतके समुद्र है।

(५) सारे जीव जीव-शक्तिसे युक्त परमात्माके अणु-चिदश (विभिन्नाश) नित्य, अनेक और अनन्त हैं। नित्य-बद्ध या अनादि-बहिर्मुख तथा नित्यमुक्त या अनादि-उन्मुख भेदसे जीव दो प्रकारके हैं।

(६) बहिर्मुखता-छिद्र-दोषके कारण जीव माया-शक्तिके द्वारा ग्रसित और आवृत-ज्ञान है।

(७) परतत्त्वके प्रति ज्ञानाभावरूपी विमुखता अनादि होनेपर भी वह विनाशी है।

(८) श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति, तटस्था-शक्ति और माया-शक्ति तथा तत्तत्शक्ति-परिणत तत्वसमूह श्रीकृष्णकी अचिन्त्यशक्तिके कारण श्रीकृष्णसे एक साथ ही भेद और अभेद-युक्त है (अचिन्त्य-भेदाभेद)।

(९) वैमुख्य-विरोधिनी साक्षात्-भगवत्साम्मुख्य-श्रेष्ठा भक्ति ही प्रधान अभिधेय या साधन है।

(१०) परतत्त्वका अनुभव, विमुक्ति या विज्ञानरूप श्रीकृष्ण-प्रेम ही (श्रीकृष्ण-साक्षात्कार ही) जीवका सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन या साध्य है।



## एकसौ-दोवाँ परिच्छेद वेदान्तभाष्य और सम्प्रदाय

१. श्रीकृष्णचैतन्यदेवने कहा है,—“श्रीव्याससूत्रोका अर्थ परम गभीर है ; श्रीव्यास—भगवान् है। उनके सूत्रोका अर्थ जीवके लिये अगोचर है ; अतएव उन्होंने स्वयं ही अपने सूत्रोकी व्याख्या की है। सूत्रकर्त्ता यदि स्वयं अपने सूत्रोकी व्याख्या करे, तो उनके सूत्रोके यथार्थ अर्थके विषयमे लोगोको ज्ञान होता है। प्रणवका अर्थ गायत्रीमे प्रकाशित है। चतुश्लोकी श्रीभागवतने उसी अर्थको विस्तार किया है। सृष्टिके आदिमे श्रीनारायणने श्रीब्रह्माको जिन चार श्लोकोका उपदेश किया, श्रीब्रह्माने उसे श्रीनारदसे कहा, और श्रीनारदजीने फिर उसे श्रीव्यासजीको बतलाया। श्रीव्यासजीने उसे सुनकर और विचार करके देखा कि उन्होंने जो सूत्ररचना की है, चतुश्लोकी उन्ही सब सूत्रोका सक्षिप्त भाष्यरूप है। तब चतुश्लोकीको विस्तृत करके उन्होंने सूत्रोके भाष्य-स्वरूप श्रीमद्भागवतकी रचना करनेका सकल्प किया तथा चारो वेदो और उपनिषदोका सार समुद्धृत किया। सूत्रोकी खनिस्वरूप श्रुतिमन्त्रसमूह ही श्लोकाकारमे श्रीमद्भागवतमे निबद्ध हो गये। अतएव श्रीमद्भागवत ही ‘श्रीव्याससूत्रोका’ अकृत्रिम भाष्य है। श्रीमद्भागवतके श्लोक और उपनिषद्ने एक ही सिद्धान्त स्थापित किया है।”

श्रीगुरुपुराणमे भी कहा है,—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ-विनिर्णयः ।

गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ-परिवृहितः ॥

[ यह श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रोका विस्तृत अर्थ है। महाभारतके सिद्धान्तका निर्णय है, गायत्री मन्त्रका भाष्य रूप है तथा वेदार्थका विस्तार करनेवाला है। ]

इस श्लोककी व्याख्याके प्रसंगमें श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने तत्त्वसदर्ममें\* लिखा है कि,—श्रीभागवत ही ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्यरूप है, अतएव इस स्वतः सिद्ध भाष्यभूत श्रीमद्भागवतके सामने अन्यान्य अर्वाचीन या आधुनिक भाष्यसमूह केवल अपनी-अपनी कपोल-कल्पना मात्र है ; किन्तु श्रीमद्भागवतका अनुगत भाष्य मात्र ही आदरणीय है ।

इसी कारण श्रीचैतन्यदेवके पार्षदोंमें किसीने पृथक् 'वेदान्तसूत्रों'का भाष्य लिखनेका प्रयास नहीं किया । श्रीचैतन्यदेवने श्रीकाशीधाममें श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके सामने और श्रीनीलाचलमें श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके सामने वेदान्तके अकृत्रिम भाष्यस्वरूप श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तका अवलम्बन करके ही ब्रह्मसूत्रके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'को प्रकटित किया है । उसी सिद्धान्तका अवलम्बनकर श्रीसनातन गोस्वामि-पादने 'श्रीबृहद्भागवतामृत'में, श्रीरूपगोस्वामिपादने 'श्रीसंक्षेप-भागवतामृत' में तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने 'क्रमसन्दर्भ', 'षट्सन्दर्भ'में तथा विशेषरूपसे 'सर्वसवादिनी'में अचिन्त्यभेदाभेदवादको स्थापित किया है ।

“अपरे तु 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्र० सू० २।१।११) भेदेऽप्यभेदेऽपि निर्मर्याददोषसन्तति-दर्शनेन भिन्नतया चिन्तयितुमशक्यत्वादभेद साधयन्त-स्तद्वदभिन्नतयाऽपि चिन्तयितुमशक्यत्वाद् भेदमपि साधयन्तोऽचिन्त्यभेदा-भेदवादं स्वीकुर्वन्ति ।”

—परमात्म-सन्दर्भिया 'सर्वसवादिनी' (बगीय-साहित्यपरिषद् सं० १४६ पृष्ठ)

एक सम्प्रदायके वेदान्ती कहते हैं कि, श्रुतिके प्रमाणके अनुसार तर्कके द्वारा परम सत्यका निर्णय नहीं हो सकता , इसलिये भेदमें भी और अभेदमें भी निखिल दोषोंको देखकर जीव और ब्रह्मको पूर्णतः भिन्न समझना असंभव है , अतएव जैसे 'भेद'-साधन करना दुष्कर है,

\* 'ब्रह्मसूत्राणामर्थस्तेषामकृत्रिमभाष्यभूत इत्यर्थः । \* \* तस्मात्तद्भाष्यभूते वतः सिद्धे तस्मिन् सत्यर्वाचीनमन्यदन्येषां स्वस्वकपोलकल्पितं, तदनुगतमेवादरणीयमिति गम्यते ।” —त० स० ११ अनु०

वैसे ही अभिन्न भावका विचार करनेपर 'अभेद' साधन करना भी दुष्कर है। इस प्रकार 'भेदाभेद' दोनोंको सिद्ध करते समय ये अप्राकृत तत्त्वके भेदाभेद साधनमें समझकी असमर्थता देखकर अचिन्त्यभेदाभेद-वादको ही स्वीकार करते हैं। परमतत्त्व 'अचिन्त्य-शक्ति' है, इस कारण गौडीयमतमें 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ही सिद्धान्त माना गया है।

कहा जाता है कि, 'जयपुर'में 'गल्ता'की गद्दीमें रामानन्दी सम्प्रदायके लोगोंने जयपुरके श्रीश्रीगोविन्दजीकी तत्कालीन सेवा करनेवाले गौडीय लोगोसे प्रश्न किया कि चार स्वीकृत सम्प्रदायो अर्थात् 'श्रीरामानुज', 'श्रीविष्णुस्वामी', 'श्रीनिम्बार्क' और 'श्रीमध्व'में—इस सम्प्रदाय-चतुष्टयमें आप लोग 'किस संप्रदायके अनुगत हैं' ? श्रीबलदेव विद्या-भूषणने विचारके द्वारा प्रतिपक्षियोंको पराजित किया। प्रतिपक्षियोंने साम्प्रदायिक वेदान्तभाष्य देखना चाहा, तब उन्होंने श्रीगोविन्दजीके स्वप्नादेशसे 'श्रीगोविन्द-भाष्य' नामक वेदान्त-भाष्यका निर्माण किया। श्रीबलदेव गौडीयमतमें प्रवेश करनेके पहले तत्त्ववादी पंडित\* थे। उन्होंने तात्कालिक प्रयोजनानुसार तथा अपने पूर्वसिद्धान्तके साथ कुछ समन्वय करनेके लिये गौडीय लोगोको माध्व-मतके अन्तर्गत प्रदर्शित किया है। वस्तुतः गौडीय लोगोके शास्त्र, मन्त्र, ऋषि, उपास्य, साधन, धाम और प्रयोजनके विचारसे उनका सम्प्रदाय सभी सम्प्रदायोके आकर या अशी है। गौडीय लोगोका शास्त्र है—श्रीमद्भागवत ; वह सब वेदान्तका सार, समस्त शास्त्रोका मूल है। अन्य समस्त शास्त्र श्रीमद्भागवतके अंश, या स्थलविशेषमें सोपान अथवा विकृत प्रतिफलनस्वरूप हैं। अथवा उसके साथ अभिन्न होते हुए भी अल्प-

\* श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर-सम्पादित 'सज्जनतोषनी' पत्रिका १३०४ बगान्द, नवम खण्ड, दशम सख्या, पचम पृष्ठ देखिये। उन्होंने लिखा है,—“वे (श्रीबलदेव) तत्त्ववादी मठमें विराजमान थे। पहले शाकरभाष्यादि पढ़कर फिर श्रीमाध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया। वे तत्त्ववादियोंके शिष्य होकर माध्वसम्प्रदायमें सम्मिलित हो गये।”



शक्तिकी आकर-वस्तुको प्रकाशित करते हैं। गौडीय लोगोके 'श्रीगोपाल मन्त्र'मे सारे मन्त्र निहित हैं। उपास्य-विग्रह श्रीकृष्णमे ब्रह्म-परमात्मा आदिका आविर्भाव है। ऋषि श्रीगान्धर्वा(श्रीराधा)मे सारे उपासक वर्तमान है, साधन भक्तिमे समस्त साधन तथा प्रयोजन श्रीकृष्णप्रेममे समस्त प्रयोजन अन्तर्भूत है।

जहाँ प्राकृत भेद होता है वही मतवाद उपस्थित होता है। जीव—मायावश होने योग्य है और परतत्व मायाधीश है। अतएव जीव और परतत्वमे भेद है। पुन, परतत्व—शक्तिमान् है और जीव—शक्तिमान्की ही शक्ति है। अग्निसे जैसे दाहिकाशक्ति अभिन्न है, वैसे ही शक्तिमान् परमेश्वरसे जीव-शक्तिकी अभिन्नता है। ये अभिन्न होनेपर भी इनमे परिमाणगत भेद है। परमेश्वर और जीव दोनों ही सच्चिदानन्द है। परन्तु परमेश्वर पूर्ण सत्, पूर्ण चित् और पूर्ण आनन्द है। जीवकी सत्ता, चेतनता और आनन्दमयता सभी परतत्वके अधीन और अणुपरिमाण है। यह 'अचिन्त्यभेदाभेद' सिद्धान्त कोई वाद नहीं है, बल्कि यही सम्पूर्ण निर्दोष सिद्धान्त है।

भक्तिको ज्ञानसे पृथक् करनेकी चेष्टाके कारण ही निर्विशेष ज्ञानको 'मतवाद' कहा जाता है। केवलाद्वैतवादी लोग मुक्तिको प्रेमभक्तिसे पृथक् करनेकी चेष्टा करते हैं, इसी कारण मुक्तिको 'कैतव' कहकर तिरस्कार किया जाता है। आनुकूल्यमयी गाढतृष्णाका नाम 'भक्ति' है। उसके द्वारा परतत्वकी प्राप्ति होती है। श्रीकृष्ण जब ब्रह्म-परमात्मा के आश्रय हैं, तब श्रीकृष्ण-भक्ति भी ज्ञान और कर्मयोगका आश्रय है। यथार्थ योगित्व और ब्राह्मणत्व भक्तमें ही है। पूर्णतम अशीवस्तुमे ही सारे अश है। श्रीकृष्ण है—पूर्णतम अशी परात्पर-तत्व। श्रीचैतन्यदेव स्वयं कृष्ण—पूर्णतम तत्व है। अतएव उनके उपासक गौडीयगण—पूर्ण सम्प्रदाय हैं। उनके अन्तर्गत अन्य सब आशिक सम्प्रदाय हैं। श्रीकृष्ण या श्रीकृष्णचैतन्य यदि अन्यतम अवतारविशेष है तो गौडीय लोग भी एक सम्प्रदाय-विशेष है; और यदि श्रीकृष्ण आशिक अवतार-

विशेष न होकर अशी है, तो गौडीय लोगोको भी 'पूर्ण-सम्प्रदाय' कहना पड़ेगा। अद्वयज्ञान पूर्ण-वस्तुको अद्वयज्ञानमय अश कहनेपर तत्त्वविचारमें दोष न होनेपर भी रसविचारमें दोष होता है। अतएव गौडीय लोगोको 'माध्व' कहना ठीक नहीं। माध्वमतसे 'श्रीमहाभारत' सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है, श्रीकृष्ण परशुरामके समान ही पूज्य है। इस मतमें साधन है—विष्णुकी आज्ञाका पालन करते हुए विष्णुमें कर्मोको अर्पण करना ; प्रयोजन है—वायु या ब्रह्माके द्वारा मुक्तिकी प्राप्ति। वायु या ब्रह्मा अभिन्न है, उनके ऊपर लक्ष्मी है, वे विष्णुके अधीन है, उनके ऊपर पुरुषोत्तम है। माध्वमतमें लक्ष्मीके वशीभूत पुरुषोत्तमका विचार नहीं है। 'रसिकशेखर श्रीकृष्ण—परम कारुणिक' है, यह बात भी वे नहीं कहते। श्रीचैतन्यदेव और श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तसे देवतागण अधम अर्थात् सबसे निम्न कोटिके उपासक हैं और गोपीगण चरम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ उपासक है। परन्तु माध्वसिद्धान्त इसके विपरीत है। श्रीमाध्वप्रणीत 'भागवततात्पर्य'में गोपियोके चरम माहात्म्यको सूचित करनेवाले "आसामहो"\* श्लोकका तात्पर्य नहीं है। अतएव षड्-गोस्वामिगणमें कोई भी श्रीमन्मध्वाचार्यको अपने सम्प्रदायके गुरु रूपमें स्वीकार नहीं करते।

श्रीसनातन गोस्वामिपादने 'श्रीवृहद्वैष्णवतोषणी'में और श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने 'श्रीसक्षेप-वैष्णवतोषणी'में, 'षट्-सन्दर्भ'में और 'श्रीसर्वसवादिनी'में, तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने (दशम स्कन्धकी) 'सारार्थदर्शिनी'में श्रीमाध्वमतका खण्डन किया है।

अपने सहस्रो सम्प्रदायोके अधिदेवता श्रीकृष्णचैतन्यदेवने जिनको आत्मसात् किया है, वे ही 'गौडीय' हैं। श्रीश्रीराधामदनमोहन, श्रीगोविन्द और श्रीगोपीनाथका उपासक गौडीय-सम्प्रदाय किसी भी

\* भा० १०।४७।६१।

† इस विषयकी विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' नामक ग्रन्थमें—जो कि बगलामें है, देख सकते हैं।

अश-शक्ति-प्रवर्तित सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं है। श्रीश्रीरूपगोस्वामिपाद ने 'श्रीविदग्धमाधव-नाटक'के प्रारम्भमें गौडीयगणको 'रसिक-सम्प्रदाय'के नामसे अभिहित किया है। गौडीय लोगोके मूलमहाजन—श्रीश्रीस्वरूप-दामोदर गोस्वामिपाद हैं, उनके अभिन्न-हृदय श्रीश्रीरूप-सनातन गोस्वामिपाद तथा उनके अनुगत चार गोस्वामी हैं।



## एकसौ-तीनवाँ परिच्छेद

### 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'

अचिन्त्यानन्त-शक्तिशाली ('अतर्क्यसहस्रशक्ति.' भा० ३।३३।३) परतत्त्वके शक्तिसमूह तथा शक्ति-परिणत वस्तुसमूहके साथ परतत्त्वका जो 'अचिन्त्य' (अपौरुषेय-शब्द-गम्य, परन्तु पुरुषकी अर्थात् जीवकी क्षुद्र चिन्तन-शक्ति या युक्ति-तर्क-गम्य नहीं), युगपत् भेद और अभेदयुक्त सम्बन्ध है, वही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' है। भेद और अभेदकी सह-स्थिति है तथा दोनों ही समान रूपसे सत्य और नित्य हैं—यह मानवयुक्ति या धारणामें 'अबोध्य' या 'अचिन्त्य' प्रतीयमान होनेपर भी 'शास्त्रोपदिष्ट' होनेके कारण अवश्य स्वीकार्य है। अप्राकृत विषयोमें शास्त्र ही एकमात्र अभ्रान्त प्रमाण है। उपनिषदमें, ब्रह्मसूत्रमें उसके अकृत्रिम भाष्यरूप श्रीमद्भागवतमें, श्रीगीता और श्रीविष्णुपुराणादि शब्द-प्रमाणमें यह 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'-रूप 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' \*

\* "सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्र-सिद्धान्तः ।" ('न्याय-दर्शन' १।१।२८)—अर्थात् जो सर्वशास्त्रोंसे अविरुद्ध तथा शास्त्रमें कथित है वही 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है। (तन्त्र शब्दका अर्थ है—शास्त्र ।)

अर्थात् है। वही श्रीचैतन्यदेवके द्वारा प्रचारित तथा गौडीय-गोस्वामियों द्वारा प्रकटित दार्शनिक सिद्धान्त है। श्रीचैतन्यदेवने श्रीनीलाचलमे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यसे शाकर-भाष्यकी श्रवण-लीलाके समय, श्रीकाशी-धाममे केवलाद्वैतवादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके मतवादके खडनके समय तथा श्रीसनातन गोस्वामि-प्रभुपादको लक्ष्य करके लोक-शिक्षा प्रदान करते समय इस 'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'को ही प्रकट किया था। श्रीसनातनपादने 'श्रीवृहद्भागवतामृत'मे तथा 'श्रीवैष्णवतोषणी'मे उनके शिष्य श्रीरूपपादने 'श्रीसंक्षेप-भागवतामृत'मे, और श्रीसनातन-रूपपादके शिष्यवर्य श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने विस्तृत भावसे 'षट्सन्दर्भ'मे तथा 'श्री सर्वसवादिनी'मे इसीअचिन्त्य-भेदाभेदवादको प्रकटित किया है। श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद 'श्रीभगवत्सन्दर्भ'मे \* श्रीमद्भागवतका श्लोक (४।१७।३३) उद्धृत करते हुए कहते हैं,—'उस समुन्नद्ध- (गर्वित) विरुद्ध शक्तिशाली, निग्रह-अनुग्रहके विधाता—परम-पुरुषको मैं प्रणाम करता हूँ।' परमेश्वरके विरुद्ध शक्तिसमूहके अचिन्त्यत्वका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि,—'आप जीवसमूहके ईश्वर हैं, आपकी शक्तियाँ तर्कातीत हैं अर्थात् अचिन्त्य और अनन्त हैं।' परतत्त्वका एक साथ ही शक्तिमत्त्व और शक्तिका अचिन्त्यत्व ब्रह्मसूत्रके 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्' (२।१।२७) तथा 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' (२।१।२८) सूत्रोमे बतलाया गया है।

किसी प्रमाणसिद्ध कार्यकी अन्य किसी भी प्रकारसे उपपत्ति (समाधान, सिद्धि) नहीं होती। अतएव अगत्या जो ज्ञान होता है, उस प्रकारके ज्ञानके विषयको ही 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहा जाता है ;

\* "तस्मै समुन्नद्धविरुद्धशक्तये, नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ।"  
(भा० ४।१७।३३), तासांचिन्त्यत्वमाह—'आत्मेऽवरोऽतर्क्यसहस्र-  
शक्ति' (भा० ३।३३।३) \* \* \* उक्तचाचिन्त्यत्वम्—'श्रुतेस्तु  
शब्दमूलत्वात्' इत्यादौ, 'आत्मनि चैव विचित्राश्च हि' इत्यादौ (ब्र० सू०  
२।१।२७-२८) । —भग० सं०, १४-१५ अनु०

प्रत्येक भाववस्तुमें जो शक्ति है, वही अचिन्त्यज्ञान-गोचर होती है ; क्योंकि शक्तिमात्रका इस प्रकारका स्वभाव लोकसिद्ध है । अतएव ब्रह्ममें जो शक्तियाँ हैं, वे सभी अचिन्त्यज्ञान-गोचर हैं ।

समस्त भाव-वस्तुओंकी शक्तियाँ अचिन्त्य-ज्ञान-गोचर हैं, 'जल', 'अग्नि' आदि भाव वस्तुएँ हैं, परन्तु जलमें अग्निको बुझानेकी शक्ति क्यों है ? अग्निमें जला डालनेकी शक्ति क्यों है ? इसे आधुनिक विज्ञान भी नहीं बतला सकता । एक भाग 'अम्लजान' और दो भाग 'उद्जान' मिलनेसे जल बनता है, विज्ञान यह कह सकता है किन्तु क्यों बनता है ? विज्ञान उसको नहीं बतला सकता । जो ज्ञान किसी युक्ति-तर्कके द्वारा प्रतिष्ठित नहीं हो सकता, तथापि प्रत्यक्ष सत्यके रूपमें जिसको स्वीकार किये बिना भी नहीं रहा जा सकता, वही 'अचिन्त्यज्ञान' या 'अर्थापत्ति-ज्ञान' है । 'देवदत्त' दिनमें भोजन नहीं करता, तथापि उसका शरीर खूब स्वस्थ, सबल और स्थूल है । अतएव कल्पना कर लेनी पड़ती है कि वह निश्चय ही रातमें भोजन करता है । यहाँ देवदत्तका जो दिनमें 'अभोजन' और 'स्थूलत्व' है वह प्रत्यक्ष लौकिक प्रमाणके द्वारा सिद्ध है, इसे 'दृष्टार्थापत्ति' कहते हैं, और जो प्रकृतिसे अतीत प्रमाण या स्वतः प्रमाण 'वेद'के द्वारा सिद्ध होता है, उसे 'श्रुतार्थापत्ति' कहते हैं । 'देवदत्त' नामक कोई व्यक्ति जीवित है, यह जिसे निश्चय है, वह यदि किसी आप्त (विश्वस्त) पुरुषसे सुनले कि 'देवदत्त' घरमें नहीं है,—तो वह देवदत्तकी वहि सत्ताकी (बाहर रहनेकी) कल्पना कर लेगा, क्योंकि जीवित व्यक्तिकी अपने घरमें असत्ता (अस्तित्व-हीनता—न रहना), उसकी वहि सत्ता (बाहर रहने)के बिना सिद्ध (उपपन्न) नहीं होती । श्रुतिके प्रमाणसे यह सिद्ध हो गया है कि, 'ब्रह्म और जीवमें, शक्तिमान् और शक्तिमें अभेद है' । फिर, श्रुतिका उपदेश (आप्तोपदेश) सुनकर ही ज्ञात हुआ है कि 'ब्रह्म और जीवमें भेद है, शक्तिमान् और शक्तिमें भेद है ।' अतएव अव्यभिचारी प्रमाण की आपातविरुद्ध दो उक्तियोंका, यानी 'देवदत्त है और नहीं है', तथा

शक्तिमान् और शक्तिमें युगपत् भेद और अभेद है—इन दो सत्योकी सगति कैसे हो सकेगी, उसे अव्यभिचारी प्रमाणमूलक श्रुतिके अर्थकी (तात्पर्यकी) आपत्ति (कल्पना)के द्वारा निर्धारण करना पड़ेगा। यह कल्पना शब्दमूलक, शब्द-प्रमाणके समान ही 'वास्तव सत्य' है। और शब्द-प्रमाण (ब्रह्मसूत्र २।१।२७, शाकरभाष्य सहित, श्रीमहाभारत, श्रीविष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत इत्यादि) जहाँ स्पष्ट भाषामें श्रुतिके इस प्रकारके समकालीन भेद और अभेदको (शक्ति और शक्तिमान्में) 'श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर' अथवा 'अचिन्त्य-ज्ञानगोचर' कहकर व्यक्त करते हैं, वहाँ फिर जीवकी क्षुद्र चिन्ता अथवा किसी ऋषि या महा-मानवकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवकाश ही नहीं रह गया है। महामनीषी आचार्य श्रीशकर 'अभेदपरक' श्रुतिको 'पारमार्थिक सत्य' और भेद परक श्रुतिको 'व्यावहारिक या मिथ्या' कहकर अपनी कपोल-कल्पना व्यक्त करते हैं, वे मायाको अनिर्वचनीया कहते हैं। श्रुतिमें स्वाभाविकी नित्यसिद्धा पराशक्ति और उसका बहुत्व, चेतनका बहुत्व, जीवका नित्यत्व और बहुत्व आदि सिद्धान्त स्पष्ट भाषामें व्यक्त होने पर भी इन सारी श्रुतियोंको उन्होने 'व्यावहारिक' बताकर कल्पना की है। 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण 'शब्दमूलक' होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी अपनी कपोल-कल्पनाके लिये अवसर नहीं है। 'दृष्टार्थापत्ति'-प्रमाण में कभी-कभी व्यभिचार संभव हो सकता है, परन्तु 'श्रुतार्थापत्ति'में ऐसा कभी संभव नहीं है, क्योंकि वह पूर्णतः शब्दमूलक या 'शब्दप्रमाण' की ही परिष्कृति, विवृति और सगति है। इसी कारण गौडीय-वैष्णव दार्शनिकोंने 'अतीन्द्रिय वस्तु'के सम्बन्धमें 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाणके बलसे ही सिद्धान्त स्थापित किया है। यही 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'की सुदृढ़ सुदार्शनिक भित्ति है। इसी कारण 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' वेदान्तका 'सर्वतन्त्रसिद्धान्त' है। श्रुतिमें स्पष्ट भाषामें परब्रह्मकी शक्ति मायाका तत्त्वरूपण होनेपर भी आचार्य श्रीशकरने मायाको 'अनिर्वचनीया' कहा है। गौडीय-वैष्णव-दार्शनिकोंका 'अचिन्त्य' शब्द, और शकरका

‘अनिवर्चनीय’ शब्द एक नहीं है । मायाको स्पष्ट भाषामें ‘ब्रह्मशक्ति’ मान लेनेपर ‘अद्वैतसिद्धि’ नहीं होती, फिर, मायाको न माननेपर भी कार्य नहीं चलता, इसी कारण अनिवर्चनीय’ शब्दका जो प्रयोग है वह ‘अचिन्त्य’ शब्दके साथ समानजातीय नहीं है । ‘अचिन्त्य’-शब्दका अर्थ ‘श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्’ (२।१।२७) इस ब्रह्मसूत्रके द्वारा समर्थित है । इसको आचार्य शंकरने भी इस सूत्रके अपने भाष्यमें स्वीकार किया है, ‘अचिन्त्य’ शब्दका अर्थ है ‘शब्दमूलक, श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर’, इस बातको श्रुति, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, गीता, विष्णुपुराण, आचार्य शंकर, श्रीधरस्वामिपाद एव सर्वोपरि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवने एक स्वरसे कीर्तन किया है । श्रीगौडीय-वैष्णव-सिद्धान्तमें श्रीश्रीजीव-गोस्वामिपादने इस प्रकार ‘श्रुतार्थापत्ति’की ही अवतारणा की है ।

परतत्त्वकी ‘स्वरूपशक्ति’, तटस्था ‘जीवशक्ति’ और वहिरंगा ‘मायाशक्ति’ तथा क्रमशः इन सारी शक्तियोंकी परिणति ‘भगवत्परिकर’, ‘भगवद्भाम’, अनन्त ‘मुक्त’ और ‘बद्ध’ जीव और अनन्त ‘ब्रह्माण्ड’—इन सारी शक्तियों तथा शक्तिपरिणत वस्तुओंके साथ परतत्त्वका जो ‘सम्बन्ध’ है, उसे लेकर ही दार्शनिक मतवादोंकी उत्पत्ति हुई है । कोई कहते हैं,—“शक्ति और शक्तिमान्में आत्यन्तिक भेद है ।” इस मत-वादने श्रीमन्मध्वाचार्यके ‘केवल भेदवाद’की प्रतिष्ठा की । और कोई कहते हैं, ‘भेदाश’ ‘व्यावहारिक’ या ‘प्रातीतिक’ मात्र है, परमार्थतः ब्रह्मकी कोई शक्ति ही नहीं है । ब्रह्मकी शक्ति मान लेनेपर ब्रह्मातिरिक्त दूसरा तत्त्व तथा शक्ति क्रियासे उत्पन्न ‘भेद’को स्वीकार करना पड़ता है, फिर ब्रह्म ‘अद्वितीय’ नहीं रहता । प्रत्यक्षदृष्ट भेदसमूह ‘व्यावहारिक’ मात्र है । परमार्थतः इनका भेद स्वीकार नहीं किया जाता । यही श्रीशंकराचार्यका ‘केवलद्वैतवाद’ है । पुनः कोई शक्ति और शक्तिमान्के ‘भेद’को स्वीकार कर ‘शक्ति’को स्वरूपके ही अन्तर्गत प्रतिपादन करते हैं । इससे श्रीरामानुजाचार्यका ‘विशिष्टा-द्वैतवाद’ प्रकाशित है । ‘भेद’ और ‘अभेद’ दोनों समान रूपसे सत्य

हे, नित्य है, स्वाभाविक और अविरोध है, इस प्रकार ख्यापन करते हुए श्रीनिम्बार्काचार्य स्वाभाविक 'भेदाभेदवाद' की स्थापना करते हैं। और कोई-कोई तर्कके द्वारा 'भेद'-वाद या 'अभेद'-वादकी स्थापना करके, अथवा शक्ति और शक्तिमान्में 'भेद' और 'अभेद' दोनों ही स्वाभाविक हैं, ऐसी भी कल्पना न करके 'श्रुतार्थापत्ति'-प्रमाण या शब्द-मूलक-प्रमाणके बलसे शक्ति और शक्तिमान्का 'अचिन्त्यभेदाभेद' स्थापित करते हुए श्रुतिमन्त्रों और वेदान्तसूत्रोंका समन्वय करते हैं। यही गौडीय-वैष्णवोंका 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' है। गौडीय-वैष्णव-दाशंनिकोंने कस्तूरी और उसकी गन्ध, अग्नि और दाहिकाशक्ति आदि दृष्टान्तोंके द्वारा शक्तिमान् और शक्तिके सम्बन्धको समझाया है। कस्तूरीकी गन्धरूपी शक्तिको और अग्निकी दाहिका-शक्तिको कस्तूरी या अग्निसे पृथक् या विच्छिन्न अर्थात् भिन्न नहीं किया जा सकता। इस दृष्टान्तसे ज्ञात होता है कि—शक्ति शक्तिमान्से 'अभिन्न' है। फिर बहुधा कस्तूरी और अग्नि लोगोकी दृष्टिसे वहिर्भूत होनेपर भी गन्ध और उत्ताप प्रकट करती है। 'मृगनाभि'के बाहर भी जब गन्धका अनुभव होता है, अदृश्य अग्निसे भी कभी-कभी जब उत्तापका अनुभव होता है, तब प्रत्यक्ष वस्तुके साथ वस्तुशक्ति पूर्णतः 'अभिन्न' है, यह भी नहीं कहा जा सकता। और कस्तूरी और उसकी गन्धमें, अथवा अग्नि और उसकी दाहिका-शक्तिमें पूर्णतः 'भेद' है, ऐसी कल्पना करने पर भी दोनोंको दो वस्तुओंके रूपमें स्थापन करना पड़ता है। जलके 'अम्लजान्' और 'उदजान्'के समान कस्तूरी और गन्धको दो पृथक् उपादान माननेपर गन्धके बाहर चले जानेपर कस्तूरीका वजन कम हो जाता। अतएव शक्ति और शक्तिमान्में 'केवलभेदवाद' स्थापन करते समय भी अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। निर्दोषभावसे 'केवलभेदवाद' स्थापन करना जैसे दुष्कर है, 'केवल अभेदवाद' स्थापन करना भी उसी प्रकार दुष्कर है। इसी कारण कोई-कोई वेदान्ती 'केवलभेद' या 'केवलाभेद' साधन में मानवचिन्तनकी असमर्थता पाकर शब्दप्रमाणमूलक 'अचिन्त्य-भेदा-



भेदवाद'को स्वीकार करते हैं। स्वरूपसे अभिन्नरूपमे चिन्तन नहीं किया जाता, इसी कारण शक्तिकी भेदप्रतीति होती है, साथ ही भिन्नरूपसे चिन्तन नहीं किया जाता, इससे अभेदप्रतीति होती है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्मे 'भेद' और 'अभेद' है, तथा यह 'भेदाभेद' 'अचिन्त्य' है अर्थात् 'प्रकृतिके अतीत या तर्कके लिये अगम्य व्यापार है',—यह 'सिद्धात' स्वीकार करना पड़ता है। 'भेद' और 'अभेद' एक ही साथ किस प्रकार सत्य है, 'हो' और 'ना', उष्ण और शीतल एक साथ ही कैसे संभव हैं, यह किसी युक्ति या तर्कके द्वारा निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु प्रकृतिके अतीत राज्यमें एक ही साथ विरुद्ध व्यापारोका अपूर्व समन्वय होता है, इस बातको श्रुति, स्मृति, पुराण, पञ्चरात्र एक स्वरसे प्रतिपादन करते हैं। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का युगपद्विरुद्ध सम्बन्ध श्रुतार्थापत्ति-ज्ञानगोचर—शब्द प्रमाणगम्य है, यह किसी जीव की युक्ति-तर्कके द्वारा निर्णीत नहीं किया जाता। यही है 'अचिन्त्य भेदाभेदवाद' का संक्षिप्त मर्म।



## एक सौ-चारवाँ परिच्छेद

### 'गौडीय-दर्शन' की मौलिकता और सार्वभौमिकता

श्रीकृष्णचैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'गौडीय-दर्शन' अथवा श्रीभागवत-दर्शनमें 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्त्व स्वीकृत हुआ है। तत्त्व एकके अतिरिक्त दूसरा नहीं। इस अद्वय परतत्त्वमें स्वाभाविकी त्रिविधा शक्ति है—(१) स्वरूपशक्ति या चिच्छक्ति, (२) तटस्था शक्ति या जीवशक्ति, और (३) बहिरंगा शक्ति या मायाशक्ति। श्रीकृष्ण चैतन्यदेवके द्वारा प्रकटित 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' अद्वय-तत्त्वके स्वरूपानु-

बन्धि-शक्तिवैचित्र्यके ऊपर ही प्रतिष्ठित है। यह पूर्णतया मौलिक और सार्वभौम 'सर्वतन्त्र-सिद्धान्त' है, अर्थात् किसी पूर्ववर्ती आचार्य का अनुकरण करनेवाला मतवाद नहीं है, बल्कि यह वेदान्तके सार्व-देशिक सिद्धान्त तथा विभिन्न भाष्यकार आचार्योंके सिद्धान्तोकी सपूर्णता तथा उनमें सुसमन्वयका विधान करनेवाला है।

'अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त'मे स्वाभाविक भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क आचार्यकी भाँति 'स्वतन्त्र' और 'अस्वतन्त्र' दो तत्व नहीं माने गये हैं। श्रीनिम्बार्कके मतसे ईश्वर—स्वतन्त्र तत्व, जीव और प्रकृति अस्वतन्त्र तत्व है, परन्तु अस्वतन्त्र तत्वकी सत्ता स्वतन्त्र तत्वके ऊपर निर्भर करती है। श्रीनिम्बार्कके मतसे श्रीपुरुषोत्तमकी सत्ता जीव और प्रकृतिकी सत्तासे अतिरिक्त है। श्रीमध्वाचार्य भी जीव और ब्रह्मको दो पृथक् तत्व कहते हैं। श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने कहा है कि,—“जीव और प्रकृतिको पृथक् तत्व कहने पर 'अद्वयताकी हानि होती है। परन्तु उनको शक्तिरूपमें विचारने पर अद्वयतत्वकी सम्यक् स्फूर्ति और प्रतिष्ठा होती है। शक्ति और शक्तिमान्की अविच्छेद्यताके ऊपर ही 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' प्रतिष्ठित है। शक्तिमान्से शक्तिको पृथक् नहीं कर सकते, इसी कारण शक्ति और शक्तिमान् मिलकर ही एक अद्वितीय वस्तु या तत्व है। वस्तु—'विशेष्य' है, और वस्तुशक्ति—'विशेषण' है। 'विशेषण' युक्त विशेष्य ही वस्तु है।” प्रश्न हो सकता है कि, 'विशेष्य' और 'विशेषण' मिलकर ही यदि वस्तु होती है और विशेषणको विशेष्यसे, तथा शक्तिको शक्तिमान्से यदि पृथक् ही नहीं कर सकते, तो पृथक् भावसे शक्तिको स्वीकार करनेकी आवश्यकता ही क्या है ?” श्रीकृष्ण-चैतन्यके अनुचर श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद कहते हैं कि,—“यह वेदान्तियोंका मत नहीं है, क्योंकि, वस्तुके रहते हुए भी मन्त्र-महौषधि आदिके प्रभावसे शक्तिको केवल स्तम्भित होते देखा जाता है। हाथ न जलने पर भी आग दिखलायी देती है। अतएव अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिको पृथक् नामसे अभिहित करना ही युक्तिसंगत है, यद्यपि वैसी दशमें भी

वस्तु और तत्व दो नहीं है। स्वाभाविकी शक्तिकी विचित्रताके द्वारा शक्तिमान्के अद्वयत्वका व्याघात नहीं होता। इसलिये स्वरूपसे अभिन्नरूपमें शक्तिका चिन्तन नहीं किया जा सकता, इस कारण उसका 'भेद' और भिन्नरूपसे चिन्तन नहीं किया जा सकता, इस कारण 'अभेद' है। अतएव शक्ति और शक्तिमान्का 'भेदाभेद' स्वीकृत है, तथा वह 'अचिन्त्य' अर्थात् तर्कयुक्तिके लिये अगम्य होते हुए भी शास्त्रगम्य है। 'अचिन्त्यभेदाभेद' दर्शनमें ब्रह्मके किसी प्रकारका भी भेद स्वीकार्य नहीं है। 'विशिष्टाद्वैतवादी' श्रीरामानुज चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मको अद्वय-तत्व कहते हैं। उनके मतसे ईश्वरके साथ जीव और प्रकृतिका भेद नहीं है, बल्कि तत्व विशेषण-विशिष्ट है, चित् (जीव) और अचित् (जडवर्ग) ब्रह्मके विशेषण है, अर्थात् श्रीरामानुजके मतमें केवल जीव और जगत् ब्रह्मके विशेषण है, परन्तु गौडीय-दर्शनमें ब्रह्मकी समस्त शक्ति ही ब्रह्मका विशेषण है। श्रीरामानुजाचार्य शक्ति और शक्तिमान्में भेद स्वीकार करते हैं, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने शक्ति और शक्तिमान्का 'केवल-भेद' स्वीकार नहीं किया। श्रीरामानुजाचार्यके मतसे चित् और अचित् ब्रह्मके 'स्वगत-भेद' है, परन्तु श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद ब्रह्मका किसी प्रकारका 'भेद' स्वीकार नहीं करते। अतएव क्या विशिष्टाद्वैतवादी श्रीरामानुज, क्या केवल-भेदवादी श्रीमध्व, क्या स्वाभाविक-भेदाभेदवादी श्रीनिम्बार्क—सभी वैष्णवाचार्य के मतसे गौडीय-दर्शनके ब्रह्मका अद्वयत्व स्थापन और उस प्रसंगमें शक्ति-विचारका असाधारण वैशिष्ट्य और मौलिकतत्व है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवके चरणानुचर श्रीश्रीजीवपाद श्रीमध्वके समान जीव और ईश्वरको दो 'नित्य सिद्ध पृथक् तत्व' नहीं कहते। अतएव श्रीमध्वने जिस प्रकार ईश्वरसे जीवका तत्त्वतः 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार किया है, श्रीश्रीजीवपाद उस प्रकार 'अत्यन्त-भेद' स्वीकार नहीं करते। ब्रह्मकी स्वाभाविकी स्वरूप-शक्ति और माया-शक्तिके समान जीवशक्ति भी शक्तिरूपमें ही परमात्माका अंश है, जैसे अग्नि और स्फूर्ति। अग्नित्वमें दोनोंका हो अभेद है,

परन्तु परिमाणादिमें दोनोंका भेद हैं । तथापि शक्ति और शक्तिमान्में अभेद है ।

श्रीमध्वाचार्यने अपने 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय'में (११।७।५१) जो ब्रह्मतर्कके वाक्य उद्धृत किये हैं, उसके द्वारा अचिन्त्य-भेदाभेदवादका सकेत मिलने पर भी श्रीमध्वाचार्यको 'अचिन्त्य भेदाभेदवादी' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्वके समान अभेदके नित्यत्वको स्वीकार नहीं करते । भास्कराचार्य अभेदके नित्यत्व और भेदके सामयिक सत्यत्वको स्वीकार करते हैं । पश्चात्तरमें श्रीमध्वाचार्य भेदके नित्यत्व और अभेदके एकाशमे सत्यत्व को स्वीकार करते हैं । और श्रीनिम्बार्क भेद और अभेद दोनोंके ही समसत्यत्व, समनित्यत्व अर्थात् सर्वकालमे सर्वावस्थामें समभावसे भेदाभेदके नित्यत्वको स्वीकार करते हैं । गौडीय-वैष्णव-दर्शनमें परब्रह्मको स्वरूपाख्य-जीवाख्य-मायाख्य शक्तिका आश्रय एक 'अद्वितीय तत्व'के नामसे स्थापन करनेके कारण वहां एकाधिक तत्वका कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता । इसलिये एकाधिक तत्वके साथ अत्यन्त भेद (जो श्रीमध्वाचार्यका सिद्धान्त है) अथवा किसी व्यावहारिक या प्रातिभासिक एकाधिक तत्वके साथ पारमार्थिक अत्यन्त अभेद या व्यावहारिक भेदाभेद (जो श्रीशंकराचार्यका सिद्धान्त है), अथवा कारणरूपी या कार्यरूपी ब्रह्मके द्विरूप या एकाधिक तत्वके साथ सामयिक भेद या नित्य अभेद (जो श्रीभास्कराचार्यका सिद्धान्त है) अथवा स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र तत्वके साथ समभावसे स्वाभाविक भेद और स्वाभाविक अभेद (जो श्रीनिम्बार्काचार्यका सिद्धान्त है) अथवा कारण और कार्यरूप शुद्ध ब्रह्ममें जो अभेद (जो श्रीबल्लभाचार्यका मत है)—इनमें किसीका भी अनुकरण अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तमें नहीं है । भास्कराचार्यको वास्तवमें 'भेदवादी' नहीं कह सकते । उनको 'अभेदवादी' कहना ही सगत है । इसी प्रकार श्रीमध्वाचार्यको ब्रह्मतर्कमें उद्धृत वाक्यके प्रमाणसे 'भेदाभेदवादी' नहीं कह सकते । उनको 'केवल-भेदवादी'

कहना ही ठीक होगा । श्रीनिम्बार्काचार्यके भेदाभेदवादमें भेदवाद और अभेदवाद दोनों ही स्वाभाविक होने पर जीवगत दोष ब्रह्मके लिए स्वाभाविक हो जाते हैं, और ब्रह्मके सृष्टिकर्तृत्वादिगुणसमूह जीवके लिये स्वाभाविक हो जाते हैं । श्रीवल्लभाचार्यने केवलाद्वैत-मतवादोक्त कार्य (जीव-जगत्)के मिथ्यात्वके आश्रयसे कार्यकारण (जीव-जगत् और ब्रह्म)के अभेदवादका खण्डन करते हुए कार्य-कारणरूप शुद्ध (माया-संस्पर्शहीन) ब्रह्मके अभेदत्व या अद्वयत्वको स्थापित कर 'शुद्धाद्वैतवाद' को प्रकटित किया है । उनके मतसे जीव—अनेक होनेके इच्छुक सच्चिदानन्द ब्रह्मके तिरोभूत आनन्दाश चिदश है । ब्रह्म ही जगत्-कार्यरूपमें अविकृत परिणामको प्राप्त है । गौडीय-दर्शनके शक्ति-सिद्धान्तकी सूक्ष्मता और शक्ति-परिणामवादकी स्वीकृति इस मतवादमें न होनेके कारण इसमें असम्पूर्णता दीख पड़ती है । जीवशक्ति-युक्त अद्वयज्ञान-तत्त्वका शक्त्यश जीव, शक्तिमान् स्वाशतत्वसे जीवशक्तिका वैशिष्ट्य दिखलाता है । बहिरगा मायाशक्ति और उससे परिणत जगत्, अन्तरगा स्वरूपशक्ति और उससे परिणत भगवद्धामादि, तथा स्वरूप-शक्तिकी सन्धिनी, सवित् और ह्लादिनी-वृत्तिके प्रभावका विश्लेषण—गौडीय-दर्शनमें शक्ति-तत्त्वका अपूर्व वैज्ञानिक सुसूक्ष्म विचार है । साथ ही उस समस्त शक्ति-वैचित्र्य अद्वयज्ञान-तत्त्वकी अद्वयतामें बाधा न देकर उसका परिपोषक भी है । श्रीश्रीधरस्वामिपादद्वारा कथित वस्तुका अश जीव, वस्तुकी शक्ति माया, वस्तुका कार्य जगत्—सभी वस्तु ही है । इस 'अद्वयवस्तुवाद' या 'अद्वयतत्त्ववाद'में भी निरशवस्तुका अश, अविकृत वस्तुका कार्य-(चिकार या परिणाम) आदि बातें-वस्तुतत्त्व-विज्ञानमें असम्पूर्णता लाती हैं, परन्तु स्वरूपानुबन्धिनी अर्थात् स्वाभाविकी शक्ति-वैचित्री वस्तु या तत्त्वकी अखण्डता या अद्वय-तत्त्वको परिस्फुट करके शक्तिके कार्यसमूहको सुसम्पन्न करती है । अद्वयतत्त्वकी शक्ति स्वीकार करने पर (श्रुतिप्रमाणके अनुसार) पर-तत्त्वके अद्वयत्वकी किसी प्रकार हानि नहीं होती तथा जीव और ब्रह्ममें

नित्य भेद और अभेदका स्वाभाविकत्व स्वीकार करनेमें जो सब दोष-प्रसंग उपस्थित होते हैं, अथवा अत्यन्त भेद स्वीकार करनेमें श्रुति, वेदान्त, और उसके अकृत्रिम भाष्यरूपी श्रीमद्भागवतके सिद्धान्तके साथ जो विरोध उपस्थित होता है, अथवा जीवको ‘शक्ति’ न कहकर केवल ‘चिदश’ या ‘वस्त्वश’ कहनेसे जो निरश अद्वयतत्त्वकी अश-कल्पना करनी पड़ती है, उसे भी मानना नहीं पड़ता और समस्त शब्द-प्रमाण की सुसंगति और मर्यादाकी रक्षा होती है। गौडीय दार्शनिकोंके ‘अचिन्त्यभेदाभेद-सिद्धान्त’में एक साथ ही श्रुति, वेदान्त और सूत्रोंके यथार्थ भाष्यके सिद्धान्तोंका समन्वय तथा समस्त आचार्योंके श्रौत-सिद्धान्तोंकी सम्पूर्णता सिद्ध होती है। केवलाद्वैत-मतके प्रवर्तक श्रीमत् शंकराचार्यके मतवादमें भी जो कुछ श्रुति-सम्मत है, उसका श्रीसनातनगोस्वामिपादने श्रीचैतन्यदेवकी शिक्षाका अनुसरणकर ‘श्री-वृहद्भागवतामृत’में तथा श्रीश्रीजीवगोस्वामिपादने ‘सन्दर्भ’ में आदर किया है, भक्त्येकरक्षक (केवल भक्तिकी मर्यादाकी ही रक्षा करनेवाले) श्रीश्रीधरस्वामिपादके तथा श्रीविष्णुस्वामिपादके शुद्धाद्वैतपरक सिद्धान्तकी, तथा विशिष्टाद्वैतवादाचार्य श्रीरामानुजके और तत्त्ववादगुरु श्री-मध्वके सिद्धान्तकी संगति, समन्वय और सम्पूर्णता अचिन्त्यभेदाभेदके सिद्धान्तमें दिखलायी गयी है। अतएव, ‘अचिन्त्यभेदाभेदवाद’ही सर्व-शास्त्र-समन्वयकारी मौलिक सार्वभौम सर्वतन्त्र-सिद्धान्त-सम्राट् है।

## एकसौ-पाँचवाँ परिच्छेद परमपुरुषार्थ या प्रयोजन-तत्त्व

श्रीचैतन्यदेव कहते हैं,—“अपनी इन्द्रियोकी प्रीतिकी इच्छाका नाम ही ‘काम’ है और श्रीकृष्णकी इन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही—अप्राकृत ‘प्रेम’ है।” जीवकी आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा ही धर्म, अर्थ, काम या मोक्ष की कामनाके रूपमें चार पुरुषार्थ (पुरुष = जीव + अर्थ = प्रयोजन या काम्य) हैं। स्वर्गादि सुखकी कामनाको ‘धर्म-कामना’ कहते हैं। अर्थलाभके उद्देश्यसे भगवान्की आराधनाकी छलना, अथवा जिस किसी कामना की सिद्धिके उद्देश्यसे कामना पूर्ण करनेवाले देवताकी पूजा अथवा ससार की यन्त्रणासे शान्ति-लाभकी इच्छा आदि समस्त ही ‘काम’ हैं। साधारणतः लोग ससारमें धर्म या पुण्य-कामनाकी सिद्धिके लिये सूर्यदेवताकी पूजा और अर्थ-कामनाकी पूर्तिके लिये सिद्धिदाता देवता गणेशकी पूजा तथा पुत्र, राज्य, अभ्युदय आदिकी कामना करके शक्तिकी पूजा, और मोक्ष-कामना करके रुद्रकी पूजा किया करते हैं। फिर कोई कोई विष्णुको कर्मधीन और कर्मफल-दाता समझकर विष्णुकी पूजा करते हैं, कोई उनको दंडमुड-विधाता परम ऐश्वर्यशाली समझकर पूजा करते हैं, इसमें भी उपास्य वस्तुमें प्रेमका अभाव लक्षित होता है।

श्रुतिने परम तत्त्वको “रसो वै स”, “अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु” प्रभृति मन्त्रोंमें निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि परतत्त्व नपुंसक ब्रह्म मात्र नहीं है। अथवा वे पुरुष-भोग्या प्रकृति या शक्तिरूप नहीं हैं, वे माया और जीवशक्तिके ईश्वर परमात्म-मात्र नहीं हैं, वे परिपूर्ण-सर्वशक्ति-विशिष्ट, स्वरूप-शक्तिके साथ लीलामय, रसमय, मधुमय, लीलापुरुषोत्तम हैं। वे परिपूर्णतम स्वरूपमें चिद्-विलासी, सच्चिदानन्द-तनु, अप्राकृत कामदेव, स्वराट् और अद्वितीय भोक्ता हैं।

वे प्रेम करते हैं, प्रेम चाहते हैं तथा प्रेमके वशीभूत होते हैं । वे सर्वपेक्षा घनिष्ठतम और प्रियतम हैं । ऐसा नहीं कि, वे केवल ही सुदूरवर्ती हैं, अथवा ऐसा भी नहीं कि, जब उपासक निकट आये हुए होते हैं तब वे भी खूब बड़े आदमियोंकी तरह ऐश्वर्यसे पूर्ण होकर भय और सभ्रमके पात्रकी भाँति रहते हों । सूर्यको आलोकसे पृथक् नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह उसके स्वरूपका ही धर्म है, इसी प्रकार रसमय परतत्वकी प्रेम-वृत्तिको उनसे पृथक् नहीं किया जा सकता । क्यों उनको प्रेम किया जाता है, इसका कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह प्रियत्व-धर्म उनका स्वरूपानुबन्धी गुण है । वे केवल प्रीति ही स्वीकार करते हों, सो नहीं है, वे प्रीतिके वशीभूत हो जाते हैं । यही उनका अद्वितीय वैशिष्ट्य है । इस जड़ इन्द्रियके द्वारा उनको (कृष्णको) प्रेम नहीं किया जाता । अथवा इस जड़ इन्द्रियको भी वे प्रेम नहीं करते । यह प्रेम बद्ध या तटस्थ दशामें अवस्थित अणुचित् जीवके लिये संभव नहीं, तथापि उनकी ही आनन्ददायिनी स्वरूपशक्ति ह्लादिनीकी कृपाशक्ति जिस इन्द्रियमें अवतरित हुई है, उसी इन्द्रियके द्वारा परतत्व वस्तुका साक्षात्कार प्राप्त होता है । जिस शक्तिके द्वारा परतत्वसे प्रेम किया जाता है तथा उनके द्वारा आकृष्ट हुआ जाता है, जो शक्ति परतत्व और जीव दोनोंको सुखी करती है, उस शक्तिका प्रधान और प्रथम धर्म है 'करुणा' । जीवकी कोई भी क्षमता नहीं है कि वह परतत्वको पकड़ या छू सके । तथापि उस ह्लादिनी-शक्तिका प्रकाश साधु या महत्के आकारमें अवतीर्ण होकर जीवको परतत्वके साथ योगयुक्त करते हैं । ह्लादिनी-शक्तिकी कृपासे ह्लादिनीके साथ तादात्म्यको प्राप्त इन्द्रिय परतत्वको सुखी कर सकती है ।

ह्लादिनी-शक्तिकी जो सेवा है,—परतत्व श्रीभगवान्को 'सुखी' देखना, वह तब उस इन्द्रियमें उतर आती है । सभी स्थानोंमें, सभी कालोंमें, सभी पात्रोंमें और सभी अवस्थाओंमें वे ही प्रेमकी वस्तु है ।



कर्म-ज्ञान-योगादि साधन 'उपाय'-मात्र है, 'उपेय' नहीं है, अर्थात् वही जीवका चरम प्रयोजन नहीं है। परन्तु 'प्रेमभक्ति' उपाय और उपेय है, अर्थात् वही 'प्रयोजन' है। प्रेमभक्तिके द्वारा जो प्राप्त होगा, वह भी 'भक्ति' ही है, उसीका दूसरा नाम परतत्त्वमें 'प्रीति' है। कर्म-ज्ञान-योगादिका मार्ग सार्वजनिक नहीं अर्थात् उनमें सबका अधिकार नहीं। विकलेन्द्रिय या अर्थहीन व्यक्ति यज्ञादि-कर्म नहीं कर सकते। भूख, नीच, पापी, भोगी और रोगी व्यक्ति ज्ञान-योग आदि का अनुष्ठान नहीं कर सकते, परन्तु भक्तिका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं।

भक्तिके आभासमें ही अर्थात् तुच्छ फलरूपमें ही कर्म-ज्ञानादिके चरम प्राप्य सभी प्रयोजन अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। **भक्ति स्वतः ही सुखरूपा है, अतएव अहेतुकी है;** कर्म-ज्ञानादि फलरूपमें सुखकी आकांक्षा करते हैं, इसलिये उनके अनुष्ठानमें 'हेतु' रहता है। जहाँ स्वयं 'सुख' ही साधन और साध्य है, वहाँ फिर आत्मसुखानुसन्धानचेष्टा-रूपी हेतु नहीं रह सकता। **भक्ति करनेके समान वैसा सुख किसी भी वस्तुमें नहीं है और भक्ति न करनेके समान वैसा दुःख भी किसी वस्तुमें नहीं है।** इसलिए भक्ति 'अप्रतिहता' है, अर्थात् उसमें किसी प्रकार भी कोई बाधा नहीं प्राप्त होती, बल्कि बाधा प्राप्त होनेपर इसका बेग और भी अनेकगुना बढ़ जाता है।

भक्ति—परमधर्म है, क्योंकि, यह 'परतत्त्व'के एकमात्र सन्तोषके लिये की जाती है। निवृत्तिमात्र-लक्षणसे युक्त धर्ममें भी विमुखता रहती है, अर्थात् परतत्त्वके सन्तोषकी चिन्ता नहीं रहती, अपने स्वार्थकी चिन्ता ही अधिक परिमाणमें रहती है।

भक्तिका अनुष्ठान सर्वत्र ही होता है। सर्वशास्त्र, सर्वकर्ता, सर्वदेश, सर्वकरण, सर्वद्रव्य, सर्वकार्य और सर्वकालमें भक्तिका अनुष्ठान होता है। सर्वदा भक्तिका अनुशीलन होता है, सृष्टिमें, चतुर्विध प्रलयमें, चारो युगोंमें, सर्वावस्थामें—(मातृगर्भ, बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था मृत्यु, स्वर्ग और नरकमें) भक्तिका अधिष्ठान है।

भक्ति—सर्वकामप्रदा, अशुभहारिणी, सर्वविघ्नविनाशिनी, सर्वताप-क्लेश-नाशिनी, अप्रारब्धहारिणी, पापवासनाहारिणी, अविद्याविनाशिनी, सर्वतोषणी, सर्वगुणदायिनी, सर्वसुखप्रदायिनी, अभक्तिविधातिनी, स्वतः ही निर्गुणा, निर्गुणताविधायिनी, स्वप्रकाश-स्वरूपा, परमसुख-स्वरूपा, रतिप्रदा, प्रेमैक-सर्वस्वा, भगवद्वशकारिणी और प्रयोजन-पराकाष्ठा-प्रदायिनी है।

केवल दुःखनिवृत्ति पुरुषार्थ नहीं है, परमानन्दकी प्राप्ति ही यथार्थमें असली पुरुषार्थ या मुक्ति है। 'मुक्ति'-शब्दसे यहाँ वास्तवमें परमानन्दकी प्राप्ति ही लक्षित होती है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्—तीनों आविर्भाव ही आनन्दस्वरूप है, इनकी प्राप्ति मुक्ति है। यह भक्ति या आनन्दप्राप्ति सभी पूर्ण है, क्योंकि परतत्त्वके सारे आविर्भाव ही पूर्ण हैं। ब्रह्ममें निजी शक्ति-या धर्मका प्रकाश न होनेके कारण ब्रह्म निर्विशेष है। परमात्मामें शक्तिका या धर्मका आशिक प्रकाश है। परमात्मासे भी भगवान्में प्रियत्वधर्म-गुण सर्वतोभावेन अधिक होनेके कारण श्रीभगवान् गुणविचारसे सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है। श्रीभगवान्के सविशेषत्वमें चमत्कारिता या आनन्दवैचित्र्य है। श्रीभगवान् सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी निरपेक्ष नहीं है, वे उपासककी प्रीति चाहते हैं और स्वयं भी प्रीति करते हैं। श्रीभगवान्को सुखी करना ही मूल प्रयोजन है, यह सही है, परन्तु इसमें भी विशेषता यह है कि भगवान् जिस प्रकारसे सुखी होना चाहते हैं, उस प्रकारसे उनको सुखी करनेकी चेष्टा करना ही 'प्रीति' है। जिस किसी भी प्रकारसे उनको पाने—उनकी सेवा करने—प्रेम करनेपर वे सुखी होते हैं, (उनकी इच्छाके विरुद्ध या अपनी सुख-कामनाको लेकर करनेसे नहीं), उसी प्रकार उनको पानेकी इच्छा ही प्रीतिको बढ़ाती है, इसे 'स्वार्थशून्य-प्रेम' कहते हैं। इसमें अपनी इन्द्रियोकी तृप्तिकी कामना विलुप्त हो जाती है। सुख—माया-शक्तिके सत्त्वगुणकी वृत्ति है, और भगवत्प्रीति—स्वरूपशक्तिकी वृत्ति है। प्रीति नित्यसिद्ध भगवत्परिकरगणमें स्वतः सिद्ध-

रूपमे नित्य वर्तमान है। उनकी कृपा-परम्परासे योग्य निर्मल जीवात्मामें प्रीतिका आविर्भाव होता है। यह प्रीति ही सर्वोत्तम परमानन्दकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय और उपेय है।

प्रेमके सम्बन्धमें पृथ्वीमें विकृत धारणाका प्रचार हो रहा है। इसीलिए श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने गाया है,—

“कि आर बलिब तोरे मन !

मुखे बल’ ‘प्रेम’, ‘प्रेम’, वस्तुतः त्यजिया हेम,

शून्यग्रन्थि अंचले बन्धन ॥

अभ्यासिया अभ्रुपात, लम्फझम्प अकस्मात्,

मूच्छांप्राय थाकह पड़िया ।

ए लोक बंचिते रंग, प्रचारिया असत्-संग,

कामिनी-काञ्चन लभ’ गिया ॥

प्रेमेर साधन—‘भक्ति’, ता’ते नैल अनुरक्ति,

शुद्धप्रेम केमने मिलिबे ?

दश-अपराध त्यजि’, निरन्तर नाम भजि’

कृपा ह’ले सुप्रेम पाइबे ॥

ना मानिले सुभजन, साधुसङ्गे संकीर्तन,

ना करिले निर्जने स्मरण ।

ना उठिया वृक्षोपरि, टानाटानि फल धरि’,

दुष्टफल करिले अर्जन ॥

अकैतव कृष्णप्रेम, येन सुविमल हेम,

एइ फल नृलोके दुर्लभ ।

कैतवे वंचना-मात्र, ह्मओ आगे योग्य पात्र,

तबे प्रेम हइबे सुलभ ॥

कामे प्रेमे देख भाइ, लक्षणेते भेद नाइ,

तबु ‘काम’ ‘प्रेम’ नाहि ह्य ।

तुमि त’ बरिले काम, मिथ्या ताहे ‘प्रेम’ नाम,

आरोपिले, किसे शुभ हय ?

\* \* \*

श्रद्धा है ते साधुसंगे, भजनेर क्रिया-रंगे,  
निष्ठा-रुचि-आसक्ति-उदय ।

आसक्ति हइ ते भाव, ताहे प्रेम-प्रादुर्भाव,  
एइ क्रमे प्रेम उपजय ॥”

—‘कल्याण-कल्पतरु’

[ रे मन, तुमसे मैं क्या कहूँ ? मुखसे तुम ‘प्रेम-प्रेम’ करते हो, और वस्तुतः काचनको छोड़कर पल्लेमें खाली गाँठ बाँधते हो। आँसू बहानेका अभ्यास करके अकस्मात् कूद-फाँद मचाकर मूर्छित होनेका स्वाँग रचकर पड़ रहते हो। इस प्रकार लोगोको ठगकर असत्सगका प्रचार कर कामिनी-काचनको प्राप्त करते हो। अरे ! प्रेमका साधन ‘भक्ति’ है, उसमें यदि अनुराग नहीं हुआ तो शुद्ध प्रेम कैसे मिलेगा ? दस प्रकारके अपराधोका त्याग करके, निरन्तर भगवान्‌के नामका भजन करो, उनकी कृपासे सुप्रेमकी प्राप्ति होगी। साधुसगमें सकीर्तन रूप जो सुभजन है, उसे तुमने स्वीकार नहीं किया और निर्जनमे भगवान्‌का स्मरण भी नहीं किया। वृक्षके ऊपर चढ़े बिना नीचेसे फल पकड़नेके लिये डालोको खीचा-ताना, जिससे अच्छा फल तो प्राप्त नहीं हुआ, खराब फल ही हाथ लगे। अरे ! कपटरहित-कृष्णप्रेम मानो निर्मल सोना है, यह फल नर-लोकमें दुर्लभ है। कपटमें तो वञ्चनामात्र है, पहले योग्य पात्र बनो, तभी वह प्रेम सुलभ होगा। देखो भाई, काम और प्रेममें देखनेमें भेद नहीं है, फिर भी ‘काम’ ‘प्रेम’ नहीं होता। तुमने ‘काम’को वरण किया है, उसपर मिथ्या ‘प्रेम’ नाम आरोपित करना कैसे शुभ होगा ? श्रद्धासे साधुसग, साधुसगसे भजन-क्रिया, भजन-क्रियासे निष्ठा, निष्ठासे रुचि, रुचिसे आसक्ति, आसक्तिसे भाव तथा भावसे प्रेमका आविर्भाव होता है। प्रेमके उत्पन्न होनेका यही क्रम है। ]

“विश्वप्रेम अथवा मनुष्यका मनुष्यके प्रति प्रेम केवल ‘आत्म-प्रेम’का विकार मात्र है। एक आत्माका अन्य आत्माके साथ जो प्रेम है, वही एकमात्र आत्मप्रेमका आदर्श है। प्रीतिके स्वरूपको न समझकर जिन्होंने ‘मनोविज्ञान’ और ‘प्रीतिविज्ञान’ आदि लिखा है, वे चाहे जितनी ही युक्तियाँ क्यों न उपस्थित करें, उन्होंने भस्ममें धीकी आहुति देनेके समान व्यर्थ ही श्रम किया है। उन्होंने दम्भमें मत्त होकर केवल अपनी प्रतिष्ठाका संग्रहमात्र किया है—उनसे जगत्का कोई उपकार तो दूर रहे, उन्होंने अधिकतर असंगलकी ही सृष्टि की है। एक विस्फुलिंग अर्थात् छोटी-सी चिनगारी जिस प्रकार दाह्य-विषय प्राप्त करके क्रमशः महान् अग्निका रूप धारणकर जगत्को जलानेमें समर्थ होती है, उसी प्रकार एक जीव भी प्रेमके प्रकृत विषय जो श्रीकृष्णचंद्र है, उनको प्राप्तकर प्रेमकी महान् बाढ़ उत्पन्न करनेमें समर्थ होता है।”

“परमेश्वरके विशुद्ध-गुणोका कीर्तन और उनके प्रेममें सबके साथ भ्रातृत्वकी स्थापना ही ‘विशुद्ध-धर्म’ है। क्रमशः संस्थापित विभिन्न-धर्मोंके हेय-अंशोंके दूर होनेपर सम्प्रदाय-विशेषके भजन-भेद और पारस्परिक विवाद नहीं रह सकते। तब सारे वर्ण, सभी जाति, सभी देशोंके मनुष्य एकत्रित होकर परस्पर भ्रातृत्वके साथ परमाराध्य परमेश्वरका नाम-कीर्तन सहज ही कर सकेंगे। तब कोई किसीको चाण्डाल कहकर घृणा नहीं करेंगे, तथा अपने जात्याभिमानमें मुग्ध होकर अन्य जीवोंके साथ अपने साधारण भ्रातृत्वको भूल नहीं सकेंगे; तब श्रीहरिदास प्रेम-रसका घड़ा लेकर श्रीश्रीवासके मुखमें ढालते रहेंगे, तथा श्रीश्रीवास श्रीहरिदासकी चरण-रेणुको सर्वांगमें मलकर ‘हा चैतन्य ! हा नित्यानन्द !’ कहकर सहज ही नृत्य करेंगे।”



## एकसौ-छठाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म

परम-विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी शिक्षासे अनुप्राणित होनेके बाद उनकी स्तुति करते हुए इस प्रकार कहा है,—

“वैराग्य-विद्या-निजभक्ति-योग, शिक्षार्थमेकः पुरुष पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥”

[जो एक करुणासागर सनातनपुरुष वैराग्य (विप्रलम्भ), विद्या (परविद्या-भक्ति) और निजभक्तियोग (उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी प्रेमभक्ति)की शिक्षा प्रदान करनेके लिए ‘श्रीकृष्णचैतन्यविग्रह’के रूपमें अवतीर्ण हुए, मैं उनके शरणापन्न होता हूँ ।]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी ‘आदि’, ‘मध्य’ और ‘अन्त्य’—इस त्रिविध प्रकटलीलाका प्रत्येक आचरण साधक और सिद्ध की—बद्ध-मुमुक्षु और मुक्तकुलकी आदर्श-शिक्षाकी प्रदर्शनी स्वरूप है । श्रीचैतन्यचरितमे एक ओर जिस प्रकार शक्त्यावेशावतारसे लेकर सर्वावतारी स्वयं भगवत्तत्त्वकी लीला-पराकाष्ठा तक प्रकटित हुई है, दूसरी ओर उसी प्रकार जीवके गौण साम्मुख्य या साम्मुख्यके द्वार (कर्मापण) से लेकर साक्षात् साम्मुख्य-पराकाष्ठाके (प्रेमभक्तिके) तथा नित्यमुक्तोके लिए साध्य-शिरोमणिके (प्रेमविलासविवर्तके) भावसम्पत् पर्यन्त मूर्त होकर प्रकट हुए हैं ।

जन्मयात्रा-कालमें चन्द्रग्रहणके बहाने श्रीनवद्वीपके आबाल-वृद्ध-वनिताके जित्वा-मरु-प्रागणमें श्रीहरिनामकी अवतारणा, तथा आनुषंगिक रूपसे अलक्ष्यगतिसे समकालीन पृथ्वीकी वहिर्मुख अवस्थाकी अभूतपूर्व युगान्तर-साधन-लीला श्रीकृष्णचैतन्य-रचित ‘श्रीशिक्षाष्टक’की “पर विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम्” वाणीकी विजय-वैजयन्ती है । शैशवम

श्रीहरिनाम सुनकर रोना बन्द करनेकी लीलामें उनका श्रीकृष्णसकीर्तन-जनकत्व, तथा अन्नप्राशन-सस्कारके समय अपनी रुचि-परीक्षामें 'श्रीमद्भागवत'के आलिंगनकी लीलामें 'विद्या भागवतावधि'—यह शिक्षासार प्रकटित हुआ है। पुनः सर्प-धारणलीला आदिके द्वारा शेष-शयन-लीलादि भगवत्-लीला भी प्रकटित हुई है। बाल्यकालमें चोरी और दुरन्त लीला, तैथिक ब्राह्मणके नैवेद्यकी भक्षणलीला, एकादशीके दिन श्रीजगदीश हिरण्यपण्डितके विष्णु-नैवेद्यकी भक्षणलीला, वर्जित बर्तनके ऊपर बैठकर दत्तात्रेयका आवेश, तथा अन्य समय कपिलके भावमें श्रीशचीमाताको उपदेशदान-लीला, विष्णुके पलगपर आरोहण-लीला, महाप्रकाश-लीला, काजीदमन-लीला, षड्भुजप्रदर्शन-लीला आदिमें उनकी भगवत्ता परिस्फुटित हुई है। और दूसरी ओर ज्येष्ठभ्राता श्रीविश्वरूप, श्रीअद्वैत, श्रीश्रीवास आदि वैष्णवोंके प्रति मर्यादा-दान-लीला, गंगाके घाटपर वैष्णववृन्दकी विविध परिचर्यालीला, यथाविधि श्रीविष्णुपूजा, श्रीतुलसी-सेवा, विष्णुनैवेद्य-ग्रहण, श्रीशचीमाताको श्रीएकादशीके दिन अन्नग्रहण-निषेध, स्वयं ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण और छात्रोंको ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणादि सदाचार-शिक्षादान, अन्तर्यामी दृष्टिसे दीन-दरिद्रोंकी सत्कार-लीला, सपरिवार अतिथि-सेवा, वैष्णव-सेवा, सहर्धमिणी श्रीलक्ष्मीदेवीके द्वारा श्रीविष्णु-वैष्णवकी सेवाका आदर्श प्रकट करना, परस्त्रीके साथ सभाषणादिमें सब प्रकारसे सतर्कता अवलम्बन करना, पूर्ववर्गमें विजयपूर्वक अध्यापन करना, अपनी शुक्लवृत्तिसे अर्थसंग्रह-लीला, शीतपनमिश्र आदिको साध्य-साधन-तत्त्वका उपदेश, दिग्विजयी-जय-लीलाके द्वारा प्राकृत विद्या और प्रतिभाका व्यर्थत्व और अमानी होकर मान देनेकी शिक्षाका दान, श्रीलक्ष्मीदेवीकी वैकुण्ठ-विजयवार्ता सुनकर शरणागत गृहस्थकी निज-कर्मानुरूप फल-स्वीकृति तथा भगवदनुकम्पा समझकर काय-मन-वचनसे भगवत्सेवामें नियोगकी शिक्षा देनेकी लीला, दूसरी बारकी विवाह-लीलामें बुद्धिमन्त खा और श्रीसनातन मिश्रके वैष्णवगृहस्थोचित

परिच्छेद ] श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौम धर्म ४११

आचारके आदर्शका प्रकट करना , 'गयाधाम' गमनके समय विप्रपादोदक-पानलीला तथा श्रीविष्णुपादपद्ममें पितृश्राद्धलीला , और श्रीईश्वर-पुरीपादके अर्थात् महत्के पादाश्रयलीलामें विष्णुतोषणके उद्देश्यमें कर्मर्पणकारी वैष्णव-गृहस्थका आदर्श, तथा महत्की कृपासे आरोपसिद्धा भक्तिसे लेकर स्वरूपसिद्धा भक्तिके उदयरूप भागवत-शिक्षाश्रोको प्रकटकर श्रीगौरहरिने नरलीलाका समन्वय किया है ।

दिग्विजयीके प्रति श्रीमन्महाप्रभुका उपदेश है—

‘सेइ से विद्यार फल जानिह निश्चय ।

‘कृष्णपादपद्मे यदि चित्त-वित्त रय’ ॥’

—चै० भा० आ० १३।१७८

[ निश्चयपूर्वक विद्या सुफल तभी समझो जब कि श्रीकृष्णके पादपद्ममें चित्त-वित्त लग जाय । ] छात्रोके प्रति उनकी शिक्षा है —

“यावत् आछये प्राण, देहे आछे शक्ति ।

तावत् करह कृष्णपादपद्मे भक्ति ॥

कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण प्राण-धन ।

चरणे धरिया बलि,—‘कृष्णे देह मन’ ॥”

—चै० भा० म० १।३४२, ३४३

[ जबतक देहमें प्राण और शक्ति है, तबतक कृष्णपादपद्ममें भक्ति करो । कृष्ण ही माता है, कृष्ण ही पिता है, कृष्ण ही प्राणधन है । मैं तुम्हारे पैर पकड़कर कहता हूँ, तुम कृष्णमें अपना मन लगाओ । ]

“ये पडिला, सेइ भाल, आर कार्य नाइ ।

सबे मेलि ‘कृष्ण’ बलिवाड एक ठाँइ ॥”

—चै० भा० म० १।३६३

[ जो पढ लिया सो पढ लिया, अब अधिक पढनेका प्रयोजन नहीं है । सब एक साथ एक जगह ‘कृष्ण कृष्ण’ बोलें । ]



व्याकरणके प्रत्यक वर्ण, धातु, सूत्र सभी श्रीकृष्णनाम-परक है— यह चरमशिक्षा श्रीगौरहरिने अपनी अध्यापकवर्य-लीलाके उपसहारके समय जगत्के जीवोको प्रदान की है। यही सर्व-अध्यापकोके शिरोमणि जगद्गुरुकी छात्रोपम समस्त जीवजगत्के प्रति उनकी शिक्षाका सार है। श्रीश्रीजीवगोस्वामि-प्रभुपादने जगद्गुरुकी इसी शिक्षाका अवलम्बन करके ही श्रीहरिनामपरक श्रीहरिनामामृत-व्याकरणकी रचना की है।

श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदासके प्रति श्रीमहाप्रभुका श्रीनवद्वीपमें घर-घर जाकर “बल कृष्ण, भज कृष्ण, कर कृष्णशिक्षा” (चै० भा० म० १३।६), अर्थात्—“कृष्ण बोलो, कृष्ण भजो, कृष्णकी शिक्षा लो” की भीख मागने तथा प्रतिदिन सायकाल उसके फलाफलका अर्थात् बहिर्मुख जीवोकी कृष्णाभिमुखी-गतिका हिसाब-किताब करनेका आदेश सर्वशिक्षाके गुरु श्रीगौरसुन्दरकी अत्यन्त उदार एवं महादानपूर्ण जीवशिक्षाका एक अभूतपूर्व आदर्श है। इसी कृपाके महाप्लावनके महान् आवर्तमें पड़कर महापापी जगाइ-मघाइ भी ‘महाभागवत’ हो गये। श्रीगौरहरिने क्षमा और कृपाके द्वारा अपने निन्दकोसे बदला लेनेकी आदर्श-शिक्षा दी है। मायावादी सन्यासी, अमोघ, अभिशाप-प्रदानकारी ब्राह्मणादिके प्रति उनके व्यवहारमें यह शिक्षा प्रकटित हुई है। उन्होंने बहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता और सहिष्णुता अपनानेकी शिक्षा दी है। परन्तु जब श्रीहरितोषणकारीके प्रति द्रोह उपस्थित हुआ है, तब ‘चक्र, चक्र’ पुकार कर ‘श्रीसुदर्शन’-चक्रकी आह्वान-लीला, काजीदमन-लीला, भागवती देवानन्द दड-लीला, श्रीशचीमाताके अपराधकी (?) मुक्ति-लीला, ‘कहाँ रे रावणा’ कहकर क्रोध प्रकट-लीला (चै० च० म० १५।३४), ‘खड-जाठिया बेटा’ श्रीमुकुन्द दत्तके चिद्-जड-समन्वयवादमें असहिष्णुता-प्रकाश (चै० भा० म० १०।१८५) आदि कृष्णको तुष्टि प्रदान करनेवाली शुद्धभक्तिकी शिक्षाके प्रचारमें कभी वे पीछे नहीं हटे। श्रीगौरहरिने श्रीपुडरीक विद्यानिधि, श्रीरायरामानन्द और श्रीखंडके राजवैद्य श्रीमुकुन्द दासके आदर्शके (चै० च० म० १५।११६-१२७) द्वारा

यह शिक्षा दी है कि विषयीवत् रहते हुए अन्तर्निष्ठा और बाहर लोक-व्यवहारके साथ हरिभजन ही बहिर्मुख जगत्में भजनचातुर्य है। सपरिकर श्रीश्रीवासपण्डितके द्वारा उन्होंने वैष्णव-गृहस्थकी आदर्श-शिक्षा प्रकट की है। फिर हरिभजनकी प्रतिकूलता मिटानेके लिये साधकोके सामने नित्यसिद्ध निजजन श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरघुनाथकी साधनलीलाकी शिक्षाका उद्घाटन किया है। उन्होंने अपनी दीनतामयी सन्यासलीलासे उन्मुख व्यक्तिके सामने श्रीकृष्णानुसन्धानकी शिक्षाका प्रचार किया है, तथा बहिर्मुख लोगोके सामने ऐश्वर्य दिखलाकर उनको मगल-मार्गकी ओर आकृष्ट किया है। सन्यासलीलाके पूर्व सबके लिये उनकी यही शिक्षा थी कि—

“यदि आमा’ प्रति स्नेह थाके सबकार ।  
तबे कृष्ण व्यतिरिक्त ना गाइबे आर ॥”

—चै० भा० म० २८।२७

[ यदि मेरे प्रति सबका स्नेह हो तो कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी न गाना । ]

श्रीगौरहरि ही बगदेशमें पारमार्थिक रगमचके तथा नगर-सकीर्तन और हरि-सकीर्तनके आदि प्रवर्तक हैं। उनके श्रीचरणारविन्द-मकरन्दके लोलुप सेवकगण पारमार्थिक मौलिक गौडीय-साहित्य और वैष्णव-पदावली-कीर्तनके आदि सूत्रधार हैं। व्याकरण (‘श्रीहरिनामामृत’), काव्य, नाटक, अलंकार, छन्द, दर्शन, स्मृति, इतिहास, परमार्थनीति, पारमार्थिक विज्ञान (‘श्रीहरिभक्तिविलास’ देखिये)—सभी विषयों में वे आदर्श मौलिक शिक्षक हैं। श्रीगौरहरिने तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्य, गीत और वाद्यको व्यसनात्मक जडविलाससे सर्वोत्कृष्ट श्रीकृष्णके तोषणात्मक चिद्द्विलासमें परिणत करनेकी आदर्श-शिक्षाका प्रचार किया है। दूसरी ओर बगदेशी विप्र कविके दृष्टान्तके द्वारा (चै० च० अ० ५।९१-१५८) सिद्धान्त-विरुद्ध, रसाभास-दोषयुक्त और जड

प्रतिष्ठावर्द्धक ग्राम्य कवित्व और श्रीकृष्णके तोषणात्मक अप्राकृत कवित्वकी पृथक्ताकी शिक्षा प्रदान की है ।

श्रीकविराज गोस्वामिपादने श्रीचैतन्यचरितामृत (आ० १३ । २२-२३, २७-३६, ३९) में लिखा है,—

जन्म-बाल्य-पौगण्ड-कैशोर-युवाकाले ।  
हरिनाम लश्रोयाइला प्रभु नाना-छले ॥  
बाल्य-भावछले प्रभु करेन ऋन्दन ।  
'कृष्ण', 'हरि' नाम शुनि' रह्ये रोदन ॥  
विवाह करिले हैल नवीन यौवन ।  
सर्वत्र लश्रोयाइल प्रभु नाम-सकीर्तन ॥  
पौगण्ड-वयसे पड़ेन, पड़ान शिष्यगणे ।  
सर्वत्र करेन कृष्ण-नामेर व्याख्यान ॥  
सूत्र-वृत्ति-टीकाय कृष्णनामेर तात्पर्य ।  
शिष्येर प्रतीत हय,—सबार आश्चर्य ॥  
या'रे देखे ता'रे कहे—कह कृष्णनाम ।  
कृष्णनामे भासाइला नवद्वीप ग्राम ॥  
किशोर-वयसे आरम्भिला सकीर्तन ।  
रात्रिदिने प्रेमे नृत्य, सगे भक्तगण ॥  
नगरे नगरे भ्रमे कीर्तन करिया ।  
भासाइला त्रिभुवन प्रेमभक्ति दिया ॥  
चम्बिश वत्सर ऐछे नवद्वीप-ग्रामे ।  
लश्रोयाइला सर्वलोके कृष्णप्रेम-नामे ॥  
चम्बिश वत्सर छिला करिया संन्यास ।  
भक्तगण लज्जा कैला नीलाचले वास ॥  
ता'र मध्ये नीलाचले छय बत्सर ।  
नृत्य, गीत, प्रेमभक्ति-दान निरन्तर ॥  
सेतुबन्ध, आर गौड़व्यापि वृन्दावन ।

प्रेम-नाम प्रचारिया करिला भ्रमण ॥

द्वादश-वत्सर-शेष रहिला नीलाचले ।

प्रेमावस्था शिखाइला आस्वादन-छले ॥

[ जन्म, बाल्य, पौगंड, किशोर और युवाकालमें महाप्रभुने अनेको बहाने हरिनाम कराया । शिशुभावके बहाने प्रभु रुदन करते हैं और 'कृष्ण हरि' नाम सुनकर रोना बन्द कर देते हैं । विवाह करनेपर नवीन यौवन हुआ तब प्रभुने सर्वत्र नाम-सकीर्तन कराया । पौगण्डावस्था में पढते हैं और शिष्योको पढाते हैं और सर्वत्र कृष्णनामकी व्याख्या करते हैं । सूत्र-वृत्ति-टीकामें सर्वत्र कृष्ण-नामके तात्पर्यको प्रकट करते हैं । सब शिष्योको आश्चर्य प्रतीत होता है । जिसको देखते हैं, उसीको 'कृष्णनाम' लेनेके लिये कहते हैं । कृष्णनामसे नवद्वीप ग्रामको बड़ा दिया । किशोरावस्थामें सकीर्तनका प्रारम्भ किया और रात-दिन भक्तगणके साथ प्रेममें नृत्य किया । नगर-नगर सकीर्तन करते हुए घूमते रहे । प्रेमभक्तिसे त्रिभुवनको प्रवाहित कर दिया । इस प्रकार चौबीस वर्ष तक नवद्वीप ग्राममें सबको कृष्ण-प्रेम तथा कृष्ण-नाम ग्रहण कराया । और चौबीस वर्ष सन्यास लेकर भक्तोके साथ नीलाचलमें वास किया । उसमें छ वर्षतक नीलाचलमें नृत्य, गीत प्रेमभक्तिका निरन्तर दान करते रहे । सेतुबन्ध और गौडदेश तथा वृन्दावन तक प्रेम-नामका प्रचार करते हुए भ्रमण करते रहे । अंतिम बारह वर्ष नीलाचलमें रहकर आस्वादनके बहाने प्रेमावस्थाकी शिक्षा दी । ]

श्रीकृष्णचैतन्यदेवने, श्रीकृष्ण-तोषणमें लगे हुए बड़े परिवार और परिजनके पोषण करनेवाले\* श्रीश्रीवास पंडितके निरन्तर सपरिकर श्रीकृष्णतोषणके आदर्शके द्वारा यह शिक्षा दी कि, श्रीकृष्ण-संसारके गृहस्थको किसी वस्तुका अभाव नहीं रह सकता ।

श्रीचैतन्य-भागवतमें श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने लिखा है,—

“प्रभु बले,—

‘कि बलिलि पडित श्रीवास !  
 तोर कि अन्नैर हइबे उपास !  
 यदि कदाचित् वा लक्ष्मीओ भिक्षा करे’ ।  
 तथापिह दारिद्र्य नहिब तोर घरे ॥  
 आपने ये गीता-शास्त्रे बलियाछों मुजि ।  
 ताहो कि श्रीवास, एवे पासरिलि तुजि ॥  
 ये-ये जन चिन्ते मोरे अनन्य हइया ।  
 ता’रे भिक्षा देइ मुजि माथाय बहिया ॥  
 येइ मोरे चिन्ते, नाहि याय कारो द्वारे ।  
 आपने आसिया सर्वसिद्धि मिले ता’रे ॥  
 धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—आपने आइसे ।  
 तथापिह ना चाय, ना लय मोर दासे ॥  
 मोर सुदर्शन-चक्रे राखे मोर दास ।  
 महाप्रलयैओ या’र नाहिक बिनाश ॥  
 ये मोहार दासेरेओ करये स्मरण ।  
 ताहारेओ करो मुजि पोषण पालन ॥  
 सेवकेर दास से मोहार प्रिय बड़ ।  
 अनायासे सेइ से मोहारे पाय दड़ ॥  
 कोन् चिन्ता मोर सेवकेर भक्ष्य करि’ ।  
 मुजि या’र पोष्टा आछों सबार उपरि ॥”

—चै० भा० अ० ५।५३-६३

अर्थात् प्रभु कहते हैं—‘हे पडित श्रीवास ! तुम क्या बोलते हो ? तुमको क्या कभी अन्नका उपवास हो सकता है ? लक्ष्मी भीख माँग सकती है, पर तुम्हारे घरमें दारिद्र्य नहीं आ सकता । मैंने जो गीताशास्त्रमें कहा है, क्या तुम श्रीवास ! उसको भूल गये ? जो-जो

जन अनन्यभावसे मेरा चिन्तन करते हैं, उनके लिये मैं सिरपर वहन करके भिक्षा पहुँचाता हूँ। जो मेरा चिन्तन करते हैं, किसीके द्वारपर नहीं जाते हैं, सारी सिद्धियाँ अपने-आप आकर उनको मिल जाती हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अपने-आप आते हैं। तथापि मेरा सेवक न उनको चाहता है, न लेता है। मेरा सुदर्शन चक्र मेरे सेवककी रक्षा करता है, महाप्रलयमें भी उसका विनाश नहीं होता। जो मेरे दासका भी स्मरण करता है, मैं उसका भी पालन-पोषण करता हूँ। मेरे सेवकका दास मुझे बड़ा प्रिय है, वह अनायास ही मुझे निश्चय प्राप्त करता है। मेरे सेवकको आहारकी कौन-सी चिन्ता है, जबकि सर्वोपरि मैं उसका पोषण करनेवाला हूँ।”

श्रीकृष्णचैतन्यका चरित और शिक्षा ‘श्रीमद्भागवत’ एवं ‘भागवतधर्म’ का मूर्तिमान् रूप है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने समस्त शास्त्रोक्त, समस्त कर्तव्य, समस्त क्रियामें, सभी कारणमें, सारे स्थान-काल-पात्रमें, सारे भुवनमें, समस्त कार्य और कारणमें, सारे साधन और फलमें भक्तिके अधिष्ठान और शिक्षाका प्रचार किया है। भक्ति सार्वत्रिक, सार्वकालिक, सार्वजनिक और सार्वभौम धर्म है—यह शिक्षा श्रीचैतन्यदेवके चरित्रमें देदीप्यमान है। मातृगर्भमें अवस्थानके समय श्रीशिवानन्द सेनके पुत्र ‘श्रीपुरीदास’को श्रीगौरहरिकी कृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० १२।४५-५०) तथा बाल्यमें उस सप्तवर्षीय शिशुमें अद्भुत श्रीकृष्णतोषणात्मिका भक्ति और कवित्वका विकास (चै० च० अ० १६।७३-७५), श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीअच्युतानन्द, श्रीरघुनन्दन आदि की बाल्यकालमें श्रीगौरसेवा, श्रीश्रीवासकी भतीजी चार वर्षकी बालिका श्रीनारायणीका श्रीगौरकृपासे कृष्णनामसे क्रन्दन और प्रेम-विकार (चै० भा० म० २। ३२४), यौवनमें श्रीरघुनाथ दास आदिका इन्द्रके समान ऐश्वर्य, अप्सराके समान भार्या और सुखमय गृहका त्याग करके श्रीगौरसेवामें आत्माहुति प्रदान करना, प्रौढ़वस्थ में श्रीश्रीरूप-सनातन-श्रीरामराय और श्रीसुबुद्धिरायकी विषय-वैभव-त्यागलीला तथा श्रीगौरहरिका भृत्यत्व प्राप्त

करना , बाढ्वंयमें श्रीभवानन्द राय, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीचन्द्रशेखर आचार्य, श्रीकाशीमिश्र आदिका श्रीगौरकृपा प्राप्त करना , **निर्याणकालमें** श्रीहरिदास ठाकुरका 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नाम लेकर प्राण-उत्क्रमण, और **मुमूर्षु अवस्थामें** विसूचिका-रोगग्रस्त 'अमोघ'की श्रीकृष्णचैतन्यका उपदेश शिक्षा और कृपा प्राप्तकर देह-रोग और भव-रोगसे निष्कृति , गलित कुण्ठी वासुदेवकी श्रीगौरकृपा और शिक्षासे कुष्ठरोग नाश होकर रूप-पुष्ट तथा भक्तितुष्ट हो आचार्यत्वकी प्राप्ति (चै० च० म० ७। १४८) , मृत्युके बाद श्रीश्रीवासके मृत-शिशु-पुत्रकी श्रीगौरोपदेश-श्रवणके फल-स्वरूप दिव्यज्ञानकी प्राप्ति और सपरिवार श्रीश्रीवासका शोकशमन , कारागृहमें श्रीसनातन और श्रीहरिदासकी श्रीनाम-भजन-लीला , श्रीभवानन्द-पुत्रका प्राणघाती राजदडभोगके समय सख्यायुक्त श्रीनामग्रहण और श्रीगौरकृपाकी प्राप्ति (चै० च० अ० ६।५६) , पय पानकारी सदाचारी ब्रह्मचारीका तथा दूसरी ओर जगाइ-मधाइके समान अति दुराचारी महापातकीका, 'ललितपुर'के दारिसन्यासीका और दुराचारी दानीका (चै० भा० अ० २।१८१) , मद्यपी यवन राजाका (चै० च० म० १६।१७८-१९९) शुद्धभक्ति प्राप्त करना , श्रीश्रीधरके समान केलेके खभे, पत्ते, और मूली बेचनेवाले दरिद्र व्यक्तिका अथवा श्रीशुक्लाम्बर 'ब्रह्मचारीकी नाई' भिक्षुकका, घाट-केवटका (चै० च० म० १६।२०२) , दूसरी ओर गजपति श्रीप्रतापसुन्दरके समान चक्रवर्ती महाराजका प्रेमधन प्राप्त करना , श्रीश्रीवास पंडितके घरकी दासी 'दुखी'का सेवानिष्ठाके फलसे 'सुखी' नाम प्राप्त करना , श्रीश्रीवासके घरकी दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली पर्यन्तको (चै० भा० म० ८।२१) भक्तिकी प्राप्ति, श्रीशिवानन्द सेनके कुत्तेका श्रीचैतन्यप्रदत्त ब्रह्मादिदुर्लभ भगवत्प्रसाद-सेवन, नाम-श्रवण-कीर्तन और सिद्धदेहसे वैकुण्ठ-प्राप्ति (चै० च० अ० १।३२) , तथा 'कुलीनग्राम'के भक्तोके सम्पर्कमें रहनेवाले कुत्ते आदिकी तथा उस स्थानपर शूकर-चरानेवाले डोम तककी श्रीकृष्णगानमें रति (चै० च० अ० १०।८३) , झारखंडके बाघ, भालू,

जगली हाथी आदि हिसक पशुओका श्रीचैतन्यके श्रीमुखसे हरिनाम श्रवणकर हिंसा भूलकर मृगादि पशुओके साथ प्रभुका अनुगमन करना (चै० च० म० १७।३७), कृष्णकीर्तन-नृत्य और परस्पर आलिंगन करना (चै० च० म० १७।४२), मयूरादि पक्षियोका भी कृष्णनाम सुनकर नाचना, वृक्ष-लतादि समस्त स्थावर जगमकी प्रेम-स्फूर्ति; श्रीश्रीवासका वस्त्र सीनेवाले यवन दर्जोंको वैष्णवता-प्राप्ति और कृष्णप्रेम-विकार (चै० च० आ० १७।२३२), हुंसेनशाहके समान प्रबल-प्रतापी विधर्मी बादशाहका, चाँदकाजीके समान पराक्रमी सूबेदारका, बिजली खाके समान पठान शाहजादेका (चै० च० म० १८।२०७-२१२), रामदासके (श्रीचैतन्यका दिया हुआ नाम) समान पठान पीरका, सशिष्य बौद्धाचार्यका (चै० च० म० १।४७-६२) और समस्त मत-वादियोकी श्रीचैतन्यदेवके प्रति भगवत्बुद्धि, यहाँ तक कि, किसी-किसीको भागवत-धर्ममे प्रवेश और महाभागवतत्वकी प्राप्ति हुई थी। श्रीअभिराम ठाकुर और श्रीकाशीश्वरके समान बलवान्, राजपूत श्रीकृष्णदासके समान असीम साहसी योद्धाने कृष्णकी तुष्टिके लिये बल और वीर्य लगाकर श्रुति-प्रतिपाद्य (मुण्डक ३।२।४) प्रकृत बलका परिचय दिया था। फिर श्रीगौरगोपालके अलंकार चुरानेवाले चोर (चै० भा० आ० ४।१३२), श्रीनित्यानन्दके अलंकार लूटनेवाले डकैतोका सरदार और डकैतोका दल भी प्रेमधनका अधिकारी बना (चै० भा० आ० ५।५२६) था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यके समान श्रेष्ठ वेदान्ती और स्मार्त-पंडित, श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके समान केवलाद्वैती सन्यासी गुरु, श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्यके समान संगीताचार्य, श्रीवल्लभ भट्टके समान कनकाभिषिक्त दिग्विजयी आचार्य, केशव-काश्मीरी या केशव भट्टके समान दिग्विजयी पंडित, श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीरायरामानन्द-श्रीसुबुद्धिरायके समान राजमन्त्रीगण तथा श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद, श्रीरामराय, श्रीमुरारिगुप्त, श्रीस्वरूप-दामोदर, श्रीश्रीसनातन-रूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीसत्यराज खा, श्रीनरहरि सरकार-



ठाकुर, श्रीमाधव, श्रीवासुदेव, श्रीगोविन्द घोष, श्रीरघुनाथ भागवताचार्य, श्रीकविकर्णपूर आदि सैकड़ों कविकुल-शिरोमणियोंने अमर-मुखर भाषामे श्रीचैतन्यदेवकी कृपा और शिक्षा-वैशिष्ट्यका प्रचार किया है। श्रीसर्व-भौम भट्टाचार्य, श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तम भट्टाचार्य, श्रीपुंडरीक विद्यानिधि, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीगदाधर पंडित प्रभृतिके समान श्रेष्ठ कुलोन ब्राह्मणगण श्रीमहाप्रभुकी शिक्षासे अनुप्राणित होकर 'तृणादपि सुनीच' धर्मके मूर्तिमन्त प्रतीक बन गये थे, दूसरी ओर भूँइमालो-कुलमें (नीच कुलमे) उत्पन्न श्रीझड़ू ठाकुर, यवन-कुलमे उत्पन्न श्रीहरिदास ठाकुर, करण-कुलमे आविर्भूत श्रीरामानन्द राय, वणिक्-कुलमे उत्पन्न श्रीउद्धारण दत्त ठाकुर, 'बगबाटी श्रीचैतन्यदास' (चै० च० आ० १२।८५) श्रीगौर-निताइकी कृपा प्राप्त करके नित्यसिद्ध पार्षदोमे गिने गये थे। श्रीनवद्वीपके जुलाहे, ग्वाले, शखवणिक, गन्धी, माली, तम्बोली, ज्योतिषी, (चै० भा० आ० १२।१०८-१७७), मोदक, भिक्षु, कगाल, चोर, डाकू, अतिथि (चै० भा० आ० ४।५) आदि सभी श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी कृपा प्राप्त कर धन्य हो गये थे।

यवनकुलमें अवतीर्ण श्रीहरिदास ठाकुर और म्लेच्छ राजदरबारके भूतपूर्व मन्त्री श्रीश्रीरूप-सनातन दोनों प्रभुओं के द्वारा श्रीगौरसुन्दरने नाम-महिमाका विस्तार, श्रीमथुराप्रदेशमे भक्ति-सदाचारका प्रवर्तन, लुप्त तीर्थोंका उद्धार, भक्ति-ग्रन्थोंकी रचना, तथा शूद्र विषयी गृहस्थकी लीलाका अभिनय करनेवाले श्रीराम रायके यहाँ स्वयं श्रीकृष्णलीला-प्रेमरस-तत्वका श्रवण करने और श्रीप्रद्युम्न मिश्र आदि ब्राह्मण-कुलजात वैष्णवको श्रवण करानेकी लीला प्रदर्शन करायी है। श्रीगौरहरि श्रीवासुदेव दत्त ठाकुरके द्वारा जीवदुःख-कातरता और उदारता, श्रीराघव पंडितके द्वारा भगवत्सेवामे निष्ठा और प्रीति, श्रीहरिदास ठाकुरके द्वारा सहिष्णुता और श्रीनाम-भजनमे अनन्य-निष्ठा ; श्रीश्रीरूप-सनातनादिके द्वारा दैन्य और अकिञ्चनता, श्रीश्रीवास पंडित, श्रीश्रीधर-आदिके द्वारा वहिर्मुख-वाक्यके प्रति बधिरता, श्रीप्रतापसूद्र, श्रीशिवानन्द सेन,

श्रीबुद्धिमन्त खा, श्रीकानाइ खूंटिया, श्रीजगन्नाथ माहाति आदिके द्वारा । विष्णु-वैष्णवसेवामे धन लगानेकी आदर्श-शिक्षा, छोटे हरिदासकी दडलीलाके द्वारा मुमुक्षु साधक-वैरागीकी (चै० च० अ० १।११७-११८ ; चै० च० ना० ८।२३) आचार-शिक्षा ; श्रीदामोदर पंडित आदिके द्वारा निरपेक्षता, श्रीरामानन्द राय, श्रीपुडरीक विद्यानिधि, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीरघुनाथ पुरी आदिके द्वारा परमहंस गुरु-वैष्णवके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आचारकी शिक्षा दी है। उन्होंने श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीरामदास विश्वास आदि मुमुक्षुकी लीला करनेवाले व्यक्तियोंके द्वारा मुमुक्षुके लिये भी शुद्धभागवत-धर्मके आश्रयकी प्रयोजनीयता, तथा नित्यमुक्त भगवत्पार्षद श्रीपरमानन्द पुरी-आदि गुरुजनोके द्वारा भी भागवत-धर्मका सौन्दर्य प्रकट किया है। श्रीसुबुद्धि रायके चरितके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुने कर्मजड-स्मार्त-मतवादके खडित-प्राकृत विचार और शुद्ध-भक्ति-सिद्धान्त की चमत्कारिता तथा सार्वभौमत्वको प्रमाणित किया है। श्रीवलभद्र भट्टाचार्य, कृष्णदास विप्र-आदिके द्वारा भी श्रीगौरहरिने व्यतिरेक भावसे जीवकी स्वतन्त्रताके कुफलकी शिक्षा दी है। रामचन्द्र पुरी, रामचन्द्र खा, अमोघ आदिके द्वारा श्रीहरिगुरु-वैष्णवमे मर्त्यबुद्धिके परिणामकी शिक्षा दी है। महाप्रभुकी छोटे हरिदासकी माधवी माताके यहाँ निजसेवार्थ चावल-भिक्षाके लिये दडदान-लीला ; दूसरी ओर श्रीमहाप्रभुको सुन्दरी युवती विधवाके पुत्रके प्रति आदर करते देखकर दामोदर पंडितके श्रीमहाप्रभुको सतर्क करनेपर श्रीमहाप्रभुका दामोदर पंडितको समझाना एव नवद्वीप स्थानान्तरित करना, श्रीरामानन्द रायके प्रति श्रीप्रद्युम्न मिश्रकी, तथा श्रीपुडरीक विद्यानिधिके प्रति श्रीगदाधर पंडितकी सन्देह-लीलाके द्वारा साधक और सिद्धकी अणुचैतन्य और विभुचैतन्यकी शिक्षाके आदर्श-वैशिष्ट्यको प्रकट किया है।

श्रीअ द्वैताचार्यकी गृहिणी श्रीसीतादेवी, श्रीनित्यानन्दकी जननी श्रीपद्मावती, श्रीशचीमाता, श्रीराधादेवीकी पत्नी श्रीमालिनी, श्रीराघव की बहिन श्रीदमयन्ती, श्रीसहजानन्दकी गृहिणी, आचार्यरत्न श्रीचन्द्र-

शेखरकी पत्नी, आचार्या श्रीजाह्नवा-वसुधा माता, श्रीलक्ष्मीप्रिया और श्रीविष्णुप्रिया माता, श्रीशिवानन्द सेनकी पत्नी, श्रीनन्दिनी-जगली, श्रीशिखि माहातीकी बहिन विदुषी श्रीमाधवी माता-आदि अनेक वैष्णवी शक्तियोने, दूसरी ओर श्रीपरमेश्वर मोदककी पत्नी 'मुकुन्दाकी माता' (चै० च० अ० १२।१६), 'आदिवस्या' उडिया स्त्री (चै० च० अ० १४। २६) श्रीवासकी दासी 'दु खी' या 'सुखी', यहातक कि रामचन्द्र खा की प्रेरिता वेश्या (जो बादमे ठाकुर हरिदासकी कृपा प्राप्त की हुई परम वैष्णवी महन्ती बनी), देवदासी-आदि शक्तियोने श्रीगौर तथा श्रीगौरजनकी कृपाकी आदर्श-शिक्षाकी विशिष्टता और विचित्रताका प्रचार किया है। श्रीश्रीवासकी सास (चै० भा० म० १६।१७) के दृष्टान्तमे श्रीगौरहरिकी निरपेक्षता तथा श्रीकृष्ण-सतुष्टिकी सापेक्षताकी आदर्श-शिक्षा प्रचारित हुई है।

ये दैत्य-यवने मोरे कभु नाहि माने ।  
 ए-युगे ताहारा कान्दिबेक मोर नामे ॥  
 यतेक अस्पृष्ट दुष्ट यवन चण्डाल ।  
 स्त्री-शूद्र-आदि यत अधम राखाल ॥  
 हेन भक्ति-योग दिमु ए-युगे सबारे ।  
 सुर मुनि सिद्ध ये निमित्त काम्य करे ॥

—चै० भा० अ० ४।१२१-१२३

पात्रापात्र-विचार नाहि, नाहि स्थानास्थान ।  
 येइ योंहा पाय, तोंहा करे' प्रेम दान ॥  
 लुटिया, खाइया, दिया, भांडार उजाडे ।  
 आश्चर्य भांडार प्रेम शतगुण बाडे ॥  
 उछलिल प्रेमवन्या चौदिके बेड़ाय ।  
 स्त्री-बुद्ध-बालक-युवा सकलइ डुबाय ॥

परिच्छेद ] श्रीचैतन्यकी शिक्षा और सार्वभौमधर्मे ४२३

सज्जन-दुर्जन, पगु जड़ अन्धगण ।

प्रेमबन्याय डुबाइल जगतेर जन ॥

—चै० च० आ० ७।२३-२६

या'रे देख, ता'रे कह 'कृष्ण'-उपदेश ।

आमार आज्ञाय गुरु हजा तार' एइ देश ॥

—चै० च० म० ७।१२८

[ जो दैत्य तथा यवन मुझे कभी नहीं मानते (दैत्यो और यवनोने भगवान्को किसी युगमे नहीं माना पर) इस युगमे (भगवान् श्रीचैतन्यदेव कहते हैं, वे मुझे मानेगे) मेरा नाम लेकर वे रुदन करेगे। जितने अधम, अस्पृश्य, दुष्ट, यवन, चाण्डाल, अहीर, स्त्री, शूद्र आदि हैं उन सबको इस युगमे मैं ऐसा भक्ति-योग दूंगा, जिस भक्ति-योगकी कामना देवता, मुनि तथा सिद्धजन करते हैं।" (चै० भा० अ० ४।१२१-१२३) । "प्रेम-धन वितरण करते समय पात्रापात्रका विचार नहीं किया और न स्थानास्थानका ही। जिसे जहाँ देखा श्रीमहाप्रभुने पचतत्व (भक्त-रूपमे श्रीगौरांग महाप्रभु, भक्तस्वरूपमे श्रीनित्यानन्द, भक्तावतार रूपमे श्रीअद्वैताचार्य, भक्त-शक्ति रूपमे श्रीगदाधर पंडित तथा भक्त-रूपमे श्रीश्रीवास आदि) के रूपमे वही उसे प्रेम-दान किया। प्रेम का भंडार ऐसा परिपूर्ण और आश्चर्यजनक है कि जितना भी लूटा, खाया, दिया और लुटाया जाय उतना ही सौ गुना और भी वह बढ जाता है। प्रेम-बन्या चारो ओर उद्वेलित हो उठी, श्रीमहाप्रभु पचतत्व-रूपमे चारो ओर विचरण कर आवाल, वृद्ध, वनिता सभीको प्रेम-बन्यामे आप्लावित करने लगे।" (चै० च० म० ७।२३-२६) । "जिसको देखो उसीको मेरी आज्ञासे गुरु बनकर कृष्णका उपदेश करो और इस देशको तार दो।" (चै० च० म० १।१२८) ।]—इत्यादि उक्तियाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु-प्रचारित प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताका अभूतपूर्व एव अश्रुतपूर्व साक्षीके रूपमे हैं ।

प्रेम-भक्ति-धर्मकी सार्वजनिकताके अतिरिक्त पंचतत्त्वात्मक रूपमें श्रीगौरहरि द्वारा प्रचारित यह प्रेम-धर्म कितना सार्वत्रिक रहा इसका परिचय निम्नांकित उक्तियोंसे स्पष्ट उपलब्ध किया जा सकता है।

एइ पंचतत्त्वरूपे श्रीकृष्णचैतन्य ।  
 कृष्ण-नाम-प्रेम दिया विश्व कैला धन्य ॥  
 मथुराते पाठाइला रूप-सनातन ।  
 बुइ सेनापति कैला भक्ति प्रचारण ॥  
 नित्यानन्द गोसांजे पाठाइला गौडदेशे ।  
 तेंहो भक्ति प्रचारिला अशेष-विशेषे ॥  
 आपने दक्षिणदेशे करिला गमन ।  
 ग्रामे-ग्रामे कैला कृष्णनाम प्रचारण ॥  
 सेतुबन्ध पर्यन्त कैला भक्तिर प्रचार ।  
 कृष्णप्रेम दिया कैला सबार निस्तार ॥

—चै० च० आ० ७।१६३-६७

पृथिवी पर्यन्त यत आछे देश-ग्राम ।  
 सर्वत्र सचार हइबेक मोर नाम ॥

—चै० भा० अ० ४।१२६

अर्थात् “इस प्रकार पंचतत्त्व रूपमें प्रकट होकर श्रीकृष्णचैतन्यने कृष्ण-नाम-प्रेम प्रदान कर विश्वको धन्य-धन्य कर दिया। श्रीरूप-सनातनको मथुरा भेजा और उन दोनों सेनापतियोंने भक्तिका वहा प्रचार किया। श्रीनित्यानन्द गोस्वामीको गौड देशमें भेजा, वहाँ उन्होंने भक्तिका विशद-रूपमें प्रचार किया। स्वयं दक्षिणदेशमें जाकर महा-प्रभुने गाँव-गाँवमें कृष्णनामका प्रचार किया। सेतुबन्ध तक भक्तिका प्रचार करके कृष्णप्रेम प्रदानकर सबका उद्धार कर दिया।” स्वयं श्रीमहाप्रभुने अपने मुँहसे चैतन्यभागवतमें कहा है कि, “ससार भरमें जितने देश तथा गाँव हैं, सर्वत्र मेरे नामका प्रसार होगा।”

श्रीचैतन्यदेवने प्रत्येक कार्यमे स्वयं तथा अपने अनुचरोके द्वारा भक्तिके नित्य अधिष्ठानकी शिक्षा दी है। श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके दूर-सम्पर्कके चाचा महाभागवत श्रीकालिदासके द्वारा कृष्णनामके सकेतके साथ समस्त व्यावहारिक कार्योंका निर्वाह, यहातक कि कौतुकमे चौपड़ खेलनेमे (चै०च०अ० १६।५-७) श्रीभागवतधर्मके अधिष्ठानका प्रचार किया,—

कि शयने, कि भोजने, किबा जागरणे ।

अर्हानिश्च चिन्त' कृष्ण, बलह वदने ॥”

—चै० भा० म० २८।२८

[ क्या सोते, क्या जागते, क्या भोजन करते—दिन रात कृष्णचिन्तन करते हुए मुखसे कृष्ण-नाम लेते रहो। ]—यह उक्ति श्रीगौरहरिद्वारा प्रचारित श्रीभागवतधर्मकी सार्वजनिकता सार्वत्रिकताके अतिरिक्त सार्वकालिकताका भी भलीभाँति प्रचार करती है।



## एकसौ-सातवाँ परिच्छेद कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्य

कोटि-कोटि महाभागवतोने वहि साक्षात्कार तथा अन्त साक्षात्कारके द्वारा जिनकी भगवत्ताको सुनिश्चित किया है, भगवत्ता ही जिनका निज-स्वरूप है, जिन स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीचरण-कमलका आश्रय लेकर, अन्यत्र-दुर्लभ सहस्त्र-सहस्र प्रेम-पीयूषमयी भागीरथीकी धारा जिनके निजावतार प्रकटनमे प्रचारित हुई है, जो अपने सहस्त्र-सहस्त्र सम्प्रदायोके अधिदेवता है, उन्ही 'श्रीकृष्णचैतन्य'-नामक श्रीभगवान्‌को ही श्रीमद्भागवत-शास्त्रने इस कलियुगमे वैष्णवोका 'सदोपास्य' कहकर

निर्णीत किया है, तथा एक पद्यमे उनका स्तव-गान किया है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे कलियुगके उपास्य-प्रसंगमे इस पद्यकी अवतारणा दीख पडती है।

कान्तिमे जो 'अकृष्ण' अर्थात् गौरवर्ण है, सर्वोत्कृष्ट बुद्धिमान् लोग सकीर्तनबहुल यज्ञके द्वारा कलियुगमे उन श्रीगौरसुन्दरकी ही उपासना करते हैं। इस उपास्य-विग्रहके गौरत्वके सबधमे श्रीमद्भागवतमे ही प्रमाण मिलता है। † श्रीगर्गाचार्यजी महाशय श्रीनन्दमहाराजसे कहते हैं,—“तुम्हारे पुत्र युग-युगमे अवतीर्ण होते हैं, शुक्ल, रक्त और पीत—इन तीन वर्णोंका शरीर गत तीन युगोमे प्रकटित हुआ है। अब (द्वापरमे) ये कृष्णरूपमे अवतरित हुए हैं।” सत्ययुगमे इनका शुक्ल वर्ण था, त्रेतामे रक्तवर्ण, द्वापरमे कृष्णवर्ण, अतएव परिशेष-प्रमाण-स्वरूप कलियुगमे ये उपास्यदेव पीतवर्ण धारण करते हैं, यह प्रतिपन्न हो गया, क्योंकि 'इदानी' इस पदके द्वारा द्वापरमे श्रीकृष्णावतारकी बात ही कही गयी है। सत्ययुगके अवतारका शुक्लवर्ण, त्रेतायुगके अवतारका रक्तवर्ण होनेकी बात श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमे वर्णित है। 'आसन्' क्रियापद अतीत कालका निर्देशक है। यहाँ अतीत कालकी क्रिया द्वारा जो पीतवर्ण सूचित हुआ है, उसमे अतीत कलिकालको ही लक्षित किया गया है। एकादश स्कन्धमे श्यामत्व, महाराजत्व एव वासुदेवादि चतुर्मूर्ति तथा उनके आकार-प्रकार और परिचयका कथन करते समय कहा गया है कि श्रीकृष्ण ही द्वापरमे उपास्य है।

परन्तु 'श्रीविष्णुधर्मोत्तर' नामक शास्त्रमे जो युगावतारोका वर्णन है, उससे जान पडता है कि द्वापर-युगके युगावतारका वर्ण शुक्ल (तोतेकी पाँखके समान) वर्ण तथा कलियुगावतारका वर्ण नीलघन है।

\* “कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण सागोपागास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञै सकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस ॥” —भा० ११।५।३२

† “आसन् वर्णस्त्रियो ह्यस्य गृह्णीतोऽनुयुग तनू ।

शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानी कृष्णता गत ॥” —भा० १०।८।१३

यहाँ इस प्रमाण वाक्यके विषयमे यह समझना चाहिए कि यह उस द्वापरका सकेत करता है, जिसमे भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित नहीं होते और जिस द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं, उसके बाद ही आनेवाले कलियुगमें ही श्रीगौरसुन्दर अवतीर्ण हुआ करते हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि श्रीगौरसुन्दर श्रीकृष्णाविर्भाव विशेष है। जिस द्वापरमे श्रीकृष्णावतार होता है, उसीके बादके कलियुगमे ही श्रीगौरांग अवतार लेते हैं, इस नियमका व्यतिक्रम नहीं होता। ‘श्रीविष्णुधर्मोत्तर’-ग्रन्थमे प्रतिकूल-सा जान पड़नेवाला एक वाक्य मिलता है,—“सत्य, त्रेता, और द्वापर युगमे जिस प्रकार प्रत्यक्ष-रूपधारी युगावतार प्रकट होते हैं, कलिमे श्रीहरि उस प्रकारका कोई प्रत्यक्ष रूप धारण करके अवतीर्ण नहीं होते। इसीलिये वे ‘त्रियुग’ नामसे अभिहित होते हैं। कलिके अन्तमे श्रीवासुदेव, ब्रह्मवादी कल्किमे अनुप्रविष्ट होकर जगत्की रक्षा करते हैं।” यह प्रमाण भी अमान्य नहीं है। श्रीकृष्णके अनन्त और असीम ऐद्वयके प्रभावसे समय-समय पर उपर्युक्त शास्त्रप्रमाणका अतिक्रम देखा जाता है। कलिकालमे भी श्रीभगवान् आत्मदेह प्रकट करके अवतीर्ण होते हैं। कलिके प्रारम्भमे भी श्रीकृष्णलीलाकी स्थिति शास्त्रमे देखी जाती है।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध (५।३२) मे कलियुगमे श्रीगौर-सुन्दरके आविर्भावका उल्लेख एक श्लोकके वाक्य-विशेषके द्वारा प्रकट होता है—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् ।

यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥

इस श्लोकमे ‘कृ-ष्ण’ ये दो अक्षर हैं। इसका विशेष तात्पर्य यह है कि जिसके पूर्ण नाममे ‘कृ-ष्ण’ ये दो वर्ण (अक्षर) हैं, उनको ही ‘कृष्ण-वर्ण’ कहा गया है। तात्पर्य यह कि—“श्रीकृष्ण-चैतन्य” नाममे श्रीकृष्णत्व-अभिव्यजक ‘कृ-ष्ण’—ये दो वर्ण प्रयुक्त हुए हैं।



‘कृष्णवर्ण’ पदका दूसरा अर्थ भी हो सकता है—जो श्रीकृष्णका वर्णन करते हैं, अर्थात् श्रीकृष्णके परमानन्द-विलास-स्मरण-जनित उल्लासके वश जो स्वयं कृष्णके गुणोंका कीर्तन करते हैं, तथा सब जीवोंके प्रति परमकरुणावश सब लोगोंको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें उपदेश देते हैं, इस प्रकारके जो अवतारी हैं, वे ही ‘कृष्णवर्ण’ हैं।

अथवा स्वयं ‘अकृष्ण’ अर्थात् गौरकान्ति धारणकर जो कृष्णके सम्बन्धमें उपदेश देते हैं तथा जिनके दर्शन करके सभीके हृदयमें श्री-कृष्ण-स्फूर्ति होती है, ऐसे जो विग्रह हैं, उनको ही उपर्युक्त पद्यमें ‘कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण’ कहा गया है। अथवा साधारण दृष्टिमें जो अकृष्ण हैं, अर्थात् गौररूपमें प्रतिभात होते हैं, भक्तविशेषकी दृष्टिमें उनकी ही प्रकाश-विशेषक कान्तिमें जो ‘कृष्णवर्ण’ अर्थात् ‘श्यामसुन्दर’ रूपमें प्रतीत होते हैं, वे ही ‘कृष्णवर्ण त्विषाऽकृष्ण’ पदमें अभिहित हैं। अतएव उनमें सभी प्रकारसे श्रीकृष्णरूपका प्रकाश होनेके कारण श्री-कृष्णचैतन्य श्रीकृष्णके ही साक्षात् आविर्भाव-विशेष है।

उपर्युक्त भागवतके पद्यमें उनकी भगवत्ता भी स्पष्टरूपसे सूचित हुई है। उसमें एक और पद है ‘सागोपाद्गास्त्रपार्षदम्’। अनेको महानुभावोंने अनेको बार उनकी भगवत्ताकी सूचना देनेवाले अग-उपाग-अस्त्र-पार्षद आदिसे समन्वित रूपमें उनके दर्शन करके उनके स्वयं भगवान् होनेका ही अनुभव किया है। गौड, वरेन्द्र, बग, सुहृद्\* उत्कल आदि देशोंके निवासी महानुभावोंमें उनकी यह भगवत्ता बहुत ही प्रसिद्ध है। परममनोहर होनेके कारण उनके अग तथा महाप्रभावशाली होनेके कारण उनके उपाग, अर्थात् भूषणसमूह ही उनके अस्त्र हैं, और उनके अग-उपाग सर्वदा नित्यरूपमें उनके साथ विद्यमान होनेके कारण वे ही उनके पार्षदरूपमें गिने जाते हैं।

\*‘सुहृद्’—गौडके पश्चिम, वीरभूमके पूर्व और दामोदरका उत्तर-वर्ती भूभाग है, महाभारतके टीकाकार ‘नीलकण्ठ’ के मतसे ‘सुहृद्’ ही ‘राठदेश’ है।

श्रीमद्वैताचार्य महानुभव आदि श्रीगौरहरिके अत्यन्त प्रेमास्पद होनेके कारण वे भी अगोपाग-तुल्य है। इसलिये वे ही पार्षद है। इनके साथ विद्यमान ऐसे जो श्रीकृष्णचैतन्य है, सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान् लोग यज्ञ के द्वारा उनका यजन करते हैं। 'यज्ञ' शब्दका अर्थ है— पूजाका सभार। सकीर्तनप्रधान यज्ञ ही कलियुगमे श्रीभगवत्प्राप्तिका उपाय है। अनेक समान-चित्तवृत्तिवाले व्यक्ति एकत्र मिलकर जो श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यपरक श्रीकृष्णनाम-गुण-लीलाका गान करते हैं, वही सकीर्तन है। श्रीगौरचरणाश्रित लोगोमे सकीर्तन-प्रधान उपासना ही दिखलायी देती है।\*

श्रीमद्भागवतमे श्रीप्रह्लादजीने श्रीभगवान्‌के अवतारतत्त्वकी आलोचनाके प्रसंगमे श्रीनृसिंह-भगवान्‌की स्तुति<sup>†</sup> करते हुए कहा है कि,—“आप नर, तिर्यक्, ऋषि, देवता, मत्स्य आदि अवतार समूहके द्वारा तीनो लोकोका पालन करते हैं तथा जगत्-द्रोही लोगोका विनाश किया करते हैं। हे महापुरुष ! आप युगक्रमसे आये हुए धर्मकी रक्षा और पालन करते हैं। कलियुगमे प्रच्छन्नरूपसे अवतीर्ण होनेके कारण आप 'त्रियुग' नामसे प्रसिद्ध हैं।”

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका प्रसंग उठाकर नीलाचलमे श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यने श्रीगोपीनाथ आचार्यसे कहा था कि,—“श्रीचैतन्यदेव—

\* श्रीश्रीजीवगोस्वामीके 'सर्वसवादिनी'के चिह्नान्तके अनुसार लिखित।

† इत्थं नृतिर्यगृषिदेवज्ञषावतारैर्नोक्तान् विभावयसि हसि जगत्प्रतीगन् ।  
धर्म महापुरुष ! पासि युगानुवृत्तं छन्नं कलौ यदभवत्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥

—भा० ७।६।३८

[महापुरुष ! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर उनके द्वारा लोकोका पालन तथा सपूर्ण जगत्‌से द्रोह करनेवाले असुरोका सहार करते हैं। इतना ही नहीं, उन अवतारोके द्वारा आप प्रत्येक युगमे उसके धर्मोकी रक्षा भी करते हैं। कलियुगमे आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसलिये आपको 'त्रियुग' कहा जाता है।]

महाभागवत है, पर भगवत्-अवतार नहीं है, क्योंकि कलिकालमें विष्णु का अवतार नहीं होता। इसी कारण उनका एक नाम 'त्रियुग' है। चारों युगोंमें से तीन युगोंमें उनका आविर्भाव होनेके कारण वे 'त्रियुग' हैं। और शेष एक युगमें यानी कलियुगमें उनका अवतार नहीं होता।"

इसका उत्तर देते हुए श्रीगोपीनाथ आचार्यने श्रौतविचार प्रदर्शन करते हुए कहा,—“श्रीमद्भागवत और श्रीमन्महाभारत इन दो प्रधान शास्त्रोंके प्रमाणसे ज्ञात होता है कि कलिमें स्वयं रूपमें अवतारीका (अवतारके मूलपुरुषका) अवतार होता है। कलियुगमें नाम-प्रेम-प्रचारक पीतवर्ण द्विभुज स्वयं भगवान् ही अवतीर्ण होते हैं। कलिमें लीलावतार न होनेके कारण भगवान् का नाम 'त्रियुग' हुआ है। इससे युगावतार या सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अवतारीके अवतारका निषेध नहीं होता।”\*

श्रीमहाप्रभुने स्वयं कहा है—

\* \* “अन्यावतार शास्त्र-द्वारा जानि ।

कलिते अवतार तैछे शास्त्र-द्वारा मानि ॥

सर्वज्ञ मुनिर वाक्य—शास्त्र—‘प्रमाण’ ।

आमा-सबा जीवेर हय शास्त्र-द्वारा ज्ञान ॥

अवतार नाहि कहे,—‘आमि अवतार’ ।

मुनि-सब जानि’ करे’ लक्षण विचार ॥

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरिष्वशरीरिणः ।

तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसगतैः ॥

—चै० च० म० २०।३५०-३५२ ; २०।३५३ ; भा० १०।१०।३४

[ जैसे अन्य अवतारोंको मैं शास्त्रानुसार जानता हूँ, वैसे ही कलिके अवतारको शास्त्रानुसार मानता हूँ। सर्वज्ञ मुनियोंके वाक्य शास्त्र-‘प्रमाण’ है, हम सब जीवोंको शास्त्र-द्वारा ही ज्ञान प्राप्त होता है। अवतार अपने मुँहसे नहीं कहते कि ‘मैं अवतार हूँ।’ इसके विषयमें तो मुनिलोग लक्षण देखकर विचार करते हैं।

\* चै० च० म० ६।१४।१००

भगवन् । आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं, फिर भी शरीर धारण करके जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं, जो साधारण देहधारियोंके लिये संभव नहीं है, तथा जिनसे बढ़कर तो क्या, जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोंमें आपके अवतारों का पता चल जाता है।]

अप्राकृत-शरीरी परमेश्वरका अवतार-तत्त्व जीवके लिये जानना बहुत ही कठिन है । अतुल, अतिशय और अलौकिक वीर्य द्वारा आपके अवतारोंका कुछ परिज्ञान होता है ।

श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी कृपासे उद्भासित होकर परम विद्वत्-शिरोमणि श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य जब प्रच्छन्नावतारी श्रीगौरहरिको 'स्वयं भगवान्' रूपमें अनुभव कर सके, तब उन्होंने अपने हृदयकी उपलब्धि और साक्षात् दर्शनको निम्नलिखित दो श्लोकोंके द्वारा व्यक्त किया,—

वैराग्य-विद्या-निजभक्तियोग-शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।

श्रीकृष्णचैतन्य-शरीरधारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ॥

[ जो कृपासिन्धु और पुराणपुरुष है, जो वैराग्य, विद्या और निज-भक्तियोग अर्थात् उन्नत-उज्ज्वल-रसावेशमयी भक्तिकी शिक्षा देनेके लिये श्रीकृष्णचैतन्यविग्रहके रूपमें अवतीर्ण हैं ; मैं उनके शरणापन्न होता हूँ । ]

कालाश्रयं भक्तियोगं निजं यः, प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।

आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे, गाढं गाढ लीयतां चित्तमृङ्गः ॥

[ कालक्रमसे निजभक्तियोगको विलुप्त देखकर जो 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामक महापुरुष उसका पुनः प्रचार करनेके लिये जगत्में आविर्भूत हुए हैं, उनके श्रीपादपद्ममें मेरा चित्त-अमर अतिशय गाढरूपमें आसक्त होवे । ]

'स्वरूप' और 'तटस्थ'—इन दो लक्षणोंके द्वारा वस्तुका विज्ञान प्राप्त होता है ।\* आकार और स्वभावगत लक्षण ही 'स्वरूप-लक्षण' है,

\* 'स्वरूप-लक्षण' आर 'तटस्थ-लक्षण' ।

एइ दुइ लक्षणे 'वस्तु' जाने मुनिगण ॥

तथा कार्यद्वारा जिस लक्षणका ज्ञान होता है वही 'तटस्थ'-लक्षण है—यही असाधारण लक्षण है। श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी आकृति सुवर्ण-वर्ण, हेमाग या अकृष्ण अर्थात् गौर है, वे सन्यास-चिह्नसे चिह्नित है तथा उनकी प्रकृतिमें या स्वभावमें वैराग्य-विशिष्टता, महाभाव-परायणता, महा-वदान्यता आदि गुण दिखलायी देते हैं। यह उनका स्वरूप-लक्षण है। प्रेमदान, सकीर्तनप्रचार आदि उनके कार्य हैं। ये ही उनके तटस्थ-लक्षण-रूप असाधारण लक्षण हैं। श्रीमहाभारतके 'सहस्रनाम'-में\* उनके सुवर्णवर्ण, हेमाग, वराग (सर्वसुन्दर-गठन) और 'चन्दनागदी' (चन्दन-माला-शोभित) [ उनकी गृहस्थलीलाकी आकृति ] तथा 'सन्यास-कृत्' (सन्यासाश्रमके चिह्नसे चिह्नित) [ सन्यासलीलाकी आकृति ]

आकृति, प्रकृति, स्वरूप,—स्वरूप-लक्षण ।

कार्यद्वारा ज्ञान,—एइ तटस्थ-लक्षण ॥

अवतार काले ह्य जगतेर गोचर ।

एइ दुइ लक्षणे केहू जानेन ईश्वर ॥

सनातन कहे,—“याते ईश्वर-लक्षण ।

पीतवर्ण, कार्य—प्रेमदान-सकीर्तन ॥

कलिकाले सेइ 'कृष्णावतार' निश्चय ।

सुदूढ करिया कह, याउक सशय ॥

—चै०च०म० २०।३५४-३५५, ३६१-३६३

[ 'स्वरूप' लक्षण और 'तटस्थ' लक्षण है। इन दो लक्षणोंसे मुनि-गण वस्तुको जानते हैं। आकृति, प्रकृति, स्वरूप—ये स्वरूप-लक्षण हैं और कार्य के द्वारा ज्ञान—यह तटस्थ लक्षण है। अवतार कालमें ये दो लक्षण जगत्गोचर होते हैं, इनसे कोई ईश्वर जानते हैं। सनातन कहते हैं—जिनमें ईश्वर-लक्षण है, पीत वर्ण है, प्रेमदान-सकीर्तन कार्य है, कलिकालमें वह निश्चय 'कृष्णावतार' है। यह सुदूढ भावसे कहो, जिससे सदेह चला जाय । ]

\*“सन्यासकृच्छ्रम्. शान्तो निष्ठाशान्तिपरायण.”

—महाभारत दानधर्म १४६ अ०, श्रीविष्णुसहस्रनाम ७५  
“सुवर्णवर्णो हेमागो वराङ्गश्चन्दनागदी” (श्री वि० स० ६२)

इत्यादि आकारकी बात कही गयी है। तथा शम, शान्त, निष्ठाशांति-परायण आदि पद उनकी प्रकृतिका निर्देश करते हैं, यह आकृति-प्रकृति-गत लक्षण ही उनका स्वरूप-लक्षण है।

और तटस्थ लक्षण या कार्यद्वारा लक्षण, जो एकमात्र श्रीगौरा-वतारमे ही असाधारण या अपूर्व है, वह अनपितचरी (पूर्वमे किसीको नहीं दी गयी, ऐसी) उन्नत-उज्ज्वल-रसमयी स्वभक्तिश्री आपामरमे वितरणरूपी कार्यके द्वारा भली-भाँति प्रकाशित हो रहा है।\* अतएव स्वरूप और तटस्थ-लक्षण, इन दोनोंके लक्षणोके द्वारा तथा शास्त्र-प्रमाण और सहस्र विद्वानोके अनुभवके द्वारा श्रीकृष्णचैतन्यदेव 'कलियुगपावनावतारी' के रूपमे जाने जाते हैं।

बगदेशके लिये सर्वश्रेष्ठ सौभाग्य और गौरवका विषय यह है कि, यहाँ प्रेमाभर-कल्पतरु स्वयं भगवान्ने बगालीके देशमे अवतीर्ण होकर, बगभाषामे अप्राकृत प्रेमकी वाणीका आपामर समस्त जनतामे प्रचार किया है। परन्तु, बगदेशमे सर्वप्रथम आविर्भूत स्वयं भगवान्के अवतारका अवैध अनुकरण कर श्रीचैतन्यके तिरोधानके उपरांत ही अनेको कल्पित अवतारोकी सृष्टि हो रही है। बगदेशमे इन नकली अवतारो की सख्या क्रमशः बढ़ती जा रही है। बगदेशके आदिकवि, श्रीनित्यानन्दके शिष्य श्रीवृन्दावन दास ठाकुरने पूर्वबग और राढ-बगके नकली अवतारोके प्रादुर्भावकी चर्चा करके बहुत ही दुःख प्रकट किया था।†

\*युगधर्मप्रवर्तन ह्य अश हैते । आमा बिना अन्ये नारे ब्रजप्रेम दिते ।  
—चै० च० आ० ३।२६

[ युगधर्मका प्रवर्तन भगवदशसे होता है और मेरे बिना दूसरा कोई ब्रजप्रेम नहीं दे सकता । ]

† सेइ भाग्ये अद्यापिह सर्व बगदेशे । श्रीचैतन्य-सकीर्तन करे स्त्री-पुरुषे ॥  
मध्ये मध्ये मात्र कत पापिगण गिया । लोक नष्ट करे' आपनारे लओयाइया ॥

श्रीमन्महाप्रभुके सन्यास-ग्रहणके पूर्व कथित, “शीघ्र ही मेरे और भी दो अवतार होंगे”—इस उक्तिका सुयोग पाकर बगदेशमे अनेको नकली अवतारोकी रेलपेल देखनेमे आती है। वस्तुतः—“कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार” (चै० च० आ० १७।२२)—कलियुगमे नाम-रूपसे ही कृष्णका अवतार है। ‘नाम’, ‘विग्रह’, ‘स्वरूप’—तीन एक रूप। तिने ‘भेद’ नाहि,—तिन, ‘चिदानन्द-रूप’ ॥” (चै० च० म० १७।१३१)—नाम, विग्रह और स्वरूप—तीनोका एक ही रूप है, इनमे भेद नहीं है। तीनों चिदानन्द-स्वरूप है।

श्रीगौरसुन्दरके सन्यास-ग्रहणके ठीक बाद ही श्रीविष्णुप्रिया-माता और भक्तोंने श्रीचैतन्यके विग्रहको प्रकट किया और उनके ‘गौरहरि’ नामकी आराधना आरम्भ कर दी थी। इसीसे अविलम्ब दो अवतारोके आविर्भावके सम्बन्धकी भविष्यवाणी सार्थक हो गई। वे ही (श्री-श्रीचैतन्यदेव ही) गौर-अर्चा और गौर-नामके रूपमे अवतीर्ण हुए हैं। सकीर्तनके द्वारा ही अर्चा-मूर्तिका अवतार होता है तथा श्रीनाम भी

उदर भरण लागि पापिष्ठसकले । ‘रघुनाथ’ करि आपनारे केह बले ॥  
कोन पापिगण छाडि कृष्ण-सकीर्तन । आपनारे गाओयाय बलिया ‘नारायण’ ॥  
देखितेछि दिने तिन अवस्था याहार । कोन लाजे आपनारे गाओयाय से छार ॥  
राढे आर एक महा-ब्रह्मदैत्य आछे । अन्तरे राक्षस, विप्रकाच मात्र काचे ॥  
से पापिष्ठ आपनारे बोलाय ‘गोपाल’ । अतएव ता’रे सबे बलेन ‘शियाल’ ॥

—चै० भा० आ० १४।८१-८७

[उसी भागसे आज भी सारे बगदेशमे स्त्री-पुरुष श्रीचैतन्य-सकीर्तन करते हैं। बीच-बीचमे कुछ पापिष्ठ अपनेको प्रचार करके समाजको नष्ट कर रहे हैं, पेट भरनेके उद्देश्यसे पापिष्ठोमे कोई-कोई अपनेको ‘रघुनाथ’ कह रहे हैं। कुछ पापी लोग कृष्ण सकीर्तन छोड़कर अपनेको ‘नारायण’ नामसे कहलवाते हैं। जिसकी दिनमे तीन अवस्था देखनेमे आती है, वह नीच किस लाजसे अपना गान करवाता है। राढदेशमे एक और महाब्रह्मदैत्य है जो भीतरसे राक्षस है, बाहरसे ब्राह्मणका साज सजता है। वह पापी अपनेको ‘गोपाल’ कहलाता है। अतएव उसे सब ‘रगासियार’ (गीदड) कहते हैं।]

सकीर्तनमे ही भलीभाँति अवतीर्ण होते हैं। इस सिद्धान्तको न समझकर श्रीचैतन्यदेवके अन्तर्धानके बाद ही न जाने और भी कितने नकली अवतारोकी सृष्टि हुई थी, जिनका उल्लेख तत्कालीन वैष्णव-साहित्यमे देखनेमे आता है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुरके नामसे आरोपित 'गौरगण-चन्द्रिका' नामक पुस्तकसे जाना जाता है कि एक द्विज वासुदेव अपनेको 'गोपालदेव' नामसे प्रचार करते थे। अतः भागवतके शृगाल वासुदेवकी भाँति उनको 'शृगाल' नाम प्राप्त हुआ था। पूर्वी बगालमे 'विष्णुदास कवीन्द्र' नामक एक व्यक्ति अपनेको रघुनाथका अवतार बताकर प्रचार करते थे। माधव नामका एक देवल ब्राह्मण चुटिया धारण करके अवतार सज बैठा था। \*

\* चैतन्यदेवे जगदीशबुद्धीन्, केचिज्जनान् वीक्ष्य च राढबंगे ।  
स्वस्येश्वरत्व परिबोधयन्तो, धृत्वैश्वर्यं व्यचरन् विमूढा ॥  
तेषां कश्चिद्विजवासुदेवो, गोपालदेव पशुपागजोऽहम् ।  
एव हि विख्यापयितुं प्रलापी, शृगालसज्जा समवाप राढे ॥  
श्रीविष्णुदासो रघुनन्दनोऽहं, वैकुण्ठधाम्न समित कवीन्द्रा ।  
भक्ता ममेतिच्छलनापराधात्त्यक्त कपीन्द्रेति समाख्ययायै ॥  
उद्धारार्थं क्षितिनिवसता श्रील-नारायणोऽहम् ।  
संप्राप्तोऽस्मि ब्रजवनभुवो मूर्ध्नि चूडा निधाय ॥  
मन्द हृष्यन्निति च कथयन् ब्राह्मणो माधवाख्य-  
श्चूडाधारी त्विति जनगणैः कीर्त्यते बङ्गदेशे ॥  
कृष्णलीला प्रकुर्वाण कामुक शूद्रयाजक ।  
देवलोऽसौ परित्यक्तश्चैतन्येनेति विश्रुत ॥  
अतिभव्यादयोऽप्यन्ये परित्यक्तास्तु वैष्णवैः ।  
तेषां सगो न कर्तव्यं सगाद्धर्मो विनश्यति ॥  
आलापाद्गात्रसस्पर्शाग्निश्वासात् सहभोजनात् ।  
स चरन्तीह पापानि तैलविन्दुरिवाम्भसि ॥

—श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्तीकृता 'गौरगण-चन्द्रिका'

[श्रीचैतन्यदेवके प्रति जगदीश्वर-बुद्धि रखनेवाले भक्तजनको देखकर बगदेशके राढ-प्रान्तमें कुछ मूढ मानव अपनेको भी ईश्वरका अवतार बताते हुए भगवान्का-सा वेश धारण करके विचरने लगे थे ।



श्रीभक्तिरत्नाकरके लेखक श्रीनरहरि चक्रवर्तीशकुरने भी (१४ वें तरंगमें) कुछ नकली अवतारोका उल्लेख किया है ।\*

उनमेंसे कोई वासुदेव नामक ब्राह्मण था, जो लोगोमें यह प्रचार करनेके लिये कि मैं 'नन्दनन्दन गोप लदेव हूँ' अनेक प्रकारके प्रलाप (व्यर्थकी बातें) किया करता था । किन्तु राढ-प्रान्त (बंगालके पश्चिम भाग) में उसे मिथ्या वासुदेवकी भाँति 'शृगाल' सज्ञा प्राप्त हुई—लोग उसे सियार कहने लगे । एक व्यक्तिका नाम था श्रीविष्णुदास कवीन्द्र । वे कहा करते थे "मैं रघुनन्दन श्रीराम हूँ, श्रीवैकुण्ठधामसे इस वसुधापर अवतीर्ण हुआ हूँ ।' कपिश्रेष्ठ सुग्रीव आदि मेरे भक्त थे ।' इस प्रकार जनताको छलनेके अपराधसे, श्रेष्ठ पुरुषोंने उसे 'कपीन्द्र'की उपाधि देकर त्याग दिया—समाजमें वह आदरणीय न हो सका । माधव नामक एक ब्राह्मण था, जो शिरपर चूड़ा धारण किया करता था, वह कुछ प्रसन्नता के साथ यो कहता था—'मैं लक्ष्मीपति नारायण हूँ और भूतलनिवासियोके उद्धार के लिये ब्रजकी वनभूमि (वृन्दावन-धामसे) मस्तकपर चूड़ा धारण करके यहा आया हूँ ।' बगदेशमें आज भी उस वचक ब्राह्मणको लोग 'चूड़ाधारी' कहते हैं । "वह चूड़ाधारी माधव किसी देवालयका पुजारी था । वह शूद्रोंसे यज्ञ कराता और दक्षिणा लेता था । कामके वशीभूत होकर श्रीकृष्णकी रासलीला आदिका अनुकरण करता था । श्रीचैतन्य-महाप्रभुने उसे त्याग दिया था, यह बात प्रसिद्ध है । अतिभव्य आदि अन्य वचक जनोंको भी वैष्णवोंने त्याग दिया है । उनका सग नही करना चाहिये । उनके सगसे धर्मका नाश होता है । जैसे तेलकी बूद पानीके एक भागमें पड़नेपर भी सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार मनुष्यके पाप परस्पर वार्तालापसे, एक दूसरेके शरीरके स्पर्शसे, सास लेनेसे तथा एक साथ बैठकर भोजन करनेसे सब लोगोमें संचार करते हैं—एकके पाप दूसरेमें भी प्रवेश कर जाते हैं ।]

\* केह कहे,—“अहे भाइ ! वहिर्मुखगण ।

हइया स्वतन्त्र, धर्म करये लघन ॥

वहिर्मुखगणमध्ये ये प्रधान ता'रे ।

'रघुनाथ' साजाइया भोंडाय लोकेरे ॥

स्वमत रचिया ये पापिष्ठ दुराचार ।

कहये कवीन्द्र बगदेशेते प्रचार ॥”

## एकसौ-आठवाँ परिच्छेद श्रीचैतन्यदेवके पार्षदवृन्द

कलियुगपावनावतारी श्रीकृष्णचैतन्यदेवकी लीलामें सहायक अगणित पार्षदवृन्दमें कतिपय पार्षदोका अति सक्षिप्त तथा असपूर्ण परिचय नीचे दिया जाता है ।

### श्रीनित्यानन्दप्रभु

राठ देशमें 'एकचाका' ग्राममें मैथिल-ब्राह्मण-कुलोत्पन्न श्रीहाडाई पण्डित या श्रीहाडो ओझा और उनकी सहधर्मिणी श्रीपद्मावती देवीके घर माघ शुक्ल त्रयोदशी तिथिको श्रीनित्यानन्द अवतीर्ण

केह कहे—“देखिलाम महापापिगण ।  
आपनाके गाओयाय छाडि’ श्रीकृष्णकीर्तन ॥  
केह कहे—“राठदेशे एक विप्राधम ।  
'मल्लिक' खेयाति, दुष्ट नाहि ता' र सम ॥  
से पापिष्ठ आपनारे 'गोपाल' कहाय ।  
प्रकाशि राक्षसमाया लोकोरे भौंडाय ॥

—भ० र० १४ तरंग

[कोई कहता है—“अरे भाई ! वहिर्मुखगण (भगवद्बिमुख व्यक्तिगण) स्वेच्छाचारी बन, धर्मका विरुद्धाचरण कर रहे हैं। उनमें जो प्रधान है उसे 'रघुनाथ' सजाकर लोगोको धोखा दिया जा रहा है। कोई पापिष्ठ दुराचारी अपना ही मत रचकर बगदेशमें अपनेको कविश्रेष्ठ कहलाकर प्रचार कर रहा है।” कोई कहता है—“देखा, महापापीगण श्रीकृष्णकीर्तन छोड़कर अपनेको ही प्रचार करा रहे हैं।” कोई कहता है—“राठदेशमें एक नीच ब्राह्मण जो 'मल्लिक'के नामसे परिचित है, जिसके समान दूसरा दुष्ट नहीं, वह पापिष्ठ अपनेको 'गोपाल' कहलाता है। वह राक्षसी-माया फैलाकर लोगोको ठग रहा है।]

हुए। श्रीनित्यानन्द जब बारह वर्षके थे, तब एक परिव्राजक वैष्णव-सन्यासी अतिथिरूपमें आये और श्रीनित्यानन्दको उनके माता-पिताके पाससे भिक्षाके रूपमें ले गये। उस सन्यासीके साथ श्रीनित्यानन्दने भारतके बहुत-से तीर्थोंका पर्यटन किया। पश्चिम भारतमें भ्रमण करते समय श्रीमाधवेन्द्रपुरीपादके साथ श्रीनित्यानन्दका साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार अपनी बीस वर्षकी उम्रतक तीर्थभ्रमण करते-करते, जब श्रीगौरसुन्दरने श्रीनवद्वीपमें आत्मप्रकाश किया तो, वह वहाँ जाकर उनसे मिले। श्रीनित्यानन्दने श्रीश्रीवासके घर श्रीगौरसुन्दरकी श्रीव्यासके रूपमें पूजा की, तथा श्रीगौरहरिके षड्भुज-रूपमें दर्शन किये। श्रीगौरागकी आज्ञासे श्रीनित्यानन्द और श्रीहरिदास ठाकुर जिस समय नवद्वीपमें घर-घर श्रीकृष्णभजनके सम्बन्धमें प्रचार कर रहे थे, उसी समय मद्यपी 'मधाइ'ने श्रीनित्यानन्दके सिरपर प्रहार किया। श्रीनित्यानन्दने मधाइके सारे पाप और अपराध दूरकर 'जगाइ-मधाइ' दोनों भाइयोंको श्रीगौरसुन्दरकी कृपासे अभिषिक्त किया। जब श्रीमन्महाप्रभु सन्यासग्रहण करके नीलाचलकी ओर जाने लगे, उस समय श्रीनित्यानन्दने श्रीचैतन्यके दण्डके तीन टुकड़े करके उसे नदीके जलमें बहा दिया था, क्योंकि, साधक जीवके समान स्वयं भगवान्को सन्यास या दण्ड-ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। श्रीगौरसुन्दरके आदेशसे श्रीनित्यानन्दप्रभुने गौडदेशमें प्रेमभक्तिका प्रचार किया।

'बेनापोल'का रामचन्द्र खा नामक एक वैष्णवविद्वेषी पाखंडी जमींदार श्रीनित्यानन्दके चरणोंमें अपराध करके सपरिवार विनष्ट हो गया। 'पानीहाटी' गाँवमें श्रीनित्यानन्दने श्रीरघुनाथ दासके द्वारा 'दही-चूडा-दण्ड-महोत्सव' कराया था। श्रीनित्यानन्दकी कृपासे उनके श्रीअगके बहुमूल्य अलंकारोंको लूटनेकी इच्छा करनेवाले डाकू सरदारको भी चित्तशुद्धि और प्रेमभक्तिकी प्राप्ति हुई थी।

श्रीनित्यानन्दने 'अवधूत' अर्थात् आश्रमातीत परमहंसकी लीला की है। ब्रजलीलापे जो श्रीबलराम हैं, श्रीगौरावतारमें वे ही श्रीनित्यानन्द

है। श्रीजाह्नवा और श्रीवसुधा—ये दो श्रीनित्यानन्दकी शक्तियाँ हैं। श्रीनित्यानन्दके पुत्ररूपमें श्रीवसुधाके गर्भसिन्धुसे श्रीवीरभद्र गोस्वामी प्रभु अवतीर्ण हुए। ये श्रीजाह्नवा माताके शिष्य हुए। प्रभु श्रीवीरभद्रने 'झामटपुर' ग्रामके निवासी श्रीयदुनाथ आचार्यकी औरस-जात कन्या श्रीमती और पालिता कन्या श्रीनारायणीसे विवाह किया। उनको कोई सन्तान नहीं हुई। श्रीवीरभद्र प्रभुके द्वारा पालित तीन पुत्रोंमें छोटे श्रीरामचन्द्रने 'खड़दा'में, बड़े पुत्र श्रीगोपीजन वल्लभने बर्दवान जिलेके 'लता' गावमें और मझले श्रीरायकृष्णने मालदाके पास 'गयेशपुर' गाँवमें वास किया। श्रीनित्यानन्दके पार्षदगण ब्रजके सखा 'द्वादश गोपाल'के नामसे विख्यात हैं। श्रीनित्यानन्दके गण असंख्य हैं। श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता ठाकुर श्रीवृन्दावनने अपनेको श्रीनित्यानन्द प्रभुका 'सर्वशेष भृत्य' कहकर परिचय दिया है।

### श्रीअद्वैताचार्य

श्रीगौरहरिके आविर्भावके पूर्व श्रीअद्वैताचार्य श्रीहट्टसे 'शान्तिपुर'में आकर रहने लगे थे तथा उन्होंने श्रीनवद्वीप-मायापुरमें श्रीवासके आँगनसे थोड़ी दूरपर एक वैष्णव-सभा स्थापित की थी। उनका पहला नाम 'श्रीकमलाक्ष' था (चै० च० आ० ६।३०)। वे स्वयं विष्णुतत्त्व हैं। ईश्वरके साथ अभिन्न होनेके कारण उनका नाम 'अद्वैत' है।

“महाविष्णुर अंश—अद्वैत गुणधाम ।

ईश्वरे अभेद, तेजि 'अद्वैत' पूर्णनाम ॥

भक्ति-उपदेश बिनु तोंर नाहि कार्य ।

अतएव नाम हैल 'अद्वैत-आचार्य' ॥

वैष्णवेर गुरु तेंहो जगतेर आर्य ।

दुइ नाम मिलने हैल अद्वैत-आचार्य ॥

—चै० च० आ० ६।२५, २८-२९

‘अर्थात् श्रीअद्वैत सर्वगुणसम्पन्न है।, वे महाविष्णुके अश है। ईश्वरसे अभिन्न होनेके कारण उनका ‘अद्वैत’ नाम पूर्ण है। भक्तिके उपदेश देनेके सिवा वे और कोई कार्य नहीं करते, अतएव उनका ‘अद्वैताचार्य’ नाम पडा। वे वैष्णवोंके गुरु, तथा जगत्वासीके लिए पूजनीय है। इस प्रकार दोनों नामोंके मिलनेसे अद्वैताचार्य नाम हुआ।’

श्रीअद्वैताचार्य माघ शुक्ल सप्तमीको आविर्भूत हुए थे। श्रीअद्वैत आचार्यने श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामिपादके शिष्यकी लीला की थी। उस समयके बहिर्मुख जीवोंकी कुमति और दुर्दशा देखकर वे नवद्वीप-माया-पुरमे जल-तुलसीके द्वारा कलियुगपावनावतारी श्रीभगवान् गौरसुन्दरके अवतारके लिये आराधना करते थे। श्रीहरिदास ठाकुर शान्तिपुरके समीप ‘फुलिया’ग्राममे श्रीअद्वैताचार्यके सग और कृपाको प्राप्तकर धन्य हो गये थे। श्रीअद्वैताचार्यने श्रीहरिदासको अपने पितृपुरुषका आढ्यपात्र भोजन कराया था। श्रीगौरहरिने अवतीर्ण होकर और आत्मप्रकाश करके श्रीअद्वैताचार्यके साथ नानाप्रकारका लीला-विलास तथा जगत्के जीवोंके प्रति कृपा-वितरण किया था। श्रीनवद्वीप-मायापुरमे ‘श्रीचन्द्र-शेखर-भवन’मे श्रीगौरहरिने श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द, श्रीश्रीवास, श्रीहरिदास आदि भक्तवृन्दके साथ ब्रजलीलाका नाट्याभिनय किया था। उसमे श्रीअद्वैताचार्यने महाविदूषकका स्वाग या वेश ग्रहण किया था। सन्यासलीलाके ठीक पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुने शान्तिपुरमे श्रीअद्वैत-मन्दिरमे श्रीशचीमाताके श्रीहस्तके द्वारा तैयार किये हुए नैवेद्यका भोजन और कीर्तन-नर्तन-विलास किया था। श्रीअद्वैतके पुत्र श्रीअच्युतानन्द जब पाँच वर्षके थे तभी उनकी श्रीचैतन्यदेवमे स्वाभाविकी भगवद्बुद्धि और भगवद्भक्तिकी बात सुनी जाती है। श्रीअद्वैताचार्यके दो स्त्रियाँ और छ पुत्र थे। श्रीअच्युतानन्द, श्रीकृष्ण मिश्र, और श्रीगोपालदास श्रीसीतादेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए, ये श्रीगौरभक्त थे। श्रीअद्वैताचार्यके अन्य तीन पुत्रोंके नाम हैं—बलराम, स्वरूप और जगदीश। श्रीअद्वैताचार्य प्रतिवर्ष गौडीय-भक्तोंके साथ श्रीक्षेत्रमे (पुरीमे) जाकर श्रीगौरसुन्दरके

साथ रथयात्रामे नृत्य और कीर्तन करते थे । श्रीश्रीवास पंडितके श्रीअद्वैताचार्यको श्रीशुकदेव या श्रीप्रह्लादके समान वैष्णव बतलाने पर श्रीगौरसुन्दर श्रीअद्वैतकी महिमा प्रकट करते हुए कहते,—

“शुक-आदि करि’ सब बालक उँहार ।

नाडार (श्रीअद्वैतेर) पाछे से जन्म जानिह सबार ॥

अद्वैतेर लागि’ मोर एइ अवतार ।

मोर कर्णे बाजे आसि’ नाडार हुंकार ॥

शयने आछिनु मुनि क्षीरोद-सागरे ।

जगाइ’ आनिल मोरे नाडार हुंकारे ॥

—चै० भा० अ० ६।२६६-२६८

अर्थात् शुक आदिसे लेकर सब अद्वैतके सामने बालक है, इन सबका जन्म अद्वैतके पीछे हुआ है, ऐसा जानो । अद्वैतके लिये ही मेरा यह अवतार है । अद्वैतका हुंकार मेरे कानोमे आ-आकर ध्वनित होता रहता है । क्षीर-सागरमे मैं शयन कर रहा था, पर श्रीअद्वैतका हुंकार मुझे यहाँ जगा ले आया ।

### श्रीगदाधर पंडित

पंचतत्त्वात्मक श्रीगौरहृदिके शक्ति-अवतार श्रीगदाधर पंडित गोस्वामी हैं । श्रीगदाधर पंडितके पिताका नाम है श्रीमाधव मिश्र और माताका नाम श्रीरत्नावती । शैशवकालसे ही श्रीगदाधर विषयोसे विरक्त और श्रीकृष्णमे रति-सम्पन्न थे । श्रीईश्वरपुरीपादने नवद्वीपमे श्रीगदाधरको ‘श्रीकृष्णलीलामृत’ ग्रन्थ पढाया था । नवद्वीपमे श्रीनिमाइ पंडितके साथ न्यायके विभिन्न विषयोको लेकर श्रीगदाधर पंडितका प्राय ही वाद-विवाद हुआ करता था । आजन्म ससार-विरक्त गदाधरने चट्टगाँव-निवासी महाभागवत श्रीपुंडरीक विद्यानिधिको ‘भोगीके समान’ देखकर पहले उनकी वैष्णवताके सम्बन्धमे कुछ सशय-लीला प्रकट की थी , परन्तु, पीछे विद्यानिधिके अपूर्व विप्रलम्भ प्रेमविकारको देखकर

जीवोकी शिक्षाके लिये अपने अपराध-मार्जनके अभिप्रायसे श्रीपुडरीकसे दीक्षा-मन्त्र ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुकी सन्यासलीलाके बाद श्री गदाधर नीलाचलमे 'यमेश्वर-टोटा' मे जाकर स्थायीभावसे रहने लगे और वहाँ उन्होंने 'श्रीगोपीनाथकी सेवा' प्रकट की। 'श्रीनरेन्द्रसरोवर'के तीरपर श्रीगदाधर पंडित सपार्षद श्रीगौरसुन्दरके पास प्रति-दिन श्रीमद्-भागवतकी व्याख्या करते थे। श्रीवल्लभ भट्ट (आगे, 'श्रीवल्लभाचार्य' के नामसे प्रसिद्ध) पहले बाल-गोपाल-मन्त्रसे कृष्ण-सेवा करते थे। पश्चात् वे श्रीगदाधर पंडितसे मन्त्र-ग्रहणकर श्रीकिशोर-गोपालकी उपासनामे प्रवृत्त हुए। श्रीअद्वैताचार्यके ज्येष्ठ पुत्र श्रीअच्युतानन्द श्रीगदाधर पंडितके प्रधान शिष्य थे। 'वराहनगर'के श्रीरघुनाथ भागवताचार्य भी श्रीगदाधर पंडितके अन्यतम शिष्य रहे। श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीभूगर्भ गोस्वामी आदि श्रीगदाधर पंडितके शिष्य हैं।

### श्रीहरिदास ठाकुर

श्रीचैतन्यदेवके आविर्भावके पहले श्रीहरिदास ठाकुर यशोहर जिलेके अन्तर्गत 'बूढन' ग्राममे मुसलमान-कुलमे आविर्भूत हुए थे। वे यवनकुलकी सामाजिक रीति-नीतिका त्यागकर श्रीहरिनाम-ग्रहणके व्रती बने और युवावस्थामे ही 'बूढन' ग्राम त्यागकर 'बेनापोल'के समीप एक निर्जन वनमे कुटिया बनाकर तुलसीकी सेवा और दिन-रातमे तीन लाख श्रीनाम-सकीर्तन करते हुए ब्राह्मणके घरकी भिक्षासे निर्वाह करने लगे। उस देशके जमींदार पर श्रीकातर वैष्णव-द्रोही 'श्रीरामचन्द्र खाँ'ने श्रीहरिदासके चरित्रमे कलक लगानेके लिए उनके पास एक सुन्दरी युवती वेश्याको भेजा। वह वेश्या महाभागवत श्रीहरिदासके ऐकान्तिक भजनको देखकर और उनके मुँहसे निरन्तर श्रीहरिनाम-कीर्तन श्रवण कर ठाकुरकी कृपासे निर्वेद-ग्रस्त (वैराग्यवती) हो गयी और सदाके लिये पापवृत्तिका

त्याग करके वैष्णवधर्ममे दीक्षित हो गयी । रामचन्द्र खाँके महा-  
भागवतके चरणोमे अपराधके फलसे, धन-जन-प्राण सबका नाश हो गया ।  
श्रीहरिदास ठाकुर 'बेनापोल' त्यागकर शान्तिपुर आये और श्रीअद्वैत  
आचार्यका सग प्राप्त कर फुलिया नामक ग्राममे श्रीनाम-भजन  
करते रहे । काजी 'अम्बुया'ने सूबेदारके पास जाकर श्रीहरिदासके  
विरुद्ध अभियोग किया । सूबेदारने श्रीहरिदास ठाकुरको कैदखानेमे बंद  
करनेका आदेश दिया । ठाकुर श्रीहरिदासके दर्शन, वन्दन और कृपासे  
दूसरे अपराधी कैदियोका भी मगलोदय हो गया ।

श्रीहरिदास जब सूबेदारके सामने लाये गये तो उसने उनको 'कलमा'  
पढ़ने और हिन्दूधर्मके आचारको त्यागनेका उपदेश दिया । श्रीहरिदास  
बोले,—

“खण्ड-खण्ड हई वेह याय यदि प्राण ।

तबु आमि बदन ना छाड़ि हरिनाम ॥”

—चै०भा०आ० १६।९४

अर्थात् 'मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े होकर चाहे प्राण चले जायँ, तब  
भी मैं मुखसे हरिनाम नहीं छोड़ूँगा ।' इस पर सूबेदार बहुत बिगडा  
और काजीके परामर्शके अनुसार उसने श्रीहरिदासको बाईस-बाजारमे ले  
जाकर निर्दयरूपसे प्रहार करनेका आदेश दिया । तदनुसार यवनोने  
उनके ऊपर अकथनीय अत्याचार किया । परन्तु श्रीहरिदास अपने  
द्रोही सत्यविरोधी पापियोकी कल्याण-कामना ही करते रहे । बाईस-  
बाजारमे भीषण प्रहार करने पर भी श्रीहरिदासके शरीरको अक्षत  
देखकर यवन लोग उनको 'पीर' समझने लगे । और श्रीहरिदाससे  
बोले कि 'यदि उनके प्राण शरीरसे अलग नहीं हो जायँगे तो सूबेदार  
द्वारा हमलोगोको दंडित होना पडेगा।' इसपर श्रीहरिदास यवनोके  
उपकारार्थ समाधिस्थ होकर मृतवत् पड गये और उनलोगोने उनको  
उठाकर गंगाके जलमे बहा दिया । श्रीहरिदास बहते-बहते फुलिया  
नगरमे जा पहुँचे और पूर्ववत् श्रीकृष्णनाम-भजनमे तल्लीन हो गये ।



फुलियामे श्रीहरिदास ठाकुरकी भजन-गुफामे एक भीषण विषधर सर्प रहता था ; परन्तु उसने मत्सरहीन श्रीहरिदासके प्रति कोई हिंसा नहीं की । एक परश्रीकातर 'ढोगी ब्राह्मण'ने श्रीहरिदासके इस अप्राकृत भावका अनुकरण करना चाहा तो उसे विशेषरूपसे कष्ट भोगना पड़ा । भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्यने शान्तिपुरमें "तुमि खाइले ह्य कोटि ब्राह्मण भोजन" अर्थात् 'तुम्हारे खा लेनेसे कोटि-ब्राह्मण भोजन कराना हो जाता है'—यह कहकर श्रीहरिदास ठाकुरको पिताका श्राद्धपात्र प्रदान किया । श्रीहरिदासके फुलियामे रहते समय स्वयं मायादेवी एक ज्योत्स्नामयी रात्रिमें श्रीहरिदासको मोहित करने आयी और स्वयं ही श्रीकृष्णनाम-प्रेममें दीक्षिता हो गयी । श्रीहरिदास ठाकुर जब हिरण्य और गोवर्द्धन मजुमदारके पुरोहित श्रीबलराम आचार्यके घर रहते थे, उस समय कुछ स्मार्त पंडितोंने उच्चस्वरसे हरिनाम-कीर्तनके विरुद्ध आवाज उठायी । गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्तिको श्रीहरिदासके चरणोमें अपराध करनेके कारण गलितकुष्ठ रोग हो गया । श्रीगौरहरि जब बाल्यलीला करते थे, उसी समय श्रीहरिदास श्रीनवद्वीपमें श्रीअद्वैतप्रभुकी सभामें तथा श्रीवास आदि भक्तवृन्दके साथ श्रीहरिकथाकी चर्चा किया करते थे । गयासे लौटकर श्रीगौरहरिने श्रीनित्यानन्द और ठाकुर श्रीहरिदासको श्रीधाम-नवद्वीपमें घर-घर श्रीहरि-कीर्तन करनेका आदेश प्रदान किया । श्रीहरिदासने बगदेशमें अनेको स्थानोंमें श्रीहरिनामका प्रचार किया । बर्दवान जिलेके अन्तर्गत 'कुलीन-ग्राम'में 'श्रीरामानन्द बसु' आदिके घर एक समय रहकर श्रीहरिदासने श्रीनाम-भजन किया था और कुलीन-ग्रामवासियों पर बड़ी कृपा की थी । कुलीन-ग्राममें अब भी श्रीहरिदासका भजन-स्थान देखनेमें आता है । श्रीहरिदास श्रीगौरहरिके प्रत्येक अनुष्ठानमें ही सहायक स्वरूप हुए थे । 'महाप्रकाश'के दिन श्रीचन्द्रशेखरके घर नाट्याभिनयके समय, तथा काजी-उद्धारके लिये नगर-संकीर्तनके समय श्रीहरिदास श्रीमन्महाप्रभुके प्रधान सेवक थे । श्रीगौरहरिके सन्यास-ग्रहण करके श्रीनीलाचल चले जानेपर श्रीहरिदास

भी श्रीमन्महाप्रभुके सगके लोभसे श्रीकाशीमिश्रके घरके समीप अवस्थान कर एक निर्जन कुटीमें अपतितरूपसे श्रीनाम-भजन करने लगे। आजकल वह भजन-स्थान 'सिद्ध-बकुल'के नामसे प्रसिद्ध है। श्रीश्रीरूप-सनातन श्रीहरिदासठाकुरके साथ श्रीनीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुका सुखानुसन्धान करते थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीहरिदासके द्वारा विश्वमें श्रीनाम-माहात्म्यका प्रचार कराया है। ठाकुर श्रीहरिदासने अपनी देहत्याग-लीलाके अन्तिम दिन भी सख्यापूर्वक नाम-ग्रहणकी मर्यादा प्रदर्शित की थी। श्रीमन्महाप्रभुके श्रीचरणोंको हृदयमें धारणकर, आँखोंके द्वारा उनके दिव्य रूपके दर्शन और जिह्वासे 'श्रीकृष्णचैतन्य' नामका उच्चारण करते-करते सपार्षद श्रीचैतन्यदेवके सामने श्रीपुरुषोत्तम-धाममें श्रीहरिदास ठाकुरने महाप्रयाण-लीला प्रकट की। श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास को गोदमें लेकर नृत्य करने लगे और विमानपर चढ़ाकर कीर्तन करते-करते समुद्र तीरपर ले जाकर उन्होंने स्वयं अपने हाथों श्रीहरिदासको समाधि दी। श्रीमन्महाप्रभुने स्वयं श्रीमहाप्रसाद भिक्षा करके श्रीहरिदासके अन्तर्धान-उत्सवको भक्तगणके साथ सम्पन्न किया।

### श्रीश्रीवास पंडित

पचतत्त्वात्मक श्रीगौरहरिके शुद्धभक्त-तत्त्वके मुख्य पात्र हैं श्रीश्रीवास पंडित। श्रीश्रीवास, श्रीश्रीराम, श्रीश्रीपति, तथा श्रीश्रीनिधि—ये चारो भाई तथा इनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासी—सभी श्रीमन्महाप्रभुके एकान्त सेवक और सेविकाएँ हैं। श्रीश्रीवास पंडितकी सह-धर्मिणीका नाम है 'श्रीमालिनीदेवी'। ये स्नेहमें श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दकी 'जननी' तथा सेवामें उनकी 'दासी' होनेका अभिमान रखनेवाली हैं। श्रीश्रीवासके ही किसी भाईकी कन्या श्रीनारायणी देवी श्रीचैतन्यभागवतके रचयिता श्रीवृन्दावनदास ठाकुरकी जननी हैं। श्रीश्रीवास पंडित श्रीहट्ट में आविर्भूत हुए। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके पहले ही गंगावास करनेके लिए श्रीनवद्वीपमें श्रीजगन्नाथ मिश्रके घरसे थोड़ी दूरपर उन्होंने

अपना निवासस्थान बनाया । श्रीगौरसुन्दरकी नवद्वीप-लीलातक श्रीवासने वही निवास किया था । उनकी सन्यास-लीलाके बाद 'कुमारहट्ट'में जाकर वास करने लगे । उस समयके वहिर्मुख पाखडी लोगोके अजस्र वाक्यबाण तथा पाखडी हिन्दुओके नाना प्रकारके अत्याचारोको प्रसन्नतापूर्वक सहन करके उन्होने श्रीगौरहरिकी सेवानिष्ठाके आदर्शका प्रदर्शन किया था । श्रीश्रीवास पंडितके घर प्रतिरात्रि सपार्षद श्रीगौरहरिका सकीर्तन-विलास हुआ था । उन्हीके घर श्रीनित्यानन्दने श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान किया था । श्रीश्रीवासकी चार-वर्षकी भतीजी श्रीनारायणीदेवीने श्रीगौरहरिके भोजनावशेषको पाकर कृष्णप्रेममे क्रन्दन किया था । श्रीश्रीवासकी दासी 'दुखी'की एकनिष्ठ सेवापरायणता को देखकर श्रीगौरहरिने उसका नाम 'सुखी' रख दिया था । श्रीवासके घर श्रीमन्महाप्रभुने महामहाप्रकाश-लीला प्रकट की थी । श्रीवासका वस्त्र सीनेवाला यवन दर्जीतक भी श्रीगौरहरिकी कृपा प्राप्त कर प्रेमी महाभागवत हो गया था । श्रीश्रीवास वैष्णव-गृहस्थके आदर्श-स्वरूप है, श्रीवासके घरके दास-दासी, कुत्ते-बिल्ली तकमे भी भक्ति थी, पर श्रीवासकी सासके हृदयमे सरलताका अभाव होनेके कारण वे श्रीगौरहरिकी प्रीतिको प्राप्त न कर सकी । श्रीश्रीवास श्रीगौरहरिकी सन्तुष्टि के लिये इतनी दूरतक अभिनिविष्ट थे कि पुत्रशोक भी उनको स्पर्श नहीं कर सका । श्रीगौरहरिकी कृपासे श्रीश्रीवासका मृत बालकपुत्र तत्त्वज्ञान प्राप्त कर धन्य हो गया था तथा तत्वोपदेशके द्वारा परिवारके लोगोका शोक दूर कर सका था ।

भगवानेर भक्त यत श्रीवास प्रधान ।

ताँहार चरणपद्मे सहस्र प्रणाम ॥

—चै० च० आ० १।३८

[भगवान्‌के जितने भक्त हैं, उनमे श्रीवास प्रधान है, उनके चरण-कमलोमे सहस्र प्रणाम है ।]

## श्रीदामोदर-स्वरूप

श्रीगौरसुन्दरके अत्यन्त ममीं तथा उनके द्वितीय स्वरूप श्रीदामोदर स्वरूप या 'श्रीस्वरूप-दामोदर' गोस्वामिपाद हैं। गृहवस्थानके समय इनका नाम था 'श्रीपुरुषोत्तम आचार्य'। वे श्रीगौरहरिकी नवद्वीप-लीलाके समय उनके ही श्रीचरणोंके समीप रहते थे। श्रीगौरहरिकी सन्यास-लीलाके बाद श्रीपुरुषोत्तम विरहोन्मत्त हो गये, और श्रीकाशी-धाममें 'श्रीचैतन्यानन्द' नामक सन्यासी-गुरुसे केवल शिखासूत्र-त्यागरूप सन्यास-ग्रहण किया, पर योगपट्ट, सन्यास-नाम या दण्डादि ग्रहण नहीं किया। अतएव उनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-सूचक 'स्वरूप' नाम बना ही रहा। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूपकी सगीत-विद्यामें अद्भुत दक्षता देखकर पहले ही उनका 'दामोदर' नाम रक्खा था। दोनों नाम मिलकर उनका 'दामोदर-स्वरूप' नाम हो गया। सुना जाता है कि इन्होंने 'सगीत-दामोदर' नामक सगीत-शास्त्रके एक मौलिक ग्रन्थकी रचना की थी। श्रीस्वरूप-दामोदर गौडीयलोगोंके अधिनायकके रूपमें हैं। श्रीमन्महाप्रभु की सेवाके लिये श्रीस्वरूप-दामोदरने श्रीनीलाचलमें जाकर वास किया। श्रीमन्महाप्रभु गीत, श्लोक, ग्रन्थ, काव्य आदि जो कुछ सुनते थे, उसकी पहले श्रीस्वरूप-दामोदर परीक्षा कर देते थे। सिद्धान्तविरुद्ध या रसाभास-दोषयुक्त कोई भी गीत या काव्य महाप्रभु नहीं सुन सकते थे। श्री स्वरूप-दामोदरके करचामे श्रीमन्महाप्रभुकी गूढ अन्त्यलीला तथा पञ्चतत्वात्मक श्रीगौरहरिका तत्व संक्षेपमें गुम्फित था। उसे श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपादने कठस्थ कर रक्खा था। श्रीरघुनाथके कठसे उसे सुनकर श्रीकविराज गोस्वामीने 'श्रीचैतन्य-चरितामृत'में विवृत किया है। श्रीमन्महाप्रभु अपनी अन्त्यलीलामे श्रीस्वरूप-दामोदर और श्री-रायरामानन्दके साथ श्रीचण्डीदास और श्रीविद्यापतिकी 'पदावली', श्रीबिल्वमंगलका 'श्रीकृष्णकणमृत', श्रीजयदेवका 'श्रीगीतगोविन्द' और श्रीरामानन्द रायका 'श्रीजगन्नाथ-बल्लभ-नाटक' आदि अप्राकृत श्रीकृष्ण-

तोषणपरक काव्योका नित्य आस्वादन करते थे। कहना नहीं होगा कि श्रीगौरहरिके द्वारा आविष्कृत उन्नत-उज्ज्वल भक्तिरस-सिद्धान्त, जो गौडीय-सम्प्रदायमे प्रचारित हुआ, उसके मूल पुरुष श्रीस्वरूप-दामोदर ही हैं। श्रीकविराज गोस्वामिप्रभुने लिखा है,—

अत्यन्त निगूढ़ एइ रसेर सिद्धांत ।

स्वरूप-गोसांनि-मात्र जानेन एकान्त ॥

येवा केह अन्य जाने, सेहो ताँहा हैते ।

चैतन्य गोसांनिर तँह अत्यन्त मर्म याते ॥

—चै० च० आ० ४।१६०-१६१

[इस रसका सिद्धान्त अत्यन्त गूढ़ है। इसे पूरा पूरा केवल श्रीस्वरूप गोस्वामी ही जानते हैं। और दूसरा जो कोई जानता है, तो उसे भी उनके ही द्वारा प्राप्त हुआ है, क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभुके अत्यन्त अतरंगी रहे।]

### श्रीरामानन्द राय

‘पुरी’से प्रायः छः कोस पश्चिम आलालनाथ’से थोड़ी दूर पर ‘बेण्टपुर’ ग्राममे श्रीभवानन्द रायके ज्येष्ठपुत्र श्रीरामानन्द राय आविर्भूत हुए। श्रीभवानन्दके पाँच पुत्र थे—श्रीरामानन्द, श्रीगोपीनाथ, श्रीकलानिधि, श्रीसुधानिधि और श्रीवाणीनाथ। श्रीरामानन्द उड़ीसाके स्वाधीन राजा गजपति श्रीप्रतापरुद्रके अधीन पूर्वं और पश्चिम गोदावरीके शासन-कर्त्तक पदपर अधिष्ठित थे। वे एक ही साथ श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, पंडित, कवि और महाभागवतोत्तम थे। श्रीनवद्वीपके श्रीमहेश्वर विशारदके पुत्र वेदान्ती पंडित श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीनवद्वीपवासी श्रीपुरुषोत्तम आचार्यके साथ श्रीरामानन्दका विशेष सौहार्द था। श्रीसार्वभौम भट्टाचार्यकी प्रार्थनासे श्रीचैतन्यदेवने गोदावरी तीरपर ‘गोष्पदतीर्थ’ मे (वर्तमान ‘कभुर’मे) श्रीराय रामानन्दके साथ प्रथम मिलकर साध्य-साधन-तत्त्वके विषयमे चर्चा की थी। श्रीरामानन्दने श्रीनीलाचलमे

श्रीमन्महाप्रभुके साथ नित्य रहने और श्रीकृष्ण-कथालाप तथा रसास्वादन में कालक्षेप करनेके उद्देश्यसे राजकार्यका परित्याग कर दिया था। उनका विषयीवत् व्यवहार देखकर तथा उनकी अतुलनीय अप्राकृत-भजनलीलाका मर्म न समझ सकनेके कारण श्रीहट्टनिवासी श्रीप्रद्युम्न मिश्रने कुछ सन्देह प्रकट किया, इसपर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमिश्रको श्रीरायरामानन्दका महत्व बतलाकर उन्हीके द्वारा ही श्रीहरिकथा सुननेका आदेश दिया। श्रीमिश्र श्रीरायके मुखसे श्रीकृष्णकथा सुनकर समझ सके कि, “मनुष्य नहे राय, कृष्णभक्तिरसमय।” (चै०च० अ० ५।७१) अर्थात् राय मनुष्य नहीं है, वे कृष्णभक्ति-रसमय हैं। श्रीमन्महाप्रभु प्रतिरात्रिको श्रीराय-रामानन्द और श्रीस्वरूप-दामोदरके साथ कृष्णप्रेमरसका आस्वादन करते थे।

“रामानन्देर कृष्णकथा, स्वरूपेर गान।

विरह-वेदनाय प्रभुर राखये पराण ॥”

—चै०च० अ० ६।६

[रामानन्दकी कृष्णकथा और स्वरूपके गानने ही विरह-वेदनामें प्रभुके प्राणोको बचा रखा था।]

श्रीपुरुषोत्तममें श्रीगुण्डिचामंदिर और जगन्नाथदेवके श्रीमन्दिरके प्रायः बीचमें ‘श्रीजगन्नाथ-वल्लभ’ नामक एक उद्यानमें श्रीरायरामानन्द रहा करते थे। वही श्रीरायरामानन्द कृत ‘श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक’ अभिनीत होता था। गभीरामे जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीविल्वमगलके ‘श्रीकृष्ण-कर्णामृत’ तथा श्रीविद्यापति और चडीदासकी ‘पदावली’का नित्य आस्वादन करते थे, उसी प्रकार श्रीरामानन्द रायके ‘श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक’का भी प्रतिदिन आस्वादन करते थे। श्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटक या श्रीरामानन्द-संगीत-नाटकके अतिरिक्त श्रीरामानन्दका ‘क्षुद्रगीत-प्रबन्ध’, श्रीरूपगोस्वामिपादके द्वारा सगृहीत ‘श्रीपद्यावली’में उद्धृत कुछ श्लोक तथा ‘श्रीचैतन्यचरित महाकाव्य’ और

‘श्रीचैतन्यचरितामृत’मे उद्धृत ब्रजभाषामे रचित एक गान देखनेमे आता है ।

### श्रीसनातन गोस्वामिपाद

श्रीचैतन्यदेवके मनोवाञ्छा-परिपूरक षड्गोस्वामियोमे सबसे ज्येष्ठ श्रीसनातन गोस्वामिप्रभुपाद कर्णाटक-नरेश ‘सर्वज्ञ’ नामक भरद्वाज गोत्रीय यजुर्वेदीय ब्राह्मणके वशमे श्रीकुमारदेवके पुत्ररूपमे आविर्भूत हुए थे । श्रीसनातन और उनके छोटे भाई श्रीरूप गौड़-नरेश हुसेनशाहकी सभामे क्रमशः ‘साकर-मल्लिक’ और ‘दबीर-खास’ उपाधि प्राप्त कर मन्त्रित्वके पद तथा उच्च राज्यकार्यपर अधिष्ठित थे । गौड़के ‘राम-केलि’ ग्राममे श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर श्रीश्रीरूप-सनातन विषयोका परित्याग करनेके लिये उत्कठित हो उठे । रामकेलिमे ही श्रीमन्महाप्रभुने उन दोनो भाइयोके ‘साकर-मल्लिक’ और ‘दबीर-खास’ नाम छुड़ाकर ‘श्रीसनातन’ और ‘श्रीरूप’ नाम रखे । श्रीसनातन अस्वस्थताका बहाना करके रामकेलिमे नित्य अपने घर पड़ितोके साथ श्रीमद्भगवतकी चर्चा करते थे । इसी समय अकस्मात् एक दिन बादशाह हुसेनशाह श्रीसनातनके घर आ पहुँचे और उनको इस अवस्थामे देखा तथा यह जानकर कि श्रीसनातनकी अब राजकार्य करनेकी इच्छा नहीं है, उनको कैदखानेमे डाल दिया । श्रीरूप पहले ही रामकेलिसे चले गये थे । उन्होने गुप्तचरके द्वारा एक पत्र श्रीसनातनको दिया । उक्त पत्रमे उन्होने बताया कि,—“श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन जा रहे हैं । आप जिस किसी उपायसे हो राज-बन्धनसे मुक्त होकर श्रीवृन्दावन पहुँचें ।” राजबन्दी श्रीसनातनने कैदखानेके उच्च कर्मचारीको सात हजार रुपये रिश्वत दी और भेष बदलकर वे वृन्दावन जाते हुए ‘काशी’मे श्रीमहाप्रभुसे मिले । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातनके दरवेश-वेशका त्याग कराकर उनको वैष्णवोचित वेश धारण कराया तथा उनमे शक्ति-संचार करके ‘दशाश्वमेध-घाट’ पर ‘साध्य-साधन-तत्त्व’की शिक्षा दी । श्रीमन्महाप्रभुने

श्रीसनातनके ऊपर चार प्रकारकी सेवाओंका भार प्रदान किया—(१) शुद्धभक्ति-सिद्धातकी स्थापना, (२) श्रीमथुरामण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार और लीलास्थान-निरूपण, (३) श्रीवृन्दावनमें श्रीविग्रह-प्रकटन और (४) वैष्णवस्मृति-सकलन तथा वैष्णव-सदाचारका प्रवर्तन । श्रीमन्महाप्रभुके आदेशसे श्रीसनातनने श्रीवृन्दावन जाकर अत्यन्त दैन्य, आर्ति और कृष्ण-विरहमय वैराग्यके साथ श्रीकृष्ण-भजन तथा श्रीमन्महाप्रभुकी मनोवाञ्छाका प्रचार किया । श्रीसनातन श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचलमें आकर श्रीहरिदास ठाकुरके साथ एक स्थानमें रहने लगे तथा प्रभुकी आज्ञासे पुनः श्रीवृन्दावनमें जाकर उन्होंने श्रीरूप, श्रीरघुनाथ दास, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपाल भट्ट आदि निज-जनोके साथ ऐकान्तिक श्रीहरिभजन-लीलाका आदर्श प्रकट किया । श्रीवृन्दावनमें श्रीयमुनाके तीर 'आदित्य-टीला' नामक स्थानमें श्रीमदनगोपालदेवकी सेवा प्रकाशित की । श्रीसनातनके रचे हुए ग्रन्थोंमें (१) 'श्रीबृहद्भागवत-मृत' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (२) 'श्रीहरिभक्तिविलास' और उसकी 'दिग्दर्शिनी' टीका, (३) 'श्रीकृष्णलीलास्तव' या 'श्रीदशमचरित' तथा (४) श्रीमद्भागवत दशमस्कन्धकी टीका 'श्रीबृहद्वैष्णवतोषणी' विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं ।

### श्रीरूपगोस्वामिपाद

गौडके 'रामकेलि' ग्राममें 'दबीर-खास' (श्रीरूप) श्रीगौरहरिके दर्शन प्राप्तकर विषयत्यागके लिये उपाय ढूँढ रहे थे । वे 'रामकेलि'से 'फतेहाबाद'में अपने घर नावमें भरकर बहुत-सा धन लाये और उस धनका आधा भाग ब्राह्मणोंकी सेवामें, एक चतुर्थांश कुटुम्बके भरण-पोषणार्थ और अवशिष्ट चतुर्थांश भावी विपत्तिसे बचनेके लिये उन्होंने विश्वस्त व्यक्तियोंके पास धरोहर रख दिया । छोटे भाई श्रीअनुपमके साथ श्रीरूप 'प्रयाग'में श्रीमहाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें उपस्थित हुए । वहाँ उनका श्रीवल्लभ भट्टके साथ परिचय हुआ । श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपको



प्रयागके 'दशाश्वमेध-घाट'पर शक्ति-संचार करके दस दिनोतक कृष्ण-तत्त्व, कृष्णभक्तितत्त्व और रसतत्त्वकी शिक्षा दी । श्रीमन्महाप्रभुकी इन्ही सारी शिक्षाओंको श्रीरूपपादने स्वरचित विभिन्न ग्रन्थोमे गुम्फित किया और श्रीवृन्दावन जाकर भजन-लीला प्रकट की । श्रीअनुपमकी गंगाप्राप्तिके बाद श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनार्थ श्रीनीलाचल गये । श्रीमन्महाप्रभुके उच्चारित "य कौमारहर"श्लोकमे प्रभुके हृदयगत भाव-को समझकर श्रीरूपने तदनुरूप एक श्लोक—"प्रिय सोऽय कृष्ण" इत्यादि की रचना की । श्रीरूपकी भजनकुटीके छप्परमे खोसे हुए तालपत्रपर लिखित इस श्लोकको देखकर और यह जानकर कि श्रीरूपकी चित्तवृत्ति उनके साथ एक-सी मिलती है श्रीमन्महाप्रभु बहुत ही उल्लसित हुए । श्रीनीलाचलमे श्रीरूपके 'श्रीविदग्धमाधव'-नाटक'की रचनाके समय श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके मोतिषोकी पक्तिके समान हस्ताक्षर तथा "तुण्डे ताण्डविनी रतिम्" श्लोकको देख और सुनकर शतमुखसे उनकी प्रशंसा की । 'श्रीजगन्नाथ-वल्लभ-नाटक'के रचयिता श्रीरायरामानन्दको लेकर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरूपके 'श्रीविदग्ध-माधवनाटक' और 'श्रीललितमाधव-नाटक'के विभिन्न अंग-प्रत्यंगका विचार और रसास्वादन किया था । श्रीरूपने श्रीवृन्दावनमे श्रीकेशीतीर्थके समीप 'श्रीगोविन्ददेव'के श्रीविग्रहको प्रकट किया । श्रीरूपके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रचलित हैं —(१) 'श्रीहसद्गत', (२) 'श्रीउद्धवसन्देश', (३) 'श्रीकृष्णजन्मतिथि-विधि', (४-५) 'श्रीराधाकृष्णगणोद्देश-दीपिका' (बृहत् और लघु), (६) 'श्रीस्तवमाला', (७) 'श्रीविदग्ध-माधव-नाटक', (८) 'श्रीललितमाधव-नाटक', (९) 'श्रीदानकेलि-कौमुदी' (भागिका), (१०) 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु', (११) 'श्रीउज्ज्वल-नीलमणि', (१२) 'प्रयुक्ताख्यात-चन्द्रिका', (१३) 'श्रीमथुरा-माहात्म्य', (१४) 'श्रीपद्मावली', (१५) 'श्रीनाटक-चन्द्रिका', (१६) 'श्रीसंक्षेप (लघु) भागवतामृत', (१७) 'सामान्य-विरुदावली लक्षण', (१८) 'श्रीउपदेशामृत' ।

## श्रीरघुनाथ दासगोस्वामिपाद

हुगली जिलेके 'सप्तग्राम'के अन्तर्गत 'कृष्णपुर' ग्राममे कायस्थ कुलोत्पन्न सम्भ्रान्त और धनाढ्य जमींदार 'मजुमदार' उपाधिधारी हिरण्य और गोवर्द्धन दास नामक दो भाई रहते थे। श्रीगोवर्द्धन दासके ही पुत्र थे—श्रीरघुनाथ दास। हिरण्य-गोवर्द्धनके पुरोहित श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुरके कृपापात्र थे। श्रीहरिदास ठाकुर जिस समय श्रीबलराम आचार्यके घर रहते थे, उन्ही दिनो बालक श्रीरघुनाथ श्रीबलरामके घर अध्ययनार्थ आते थे और प्रतिदिन उनको श्रीहरिदास ठाकुरके सग और कृपाको प्राप्त करनेका सुयोग मिला था। हिरण्य-गोवर्द्धन के गुरु-पुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभुके अन्तरंग शिष्य और 'काञ्चनपल्ली'के निवासी श्रीवासुदेव दत्त-ठाकुरके प्रियपात्र थे। श्रीयदुनन्दन आचार्यके दीक्षित शिष्य ही श्रीरघुनाथ दास थे। श्रीरघुनाथने यौवनकालमे ही इन्द्रके समान ऐश्वर्य और अप्सराके समान रूपवती भायिके परित्यागकी लीला प्रकट करते हुए श्रीनित्यानन्दप्रभुकी कृपासे अभिषिक्त हो 'पुरी'मे जाकर श्रीमन्महाप्रभुके द्वितीयस्वरूप श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपा प्राप्तकर 'स्वरूपके रघु' नामसे परिचित हुए तथा श्रीदामोदर स्वरूपकी कृपासे ही श्रीगौरसुन्दरकी अन्तरंग-सेवाका अधिकार प्राप्त किया। श्रीगौरसुन्दरने रघुनाथको श्रीगोवर्द्धनशिलारूपी श्रीगिरिधारी और गुजामाला-रूपिणी श्रीवार्षभानवी (श्रीराधाजी) की सेवाका अधिकार प्रदान किया। वे श्रीगौर-विरहमे व्याकुल होकर श्रीगोवर्द्धन पर्वतके शिखरसे गिरकर देह त्याग करनेका सकल्प करके वृन्दावन गये, तथा वहाँ उन्होंने श्रीश्रीरूप-सनातनके कृपामृतसे अभिषिक्त होकर उनके तृतीय आताके समान अतिमर्त्य सुतीव्र, विप्रलम्भ-वैराग्यके साथ 'श्रीराधाकुंड'पर श्रीश्रीराधा-गोविन्दके भजनमें दत्तचित्त हो गए। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपादने श्रीरघुनाथके ब्रजवास-कालीन दैनिक कृत्यका इस प्रकार वर्णन किया है,—

अन्न-जल त्याग कैल, अन्य कथन ।  
 पल दुइ तिन माठा करेन भक्षण ॥  
 सहस्र दण्डवत् करे', लय लक्षनाम ।  
 दुइ सहस्र वैष्णवेर नित्य परणाम ॥  
 रात्रि-दिने राधाकृष्णेर मानस-सेवन ।  
 प्रहरेक महाप्रभुर चरित्र-कथन ॥  
 तिन-सन्ध्या राधाकुण्डे अपतित स्नान ।  
 ब्रजवासी वैष्णवेरे आलिंगन दान ॥  
 सार्द्धसप्त-प्रहर करे' भक्तिय साधने ।  
 चारिदड निद्रा, सेह नहे कोन दिने ॥

—चै० च० आ० १०।१८-१०२

[श्रीरघुनाथदासने अन्न-जलका त्याग कर दिया और दूसरी बातें छोड़ दी, प्रतिदिन तीन-चार छटाक मट्ठा पीते थे। सहस्रवार भगवान्‌को दण्डवत् प्रणाम करते थे और एक लक्ष नाम लेते थे। दो सहस्र वैष्णवोंके उद्देश्य से नित्य प्रणाम करते थे। रात-दिन श्रीराधाकृष्णकी मानसिक-सेवा करते और एक प्रहर महाप्रभुका चरित्र-कथन करते थे। श्रीराधाकुण्ड में नित्य प्रतिदिन त्रिकाल स्नान करते थे तथा ब्रजवासी वैष्णवोंको आलिंगन करते थे। साढ़े सात पहर भक्तिकी साधना करते थे और केवल चार दण्ड (आधा पहर) नींद लेते थे, वह भी किसी-किसी दिन नहीं।]

श्रीरघुनाथ-दासगोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) 'श्रीस्तवावली', (२) 'श्रीदानचरित' (दानकलि-चिन्तामणि), (३) 'श्रीमुक्ताचरित'। इनके सिवा श्रीदासगोस्वामी प्रभुके नामसे आरोपित कितने ही बगला पद श्रीवैष्णवदास-सकलित 'पदकल्प-तरु' नामक पदसंग्रह-ग्रन्थमें देखे जाते हैं।

## श्रीगोपालभट्टगोस्वामिपाद

श्रीमन्महाप्रभुने दाक्षिणात्य-भ्रमण करते समय 'श्रीरगक्षेत्र' में श्रीवेकट-भट्ट नामक एक श्रीवैष्णवके घर चातुर्मास-व्रतके चार महीने अवस्थान किया। श्रीनरहरि चक्रवर्ती-ठाकुर-कृत 'श्रीभक्तिरत्नाकर'के मतानुसार इन वेकट-भट्टके ही पुत्र श्रीगोपाल भट्ट थे। बालक श्रीगोपाल भट्ट उसी समय श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाका सौभाग्य प्राप्तकर कृतार्थ हुए थे। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीरगक्षेत्र त्याग करनेके पूर्व श्रीवेकट भट्टसे कहा था कि,—“तुम इसको सुपडित बनाना तथा विवाह-बन्धन में मत बाँधना।” श्रीगोपाल भट्ट कुछ काल-तक माता-पिताकी सेवा करके श्रीमहाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीवृन्दावन जाकर श्रीरूप-सनातनके साथ रहने लगे। श्रीगोपाल भट्टने 'गण्डकी' नदीसे द्वादश शालग्राम संग्रह करके अपने भजनकी कुटियामे स्थापित किया था। मथुराके कुछ धनी सेठोंने बिना माँगे ही बहुमूल्य वस्त्राभूषण अलंकार आदि श्रीगोपाल भट्टको प्रदान किया। श्रीकृष्णके श्रीअंगोके लिये उपयोगी उन सारे वस्त्राभूषणोंको किस प्रकार श्रीशालग्रामको पहनाया जाय, इसी चिन्तामें श्रीगोपाल भट्टकी सारी रात बीत गयी। ऊषाकालमें वे देखते क्या हैं कि, द्वादश शालग्राममें से एक शालग्राम त्रिभगी-द्विभुज, मुरलीधर मधुर व्रजकिशोर श्याम-रूपमें प्रकट होकर सुशोभित हो रहे हैं। श्रीगोपाल भट्टने श्रीरूप-सनातन आदिके साथ १५४२ ई० की वैशाखी पूर्णिमाको उस 'श्रीराधारमण' विग्रहका अभिषेक-महामहोत्सव सम्पन्न किया। श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिपादके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं,—(१) 'श्रीहरिभक्ति-विलास' (श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिद्वारा समाहृत तथा श्रीसनातन गोस्वामिपादके द्वारा गुम्फित और 'दिग्दर्शिनी' टीका सहित विरचित), (२) षट्-सन्दर्भकी कारिका (श्रीजीव गोस्वामिपादने अपने षट्सन्दर्भके प्रारम्भमें इसका उल्लेख किया है)। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रीकृष्णकर्णामृत'की 'श्रीकृष्णवल्लभा'टीका भी श्रीगोपाल-

भट्ट गोस्वामिपादकी रची हुई है। वस्तुतः श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामिपाद अपनी 'सारंग-रगदा' नामक 'श्रीकृष्णकणमृत' की टीकामें उपर्युक्त टीकाका कोई उल्लेख नहीं करते हैं तथा उस टीकामें श्रीकृष्ण-चैतन्यदेवका नमस्कार-सूचक कोई श्लोक न रहनेके कारण इस विषयमें सन्देहके लिये अवकाश रह जाता है। 'सत्क्रियासारदीपिका' तथा 'संस्कारदीपिका' ग्रन्थ भी षड्गोस्वामीमें अन्यतम श्रीगोपालभट्टगोस्वामि-पादके द्वारा रचे हुए नहीं हैं। ये किसी अन्य गोपाल भट्टके रचित हैं।\*

### श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामिपाद

काशीवासी श्रीतपन मिश्रके घर जब श्रीमन्महाप्रभुने कृपापूर्वक काशीमें दो महीनेके लिये भिक्षा लेना स्वीकार किया था, तब श्रीतपन मिश्रके पुत्र बालक श्रीरघुनाथको श्रीमन्महाप्रभुके उच्छिष्ट-मार्जन और उनकी पाद-सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बड़े होनेपर श्रीरघुनाथने नीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुके समीप जाकर आठ मास अवस्थान किया था। वहाँ अपने हाथसे भोजन बनाकर श्रीमन्महा-प्रभुको बीच-बीचमें वे भिक्षा कराते थे। श्रीरघुनाथ भट्ट भोजन बनानेकी सेवामें विशेष निपुण थे। श्रीमन्महाप्रभुने रघुनाथको जब तक बृद्ध माता-पिता जीवित रहे तब तक उनकी सेवा करने और विवाह-बन्धनमें न पड़नेका उपदेश देकर काशी भेज दिया। माता-पिताकी काशी-प्राप्तिके बाद श्रीरघुनाथ पुनः श्रीनीलाचलमें श्रीमन्महाप्रभुके श्रीपादपद्मोंमें उपस्थित हुए और इस बार भी आठ महीने पुरीमें रहनेके बाद प्रभुकी आज्ञासे श्रीरघुनाथ श्रीवृन्दावनमें श्रीरूप-सनातनके पास जाकर रहे और श्रीमद्भागवत पाठ तथा श्रीकृष्णनामका भजन करने लगे। श्रीमन्महाप्रभुने कृपा करके श्रीरघुनाथको श्रीजगन्नाथ की 'चौदह हाथ तुलसीकी माला' और 'छुट्टा पान-बीड़ा' प्रदान किया था।

\* विस्तृत आलोचना ग्रन्थकारके 'षड्गोस्वामी' नामक बृहद् बगला ग्रन्थमें देखें।

श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीवृन्दावनमे श्रीरूप-सनातनके आश्रयमे रहकर अपने स्वभावसिद्ध सुकठसे विभिन्न राग-रागिनियोमे श्रीमद्भागवतके श्लोकोको श्रीरूपगोस्वामिपादकी सभामे कीर्तन करते थे। श्रीरघुनाथने अपने किसी धनाढ्य शिष्यके द्वारा श्रीगोविन्दके श्रीमन्दिर और श्रीविग्रह के भूषणादिका निर्माण कराया था। श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामीके रचित किसी ग्रन्थका नाम नहीं मिलता।

### श्रीश्रीजीवगोस्वामिपाद

श्रीसनातन और श्रीरूपके कनिष्ठ भ्राता श्रीअनुपम (नामान्तर श्रीवल्लभ) के एकलौते पुत्र श्रीजीवगोस्वामिपाद 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'मे आविर्भूत हुए। बाल्यकासे ही श्रीजीवका श्रीमद्भागवतमे विशेष अनुराग था। बहुत थोड़े े समयमे उन्होने सारे शास्त्रोमे सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया। श्रीश्रीरूप सनातनकी ब्रज-वासलीला और श्रीगौरहरिकी अन्तर्धा। लीलाके बाद श्रीजीवका हृदय श्रीगौरसुन्दरके दर्शनके लिए अत्यन्त आर्त हो उठा। स्वप्नमे श्रीमहाप्रभुके दर्शन पाकर श्रीजीव 'वाक्ला चन्द्रद्वीप'से 'फतेहाबाद' होते हुए 'श्रीनवद्वीप'मे पहुँचे और श्रीनित्यानन्दका अनुगमन करते हुए उन्होने श्रीनवद्वीप-धामकी परिक्रमा की। इसके बाद श्रीजीवने काशीमे श्रीसार्वभौम-भट्टाचार्यके शिष्य श्रीमधुसूदन वाचस्पतिके पास अनेको शास्त्रोका अध्ययन किया। श्रीजीव श्रीकाशीधामसे श्रीवृन्दावन गये और वहाँ श्रीश्रीरूप-सनातनके पास श्रीमद्भागवत और भक्तिशास्त्रका अध्ययन किया। तथा श्रीब्रजमण्डलमे ही भजन करते रहे। श्रीश्रीसनातनने भक्तिसिद्धान्तमे श्रीजीवकी विशेष पारदर्शिता देखकर स्वरचित 'श्रीवृहत् वैष्णवतोषणी'के सशोधनका भार उनको दिया। श्रीश्रीरूपगोस्वामि-पादने श्रीश्रीराधादामोदर श्रीविग्रहको प्रकटकर उनकी सेवा श्रीजीवको प्रदान की। श्रीश्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामिपादगणकी अन्तर्धान-लीलाके बाद श्रीजीवपाद गौड़, ब्रज और क्षेत्रमण्डलके गौडीय-वैष्णव-

सम्प्रदायके सार्वभौम आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित हुए । श्रीश्रीजीवगोस्वामि-पादके द्वारा रचित निम्नलिखित ग्रन्थ-माला वैष्णव-समाजमे सुप्रसिद्ध है — (१) 'श्रीहरिनामामृत-व्याकरण', (२) 'श्रीगोपाल-विरुदावली', (३) 'श्रीभक्तिरसामृतशेष', (४) 'श्रीमाधव-महोत्सव', (५) 'श्रीब्रह्म-सहिता-पञ्चमाध्याय-टीका', (६) 'श्रीदुर्गमसगमनी', (७) 'श्रीलोचन रोचनी' (श्रीउज्ज्वलनीलमणि-टीका) (८) 'श्रीगोपालचम्पू' (पूर्व चम्पू और उत्तर चम्पू) (९) 'श्रीसकल्पकल्पद्रुम', भावार्थसूचक चम्पू (?), (१०-१५) 'श्रीभागवत-सन्दर्भ' नामान्तर 'षट्सन्दर्भ',—'श्रीतत्त्व-सन्दर्भ', 'श्रीभगवत्सन्दर्भ', 'श्रीपरमात्म-सन्दर्भ', 'श्रीकृष्ण-सन्दर्भ', 'श्रीभक्ति-सन्दर्भ', और 'श्रीप्रीति-सन्दर्भ', (१६) 'श्रीक्रम-सन्दर्भ' (समस्त श्रीभागवतकी टीका), (१७) 'सर्वसवादिनी' (षट्सन्दर्भकी अनुव्याख्या), (१८) 'श्रीसुबोधिनी' (श्रीगोपालतापनी-टीका), (१९) पद्मपुराणस्थ 'श्रीयोग-सारस्त्रोत्र-टीका', (२०) 'अग्निपुराणस्थ-गायत्री-व्याख्याविवृति', (२१) 'श्रीराधाकृष्णार्चन-दीपिका', (२२) 'घातुसग्रह' (२३) 'सूत्र-मालिका' इत्यादि ।



## परिशिष्ट

### श्रीशिक्षाष्टकम्

[श्रीकृष्णचैतन्यदेवका स्व-रचित और श्रीमुखारविन्दसे निकला  
हुआ श्रीशिक्षाष्टक]

१ । चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापण  
श्रेय कैरव-चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।  
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णमितास्वादनम्  
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम् ।।

—श्रीपद्यावली, २२

चेतोदर्पणमार्जनं (चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला), भव-  
महादावाग्निनिर्वापण (ससाररूपी महादावानलको बुझा देनेवाला),  
श्रेय कैरवचन्द्रिकावितरण (परम-मंगलरूप कुमुदको विकसित करनेवाली  
ज्योत्स्नाको फैलानेवाला), विद्यावधूजीवन (पराविद्यारूप बधूका प्राण-  
स्वरूप), आनन्दाम्बुधिवर्द्धन (आनन्दसमुद्रको बढ़ानेवाला), प्रतिपद  
(पद-पदपर), पूर्णमृतास्वादन (पूर्णमृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला)  
सर्वात्मस्नपन (निखिल जीवात्माकी निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन  
करनेवाला), पर (अद्वितीय), श्रीकृष्णसकीर्तन (श्रीकृष्ण-सकीर्तन),  
विजयते (विशेषरूपसे विजयी हो) ।

चित्तरूपी दर्पणको परिमार्जन करनेवाला, संसाररूपी महादावानल  
को बुझा देनेवाला, परम मंगलरूप कुमुद-विकाशक ज्योत्स्नाको फैलाने-  
वाला, पराविद्यारूपी बधूके प्राणस्वरूप, आनन्द-समुद्रको बढ़ानेवाला  
पद-पदपर पूर्ण अमृतका आस्वादन प्रदान करनेवाला, निखिल जीवात्मा  
की निर्मलता और स्निग्धताका सम्पादन करनेवाला अद्वितीय श्रीकृष्ण-  
सकीर्तन विशेष रूपसे विजयको प्राप्त हो ।



२ । नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-  
स्तत्रार्पिता नियमित स्मरणे न काल ।  
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि  
दुर्देवमीदृशमिहाजनि नानुराग ॥

—श्रीपद्यावली, ३१

भगवन् (हे भगवन्!), [भवता—आपके द्वारा] नाम्ना (नामसमूह के), बहुधा (अनेक प्रकार), अकारि (प्रकट हुए हैं), तत्र (उस श्रीहरि-नाममें), निजसर्वशक्ति (आपकी समस्त शक्तियाँ), अर्पिता (अर्पित हुई हैं), स्मरणे (श्रीनामस्मरणमें), काल (कोई कालविशेष), न नियमित (निरूपित नहीं किया गया है)। तब (आपकी), एतादृशी (इस प्रकारकी), कृपा (दया है), मम अपि (मेरा भी) ईदृश (ऐसा), दुर्देवम् (अपराध है कि), इह (इस प्रकारके हरिनाममें), अनुराग (प्रीति), न अजनि (नहीं उत्पन्न हुई)।

हे भगवान्! आपके नाम-समूह (गोविन्द, गोपाल, वनमाली इत्यादि) अनेक रूपमें प्रकट हुए हैं। उस हरिनाममें आपकी समस्त शक्ति अर्पित हुई है, श्रीनामस्मरणमें कोई कालाकाल विचार नहीं है। आपकी तो इस प्रकारकी कृपा है, तथापि मेरा भी इस प्रकारका अपराध है कि ऐसे श्रीहरि नाममें अनुराग नहीं हुआ।

३ । तृणादर्पि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।  
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ॥

—श्रीपद्यावली, ३२

तृणात् अपि (तृणकी अपेक्षा भी), सुनीचेन (अतिशय नीच होकर), तरो अपि (वृक्षकी अपेक्षा भी), सहिष्णुना (सहनशील होकर), अमानिना (स्वयं सम्मानकी आकांक्षा न करके), मानदेन (दूसरोको मान देते हुए), सदा (निरन्तर), हरि (श्रीहरि), कीर्तनीय (हरि-नामका कीर्तन करना कर्तव्य है)।

तृणकी अपेक्षा भी अतिशय नीच होकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु होकर, स्वयं अमानी होकर और दूसरेको मान प्रदान करके निरन्तर श्रीहरिनाम या श्रीहरि-कीर्तन करना ही एकमात्र कर्तव्य है ।

४ । न धन न जन न सुन्दरी  
कविता वा जगदीश कामये ।  
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे  
भवताद्भक्तिरहेतुकी त्वयि ॥

—श्रीपद्मावली, ६४

जगदीश ! (हे जगन्नाथ ! ) [अह—मैं] धन (धन) न कामये (नही चाहता), जन न [कामये], (जन नहीं चाहता), सुन्दरी (कामिनी) वा कविता (अथवा काव्य और पाण्डित्य) न [कामये] (नही चाहता), ईश्वरे त्वयि (तुम परमेश्वरमे), जन्मनि-जन्मनि (जन्म-जन्ममे), मम (मेरी), अहेतुकी (अकिञ्चना), भक्ति (भक्ति) भवतात् (होवे) ।

हे जगन्नाथ ! मैं धन, जन, कामिनी अथवा काव्य और पाण्डित्य की कामना नहीं करता । परमेश्वर-स्वरूप तुममें जन्म-जन्मान्तरमें मेरी अकिञ्चना भक्ति हो ।

५ । अयि नन्दतनुज ! किङ्कर  
पतित मा विषमे भवाम्बुधौ ।  
कृपया तव पादपकज-  
स्थितधूलीसदृश विचिन्तय ॥

—श्रीपद्मावली, ७१

अयि नन्दतनुज ! (हे नन्दनन्दन ! ), विषमे (भयकर, दुष्पार), भवाम्बुधौ (ससार-समुद्रमे), पतित (पड़े हुए), किङ्कर मा (मुझ किकरको), कृपया (कृपापूर्वक), तव (अपने), पादपकजस्थित-धूलीसदृश (चरण-कमलमे स्थित धूलीके समान), विचिन्तय (समझे) ।

हे नन्दनन्दन ! मैं इस घोर दुष्पार संसार-सागरमें पड़ा हुआ  
किकर हूँ। मुझको कृपा पूर्वक अपने पाद-पद्मोंकी धूलके समान  
समझिये।

६। नयन गलदश्रुधारया

वदन गद्गदरुद्धया गिरा।

पुलकैर्निचित वपु कदा

तव नामग्रहणे भविष्यति ॥

—श्रीपद्यावली, ६३

[हे गोपीजनवल्लभ !] कदा (कब), तव (आपके), नामग्रहणे (नाम-  
ग्रहण करते समय), नयन (मेरे दोनों नेत्र), गलदश्रुधारया [युक्त] (दर-  
दर बहनेवाली आसुओंकी धारासे युक्त), वदन (वदन), गद्गदरुद्धया  
(गद्गदभावसे रुकी हुई), गिरा [युक्त] (वाणीसे युक्त), [एव] वपु  
(शरीर), पुलकै (पुलकोसे), निचित (व्याप्त), भविष्यति (होगा) ?

हे गोपीजनवल्लभ ! कब आपके श्रीनामग्रहणके समय मेरे दोनों  
नेत्र अश्रुधारासे प्रवाहित, मेरा वदन गद्गद रुद्धवाणीसे युक्त तथा  
मेरा शरीर पुलकायमान हो जायगा ?

७। युगायित निमिषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।

शून्यायित जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे।

—श्रीपद्यावली, ३२४

गोविन्दविरहेण (गोविन्दके विरहमें), मे(मेरा), निमिषेण युगायित  
(निमिषकाल भी युगके समान हो रहा है), चक्षुषा प्रावृषायित (आखे  
वर्षाधाराके समान आसू बहा रही है), सर्वं जगत् (समस्त विश्व),  
शून्यायितम् (सूना लग रहा है।)

हे गोविन्द ! आपके विरहमें मेरा एक निमेष युगके समान बीत  
रहा है, नेत्रोंसे वर्षाकी धाराके समान अश्रुवर्षा हो रही है और सारा  
जगत् शून्य जान पड़ता है।

८ । आश्लिष्य वा पादरता पिनष्टु मा-  
मदर्शनान्मर्महता करोतु वा ।  
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो ,  
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥

—श्रीपद्मावली, ३३७

पादरता (चरणसेवामें लगे हुए), मा (मुझको), आश्लिष्य (आलिंगन करे), वा पिनष्टु (अथवा पेषण ही करे), अदर्शनात् (दर्शन न देकर), मर्महता वा (मर्माहत ही), करोतु (करे), लम्पट (सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कृष्ण), यथा तथा वा विदधातु (जैसी इच्छा, वैसे ही करे), तु (तथापि), स एव (वे ही), मत्प्राणनाथ (मेरे प्राणनाथ हैं), अपर न (दूसरा कोई नहीं) ।

चरणसेवामें रत मुझको आलिंगन करे या पीस ही डालें, दर्शन न देकर मर्माहत ही करे, सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीकृष्णकी जो इच्छा हो, वही करे, तथापि वही मेरे प्राणनाथ हैं, दूसरा कोई नहीं ।

### श्रीपद्मावली

[श्रीचैतन्यदेवके द्वारा रचे और गाए हुए श्लोक]

श्रुतमप्यौपनिषद दूरे हरिकथामृतात् ।

यन्न सन्ति द्रवन्चित्तकम्पाश्रुपुलकादय ॥

—श्रीपद्मावली ३६, श्रीभक्तिसदर्भ—६६ अनुच्छेद

उपनिषद्-प्रतिपाद्य ब्रह्म श्रुतिसम्मत होनेपर भी, हरिकथामृतसे बहुत दूर स्थित हैं, इसीसे ब्रह्मस्वरूपकी बात लगातार सुनते रहनेपर भी चित्त द्रवित नहीं होता ।

नाह विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो

नाह वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।

किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णमृताब्धे-  
गोपीभर्तु पदकमलयोर्दासदासानुदास ॥

—श्रीपद्यावली, ७४

मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय राजा भी नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं। परन्तु मैं नित्य स्वतःप्रकाशमान निखिलपरमानन्दपूर्ण अमृत-समुद्र-स्वरूप श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णके पदकमलोका दास-दासानुदास हूँ।

दधिमथननिनादैस्त्यक्तनिद्र प्रभाते  
निभृतपदमगार वल्लवीना प्रविष्टः ।  
मुखकमलसमीरैराशु निर्वाप्य दीपान्  
कवलितनवनीत पातु मा बालकृष्ण ॥

—श्रीपद्यावली, १४२

प्रातःकालमें माता यशोदाके दधि-मन्थनका शब्द सुनकर, निद्रात्याग करके व्रज-गोपियोंके घरोंमें पैरोंका शब्द न करते हुए चुपचाप प्रवेशकर तथा श्रीमुखकमलकी वायुके द्वारा शीघ्र ही दीपकोको बुझाकर नवनीत भोजन करनेमें रत श्रीबालकृष्ण मेरी रक्षा करें।

सव्ये पाणौ नियमितरव किङ्किणीदाम धृत्वा  
कुब्जीभूय प्रपदगतिभिर्मन्दमन्द विहस्य ।  
अक्षणोर्भङ्ग्या विहसितमुखीर्वारयन् सम्मुखीना  
मातुः पश्चादहरत हरिर्जातु हैयङ्गवीनम् ॥

—श्रीपद्यावली, १४३

एक बार किंकिणीध्वनिको बन्द करनेके लिये बायें हाथसे किंकिणी की डोरीको पकड़े, शरीरको कुबड़ाकर, पैरकी अंगुलियोंके बलपर चलते हुए, मृदु-मन्दहास्य-वदन श्रीकृष्णको देखकर सम्मुख खड़ी हुई गोपियाँ जब हँसने लगीं, तब श्रीहरिने अपनी नेत्र-भंगिमाके द्वारा उनके

हास्यको निवारणकर माताके पश्चात् स्थित सद्योजात नवनीतको हरण किया था ।

प्रासादाग्रे निवसति पुर स्मेरवक्त्रारविन्दो  
मामालोवय स्मित सुवदनो बालगोपालमूर्ति ॥

—चै० भा० अ० २।४०६

जिनका वदनारविन्द विकसित है, वे बालगोपालमूर्ति श्रीकृष्ण मुझे देखकर मृदु मधुर हास्यसे श्रीमुखकी शोभाका समधिक विस्तार करते हुए प्रासादके ऊपरी भागमें मेरे सम्मुख आकर स्थित हो रहे हैं ।

न प्रेमगन्धोऽस्ति दरापि मे हरौ

क्रन्दामि सौभाग्यभर प्रकाशितुम् ।

वशीविलास्याननलोकन विना

विभर्मि यत् प्राणपतगकान् वृथा ।'

—चै० च० म० २।४५

श्रीकृष्णमें मेरी तनिक भी प्रेमगन्ध नहीं है, केवल अपने सौभाग्यातिशयको (मे स्वयं जो अत्यन्त सौभाग्यशाली हूँ, इसे) प्रकट करनेके लिए ही क्रन्दन करता हूँ, क्योंकि (मुझमें जो प्रेमका लेशमात्र भी नहीं है, इसका प्रमाण यही है कि,) वशीविलासी श्रीकृष्णके मुखदर्शनके बिना भी मैंने व्यर्थ ही प्राणपतंगको धारण कर रक्खा है ।



## परिभाषा-परिचय

[ वर्णानुक्रमसे कतिपय शब्दोंका अर्थ ]

**अद्वैतवादी**—परब्रह्म स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति तथा मायाशक्तिके आश्रय रूपमे एक अद्वितीय तत्त्व है। ये सारी शक्तियाँ परब्रह्मकी ही स्वाभाविकी अविच्छेद्य शक्तियाँ हैं। अतएव स्वाभाविकी शक्ति स्वीकारमे पृथक् तत्त्व स्वीकृत न होनेपर ब्रह्मके अद्वयत्वको क्षति नहीं पहुँचती। इस प्रकारके मतको माननेवाले 'अद्वैतवादी' हैं। वैष्णव आचार्योंने इस अद्वैतवादको स्वीकार किया है; परन्तु श्रीशंकराचार्यके केवलाद्वैतवाद या मायावादको अद्वैतवादके रूपमे नहीं माना।

इस पुस्तकके पृष्ठ २२ पर 'अद्वैतवादी' से तात्पर्य 'निर्विशेषवादी' से है। (देखिये—निर्विशेषवादी।)

**अनुमिति**—कार्य-दर्शनमे कारणकी तथा कारण-दर्शनमे कार्यकी अनुभूति।

**अर्थवाद**—प्रशसा-वाक्य मात्र।

**उपाधि**—न्यायकी परिभाषा विशेष।

**कर्म-जड़-स्मार्त**—जो लोग स्मृतिशास्त्रके कर्मकाण्डको सर्वप्रधान मानकर विष्णुको कर्मके अधीन मानते हैं, उन्हें कर्म-जड़-स्मार्त कहते हैं।

**केवलाद्वैतवाद**—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद)।

**कैतव**—पुण्य-कामना, अर्थ-कामना, काम-कामना और मुक्ति-कामना इन चारोको श्रीमद्भागवतमे 'कैतव' या कपट कहा गया है।

**चिद्विलास**—चित् शक्ति प्रकटित चेतन-राज्यकी विचित्रता। इसका विकृत असम्पूर्ण प्रतिबिम्ब जड-जगत्की विचित्रता अथवा कर्मफल भोग है।

**जाति**—न्यायकी परिभाषा विशेष ।

**डाक-पुरुष**—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक विशेष ।

**तत्त्ववादी**—श्रीमध्वाचार्यके अनुगत सम्प्रदाय ।

**द्वैतवाद**—ब्रह्म स्वतन्त्र तत्त्व एव जीव और जगत् अस्वतन्त्र अर्थात् अधीन तत्त्व है । इस प्रकार दोनो तत्वोको जिस मतमें स्वीकार किया गया है उसमें ब्रह्मके साथ जीव तथा जगत्का पचभेद स्वीकृत हुआ है । श्रीमध्वाचार्य इसके प्रचारक रहे ।

**नवधा-भक्ति**—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वदन, पाद-सेवन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन ये नौ प्रकारकी विष्णु-भक्ति ।

**नामाभास**—सम्बन्धज्ञान-रहित परन्तु अपराध-शून्य भावसे नामाक्षर उच्चारण ।

**निर्विशेष-मुक्ति**—श्रीशकराचार्यकी मतोक्त मुक्ति । इसमें सेवक-सेव्य-भाव नहीं रहता ।

**निर्विशेषवादी**—मायावादी या केवलाद्वैतवादी (देखिए—मायावाद) ।

**पंचमुक्ति**—(१) सालोक्य—वैकुण्ठादि लोकवास, (२) सारूप्य—श्रीविष्णुके चतुर्भुज आदि रूप-लाभ, (३) सार्ष्णिक—श्रीविष्णुके न्याय कथंचित् ऐश्वर्यलाभ, (४) सामीप्य—श्रीविष्णुके निकट वास करके भगवान्की सेवा, (५) सायुज्य—श्रीविष्णुके साथ एकीभूत अवस्था । (सायुज्य-मुक्ति शुद्ध भक्तगण नहीं चाहते, क्योंकि इसमें सेवक-सेव्य भाव नहीं रहता ।)

**पंचोपासक**—जो लोग विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश इन पाँच देवताओंके स्वरूपको औपाधिक अर्थात् अपने-अपने कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे सामयिक रूपसे कल्पना करके अपनी



अपनी कामनाके अनुकूल उपासना करते हैं वे लोग 'पचो-पासक' कहलाते हैं। ये लोग शुद्ध-भक्त नहीं हैं।

**प्रच्छन्नावतारी**—स्वयं भगवान्‌के अपना रूप गोपन करके भक्तका रूप धारणकर आनेके कारण श्रीगौरहरि अर्थात् श्रीचैतन्य-महाप्रभुको प्रच्छन्नावतारी कहा गया है।

**फल्युवैराग्य**—हरि-सम्बन्धी वस्तु (महाप्रसाद आदि) को जड़-वस्तु-ज्ञानसे मुक्ति कामियोंके द्वारा परित्यागको 'फल्यु-वैराग्य' कहा जाता है।

**बद्ध-मुमुक्षु**—त्रितापकी ज्वालासे जर्जरित होकर जो लोग मुक्तिकी कामना करते हैं।

**भोगोपाल**—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक भोगी-सम्प्रदाय-विशेष।

**मधुमती सिद्धि-विद्या**—योग शास्त्रोक्त मधुमती नामकी सिद्धि-लाभ करनेकी विद्या। [इसकी अधिष्ठात्री देवी 'मधुमती' योगिनी है। साधक तन्त्रानुयायी उनकी साधना करनेपर देवी साधकको दानव, गन्धर्व, विद्याधर यक्ष और राक्षसोंकी कन्या (पचकन्या) तथा विविध उपभोग्य वस्तु दान करती है ऐसी धारणा है।]

**मर्कट-वैराग्य**—ऊपरसे सन्यासी और अतरसे भोग-कामी।

**महीपाल**—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व बगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक राजन्य-सम्प्रदाय-विशेष।

**मायावाद**—ब्रह्म ही एकमात्र सत्य एव अद्वितीय तत्व है। वे निर्विशेष निर्गुण तथा निष्क्रिय हैं। जीव और जगत् ब्रह्मका विवर्तमात्र (कारणमे मिथ्या कार्य प्रतीति) है। इस प्रकारके मतको 'मायावाद' कहा जाता है। इसके प्रचारक श्रीशकराचार्य हुए।

**युक्त-वैराग्य**—विषयसमूहमे अनासक्त होकर हरिसेवाके अनुकूल यथायोग्य स्वीकार ।

**योगीपाल**—श्रीचैतन्यके आविर्भावके पूर्व वगदेशके बौद्ध-तान्त्रिक योगी-सम्प्रदाय-विशेष ।

**लिङ्गायत-सम्प्रदाय**—जो शैवलोग अपने शरीरपर शिवलिङ्ग धारण करते हैं ।

**विद्धाद्वैतवाद**—मायावादका नामान्तर (देखिये—मायावाद) ।

**विद्धा-भक्ति**—जो शुद्ध-भक्त नहीं । ('शुद्ध-भक्ति' देखिये) ।

**विशिष्टाद्वैतवाद**—चित् और अचित् शक्ति-विशिष्ट स्वरूप ही ईश्वर है । ब्रह्म—अशी, जीव और जगत्—अश, ब्रह्म—आत्मा, जीव और जगत्—देह, ब्रह्म—आधार या आश्रय, जीव और जगत्—आधेय या आश्रित । जीव और जगत् ब्रह्मसे विशिष्ट अर्थात् धर्मतः भिन्न होते हुए भी ब्रह्माश्रयी हैं और इस अर्थमे वह पृथक् सत्ताहीन होनेके कारण अभिन्न हैं । इस प्रकारके मतको 'विशिष्टाद्वैतवाद' कहा जाता है । इसके प्रधान प्रचारक श्री रामानुजाचार्य हुए ।

**व्याप्ति**—अनुमितिका कारण । (देखिये—अनुमिति) ।

**शीतला-मंगल**—माता (चेचक) की अधिष्ठात्री देवीको शीतला (देवी) कहा जाता है । मंगल अर्थ है—उनका गान ।

**शुद्ध-भक्ति**—ज्ञान, कर्म, योगादि चेष्टा रहित अनुकूल कृष्ण-सुखानु-सन्धानमयी अहैतुकी भक्ति ।

**शुद्धाद्वैतवाद**—इस मतमे ईश्वर एव उनके अग शुद्ध और नित्य हैं तथा उनके उपासकगण भी शुद्ध एव नित्य हैं । जीव, जगत् और माया ईश्वरको आश्रय करते हैं । ईश्वरको

हटाकर उनका कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार शुद्ध रूपमे ईश्वरका अद्वयत्व स्वीकार करना शुद्धाद्वैतवाद है। श्रीविष्णुस्वामी इस मतके प्रवर्तक हुए।

**संधिनी**—भगवान् अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपनी सत्ताको धारण करते हैं और दूसरोको भी धारण कराते हैं, उसी सर्वदेशकाल द्रव्यादिको व्याप्त करनेवाली शक्तिका नाम संधिनी है।

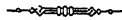
**संवित्**—भगवान् स्वयं सवित् अर्थात् पूर्णज्ञान स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूपशक्तिके द्वारा अपने आपको जान सकते हैं और दूसरोको भी जता सकते हैं, उसी शक्तिका नाम सवित् है।

**सर्वज्ञ-सूक्त**—सर्वज्ञ या ज्ञानी-पुरुषकी श्रेष्ठ-उक्तियाँ। विशेष अर्थमे आचार्य श्रीविष्णुस्वामीकी सिद्धान्तवाणी।

**स्मार्त-आचार**—स्मृति-शास्त्र-कथित कर्मकाण्डको ही जो लोग श्रेष्ठ मानते हैं, उन लोगोका क्रिया-कलाप।

**स्वराट्**—सर्वतन्त्र स्वतन्त्र भगवान्।

**ह्लादिनी**—भगवान् स्वयं आनन्द स्वरूप होते हुए भी अपनी जिस स्वरूप शक्तिके द्वारा वे स्वयं आनन्दित होते हैं तथा दूसरोको आनन्दित करते हैं, उसी शक्तिका नाम ही ह्लादिनी है।



## ग्रन्थ-तालिका

[इस पुस्तकके लिखते समय अन्वयभावसे ग्रन्थोपकरणके रूपमें गृहीत एव व्यतिरेकभावसे आलोचित ग्रन्थ और पुस्तकोकी एक अपूर्ण तालिका नीचे दी जाती है।]

१ अणुभाष्यम्—(श्रीमन्मध्वाचार्य-विरचित, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पादित), २ अणुभाष्यम्—(श्रीवल्लभाचार्य-विरचित, काशी विद्या-विलास प्रेस, १९०७), ३ अद्वैतसिद्धि—(राजेन्द्रनाथ घोष सस्करण), ४ अष्टोत्तरशतोपनिषत्—(निर्णयसागर प्रेस), ५ आम्नायसूत्रम्—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद-कृत), ६ ईष्ट इडिया—(बेलेटिन-कृत, १७२६ ई०, Valenty's "East India," 1726), ७ उपदेशामृतम्—(श्रीरूप-गोस्वामिपादकृत, श्रीगौडीयसम्प्रदायकर्तृक प्रकाशित), ८ एतलस् अर्बु भाडरकर, ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट ("Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute", 1933), ९ ए हिस्ट्री आफ इंडियन फिलासफी, तृतीय और चतुर्थ खंड, ("A History of Indian Philosophy," Vol III and IV) —डा० सुरेन्द्रनाथ दाशगुप्त-कृत, १०. कल्याण-कल्पतरु—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ११ कायस्थ-कौस्तुभ—(राजा राजेन्द्रनाथ मित्र, १२५२ बगाब्द), १२ श्रीकृष्ण-कर्णामृतम्—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), १३ श्रीकृष्णभजना-मृतम्—(श्रीनरहरि-सरकार-ठाकुर-कृत, श्रीमत्पुरीदास गोस्वामि-सम्पा-दित), १४ श्रीश्रीकृष्णसन्दर्भ—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी-सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी-सस्करण), १५ कलकत्ता रिव्यू, १८४६ ई० ("Calcutta Review", 1846), १६ श्रीगोविन्दभाष्यम्—(श्री-बलदेव विद्याभूषणकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), १७ गौडीय—(साप्ताहिक पत्र, प्रथम—२४ वर्ष, ग्रन्थकार-सम्पादित), १८ श्रीश्री-गौडीयवैष्णव-साहित्य—(श्रीमद्हरिदासदासकृत), १९ श्रीगौरकृष्णो-

दय — (श्रीमद्गोविन्ददेवकृत, श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीठाकुर-सम्पादित), २० श्रीश्रीगौरगणोद्देशदीपिका—(बहरमपुर-संस्करण), २१ श्रीचैतन्यदेव एड दि मध्वाचार्य सेक्ट, (“Sri Chaitanyadeva and the Madhvacharya Sect”) प्रबन्ध—रायबहादुर अमरनाथ राय-लिखित, २२ चैतन्य एड श्रीमध्व (“Chaitanya and Sri Madhva”) प्रबन्ध—by Rai Bahadur Amarnath Roy, B A in the ‘Journal of the Assam Research Society,’ April, 1935, २३ श्रीचैतन्यचन्द्रामृतम्—(श्रीगौडीयमठ संस्करण), २४ श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटकम्—(निर्णयसागर प्रेस संस्करण), २५. श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतम्—(श्रीमत् ठाकुर भक्तिविनोद, श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिपाद, श्रीमाखनलाल दास भागवत-भूषण, सन् १३१५ और श्रीराधागोविन्द नाथ, तृतीय संस्करण, २६ श्रीश्रीचैतन्यचरितामृतम्—श्रीमुरारिगुप्तका कडचा (टिप्पणी) अमृतबाजार संस्करण, २७. श्रीचैतन्यचरिते उपादान—(कलकत्ता-विश्वविद्यालय), २८ श्रीचैतन्यचरित-महाकाव्यम्—(बहरमपुर संस्करण), २९ श्रीश्रीचैतन्यभागवत—(श्रीगौडीयमठ संस्करण और अतुलकृष्ण गोस्वामी संस्करण), ३० श्रीचैतन्यमगल—(श्रीलोचनदास ठाकुर-कृत, बगवासी संस्करण और श्रीगौडीयमठ संस्करण), ३१ चैतन्य-मुवमेन्ट— (“Chaitanya Movement”—Kennedy, 1925), ३२ श्रीचैतन्यशिक्षामृतम्—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३३ श्रीश्रीजगन्नाथवल्लभ-नाटकम्—( श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित ), ३४ जैवधर्म—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३५ श्रीश्रीतत्त्वसन्दर्भ —(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ३६ तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध —(श्रीपुरुषोत्तमजीकी टीकाके साथ, श्रीवल्लभाचार्य-कृत, चौखम्भा, काशी), ३७. दशमूलशिक्षा—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ३८. दि पोष्ट मध्व पिरियड, (“The Post Madhva Period”) प्रबन्ध—Prof B N Krishnamurti Sharma in ‘Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute’, Vol XIX, Part

IV, 1939, ३६ नदिया गेजेटियर ("Nadia Gazetteer"), ४०. श्रीश्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्य—(श्रीठाकुर भक्तिविनोद), ४१ निम्बार्क-दर्शन—(डा० रमा चौधरी, कलकत्ता), ४२ श्रीनृसिंहपूर्वतापनी—(Asiatic Society of Bengal), ४३ न्याय-परिचय—(म० म० फणिभूषण तर्कवागीश), ४४ श्रीश्रीपद्मावली—(श्रीरूपगोस्वामिपाद-कृत, श्रीमत्पुरीदास-महाशय सस्करण), ४५ श्रीश्रीपरमात्म-सदर्म—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ४६ पूर्णप्रज्ञदर्शनम्—(कुम्भघोणम् सस्करण), ४७ प्रमेयरत्नावली—(श्रीबलदेवकृत, श्रीगौडीयमठ सस्करण), ४८ प्रमेयरत्नार्णव—(श्रीबालकृष्ण-भट्ट-विरचित, चौखम्भा, काशी, जनवरी, १९०६), ४९ प्रार्थना और प्रेमभक्तिचन्द्रिका—(पोथी, राजसाही वरेन्द्र-अनुसन्धान-समिति), ५० श्रीश्रीप्रीति-सन्दर्भ—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण और प्राणगोपाल गोस्वामी सस्करण), ५१ ब्रह्मसहिता—(श्रीमद्भक्तिविनोद-ठाकुर-सम्पादित), ५२. श्रीभक्ति-रत्नाकर—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५३. श्रीभक्तिरत्नावली—(श्री-विष्णुपुरीकृत, बगवासी सस्करण), ५४ श्रीश्रीभक्तिरसामृत-सिन्धु—(श्रीश्रीजीवपाद, श्रीमुकुन्ददास और श्रीचक्रवर्ती टीकाके साथ श्रीहरिदास दासकृत सस्करण), ५५ श्रीश्रीभक्ति-सदर्म—(श्रीगौडीयमठ सस्करण), ५६ श्रीश्रीभगवत्सन्दर्भ—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय-सम्पादित), ५७. श्रीमद्भगवद्गीता—(श्रीश्रीधर, श्रीचक्रवर्ती, श्रीबलदेवकी टीकाके साथ, श्रीगौडीयमठ स०), ५८ श्रीमद्भगवत्—(बगवासी सस्करण, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय-सम्पादित लघु सस्करण सूचीके साथ और बहरमपुर सस्करण), ५९. श्रीभागवत-तात्पर्य-निर्णय—(श्रीमध्वाचार्यकृत कुम्भ-घोणम् सस्करण), ६० भावार्थ-दीपिका—(श्रीश्रीधरस्वामिकृत, श्रीमत्-पुरीदास-महाशय सस्करण), ६१ भारतवर्ष—(मासिक पत्र, १३३२ बगान्द, भाद्र और १३४७ बगान्द, वैशाख), ६२ भाष्यप्रकाश—(श्री-पुरुषोत्तमजी विरचित, सटीक, चौखम्भा, काशी), ६३ भास्कर-भाष्यम्—(विद्या-विलास प्रेस, काशी), ६४ मध्व इन्फ्लुएंस ऑन बेगाल वैष्णविज्म,

(“Madhva Influence on Bengal Vaishnavism” प्रबन्ध —by Prof B N Krishnamurti Sharma in ‘Indian Culture’ Vol IV No I), ६५ मध्वाचार्य एड हिज् मेसेज् टू दि वर्ल्ड —(“Madhvacharya and His Message to the world” by M R Gopalachary), ६६ श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा—(ठाकुर श्री-भक्तिविनोद-विरचित), ६७ माधुर्य-कादम्बिनी—(श्रीविश्वनाथ-कृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी सस्करण), ६८ मायावाद—(म० म० प्रमथ-नाथ तर्कभूषण-लिखित, विश्वभारती स०), ६९ यतीन्द्र-मत-दीपिका—(श्रीरामानुजीय श्रीनिवासाचार्यकृत, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई), ७० लाइफ एड टिचिंग्स् ऑफ श्रीमध्वाचार्य—(“Life and Teachings of Sri Madhvacharya” by C M Padmanavachari), ७१ बगभाषा और साहित्य, षष्ठ सस्करण,—(दीनेशचन्द्र सेन), ७२ बगीय महाकोष—(अमृत्यचरण विद्याभूषण), ७३. बगीय शब्दकोष—(हरिचरण वन्द्योपाध्याय), ७४ श्रीवल्लभदिग्विजय —(श्रीयदुनाथजी कृत, निर्णयसागर प्रेस), ७५. बागलार इतिहास, द्वितीय भाग—(राखालदास वन्द्योपाध्याय), ७६ बागलार वैष्णवधर्म (कलकत्ता विश्वविद्यालय, अधर मुखर्जी वक्तृता, म० म० प्रमथनाथ तर्कभूषण), ७७ बागला साहित्येर इतिहास, द्वितीय स०—(डा० सुकुमार सेन), ७८. विशोत्तर-शतोप-निषत्—(निर्णयसागर प्रेस, बम्बई), ७९ श्रीश्रीविदग्धमाधव-नाटकम्—(श्रीमत्पुरीदास-महाशय स०), ८० श्रीविष्णुपुराणम् (श्रीश्रीधर-स्वामिकृत ‘आत्मप्रकाश’ टीका-सहित, बगवासी स०), ८१ श्रीविष्णु-स्वामिन् एड वल्लभाचार्य, (“Vishnuswamin and Vallabha-charya”, प्रबन्ध—by G H Bhatt, M A in the ‘Proceedings and Transactions of the Seventh All India Oriental Conference’ Baroda, 1933), ८२ वृहद् बग(डा० दीनेशचन्द्र सेन), ८३ श्रीश्रीवृहद्भागवतामृतम्—(श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०, श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), ८४ श्रीश्रीवृहद्वैष्णव-तोषणी—(श्रीमत्पुरीदास-

महाशय-सम्पादित), ८५ वेदान्त-दर्शन—[अद्वैतवाद]—(डा० आशुतोष शास्त्री), ८६ वेदान्त-दर्शन [विश्वभारती सस्करण]—(डा० रमा चौधुरी), ८७ वेदान्त-दर्शनेर इतिहास, १म-३य खंड,—(प्रज्ञानद सरस्वती), ८८ वेदान्त-पारिजात-सौरभम्—(श्रीनिम्बार्क-भाष्य, श्रीताराकिशोर-चौधुरी स०), ८९ वेदान्तस्यमन्तक—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), ९० वैष्णव फेथ् एंड मुवमेंट—(“Vaishnav-faith and movement”—Dr. S. K De), ९१ वैष्णव-मजूषा-समाहृति ( श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामिप्रभुपाद-सम्पादित ), ९२ श्रीव्यासयोगि-चरितम्— (“The life of Sri Vyasa Raya” by poet Somarnath with a Historical Introduction in English by B Venkata Rao, B A ), ९३ शंकराचार्यकी ग्रन्थमाला—(वसुमती स० और राजेन्द्रनाथ घोष स०), ९४ शब्दकल्पद्रुम —(राजा राधाकान्त देव), ९५ शारीरक-भाष्यम्—(श्रीशंकराचार्यकृत, कालीवर वेदान्त-वागीश स०), ९६ शुद्धाद्वैत-मार्तंड —(गोस्वामि-श्रीगिरिधरजी-विरचित और श्रीरामकृष्णभट्ट-विरचित ‘प्रकाश’ नामक व्याख्या-समन्वित, चोखम्मा, काशी, जनवरी १९०६), ९७. श्रीक्षेत्र—(द्वितीय सस्करण), ग्रन्थकार-सम्पादित, ९८ श्रीभाष्यम्—(श्रीरामानुजाचार्यकृत, वगीय-साहित्य परिषत् स०), ९९ श्रीश्रीश्रुतिरत्नमाला—(श्रीनारायणदास भक्तिसुधाकर-कृत), १०० श्रीश्रीसंक्षेप-भागवतामृतम्—(अतुलकृष्ण गोस्वामी स० और श्रीमत्-पुरीदास महाशय स०), १०१ श्रीश्रीसज्जनतोषणी [पत्रिका]—(श्री-मद्भक्तिविनोद ठाकुर), १०२ सटीक हिन्दी भक्तमाल—(नाभादासकृत, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १९१३), १०३ सर्वदर्शन-सग्रह —(निर्णय-सागर प्रेस स०), १०४. सर्वमूलम्—(श्रीमध्वाचार्यकृत, कुम्भचोणम् स०), १०५ सर्वसम्वादिनी—(श्रीश्रीमज्जीवगोस्वामिपादकृत, वगीय-साहित्य परिषद् सस्करण), १०६ सरार्थदशिनी—(श्रीविश्वनाथकृत, श्रीगौडीय मठ स०), १०७ सिद्धान्तरत्नम्—(श्रीवलदेवकृत, श्रीश्यामलाल गोस्वामी स०), १०८ श्रीश्रीस्तवामृत-लहरी—(श्रीश्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत